संयुत्तनिकायपालि

एक अध्ययन

डॉ. विजयकुमार जैन

संयुत्तनिकायपालि : एक अध्ययन

संयुत्तनिकायपालि : एक अध्ययन

लेखक
डॉ० विजयकुमार जैन
रीडर– बौद्धदर्शन
राष्ट्रिय–संस्कृत–संस्थान
(मानित विश्वविद्यालय)
गोमतीनगर, लखनऊ (उ.प्र.)

मैत्री प्रकाशन
3/65 विकासखण्ड
गोमतीनगर, लखनऊ

संयुत्तनिकायपालि : एक अध्ययन

Sanyuttanikaya Pali : Ek Addhyayan

© लेखक डॉ० विजयकुमार जैन

By
Dr. Vijay Kumar Jain

प्रकाशन
डॉ. राका जैन
मैत्री प्रकाशन
३/६५ विकासखण्ड गोमतीनगर,
लखनऊ, फोन– २३००२४३

Published by
Dr. Raka Jain
Maitree Publication
3/65, Vikas Khand,
Gomti Nagar
Lucknow-226020
Tel. 0522-2300243

प्रथम संस्करण २००४
First Edition-2004

मूल्य– २०० रुपया
Price- 200/=

मुद्रक
महावीर मुद्रणालय,
अलीगंज (एटा)

Printer-
Mahavir Press
Aliganj
(Etah)

प्रोफेसर संघसेन सिंह
(राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित)
पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
बौद्ध विद्या विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
को सादर समर्पित

संकेत–विवरण

अंगुत्तर	:	अंगुत्तरनिकायपालि (एकक–दुक–तिक–निपात)
अट्ठ	:	अट्ठसालिनी (धम्मसंगणि की अट्ठकथा)
अभि. को.	:	अभिधर्म कोशम् (भाष्य एवं व्याख्या सहित)
अभि. को. भा.	:	अभिधर्म कोश भाष्य
अभि. दी.	:	अभिधर्म दीप (विभाषा प्रभावशत्ति सहित)
आ. इ. ओ. का.	:	आल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेंस
ओरिजन्स आव बुद्धिज्म	:	स्टडीज इन द आरिजन्स आव बुद्धिज्म
का.	:	कारिका
खुद्दक 1	:	खुद्दकनिकायपालि, भाग–1 (खुद्दकपाठ–धम्मपद–उदान–इतिवुत्तक–सुत्तनिपात)
खुद्दक 2	:	खुद्दकनिकायपालि, भाग–2 (विमानवत्थु–पेतवत्थुं–थेरगाथा–थेरीगाथा)
छान्दोग्य	:	छान्दोग्य–उपनिषद्
जातकट्ठ.	:	जातकट्ठकथा (पठमो भागो)
डि. आ. अ. मो. ट.	:	डिक्सनरी आव अर्ली मोनेस्टिक टर्म्स
डि. आ. पा. प्रा. नेम्स	:	डिस्कनरी आव पालि प्रापर नेम्स
दीघ. 1	:	दीघनिकायपालि (1 सीलक्खन्ध वग्गो)
दीघ. 2	:	दीघनिकायपालि (2 महावग्गो)
दीघ. 3	:	दीघनिकायपालि (3 पाथिक वग्गो)
पा. इ. डि.	:	पालि इंगलिश डिक्सनरी
पृ.	:	पृष्ठ संख्या
बृहदारण्यक	:	बृहदारण्यक–उपनिषद्
भिक्षुणी संघ	:	जैन एवं बौद्ध धर्म में भिक्षुणी–संघ का उद्‌भव, विकास एवं स्थिति
मज्झिम. 1	:	मज्झिमनिकायपालि (1 मूलपण्णासक)
मज्झिम. 2	:	मज्झिमनिकायपालि (2 मज्झिमपण्णासक)
मज्झिम. 3	:	मज्झिमनिकायपालि (3 उपनिपणासक)
मोक्ष चिन्तन	:	भारतीय दर्शन में मोक्ष चिन्तन एक तुलनात्मक अध्ययन
विभा.	:	विभावनी टीका
विशुद्धि. 1	:	विशुद्धिमग्गो पठमो भागो
विशुद्धि. 2	:	विशुद्धिमग्गो दुतियो भागो
विशुद्धि. 3	:	विशुद्धिमग्गो ततियो भागो
शत. ब्रा.	:	शतपथ ब्राह्मण
समन्त. 1	:	समन्तपासादिका नाम अट्ठकथा (पठमो भागो)
संयुत्त. 1	:	संयुत्तनिकायपालि (1 सगाथवग्गो)
संयुत्त. 2	:	संयुत्तनिकायपालि (2 निदानवग्गो)
संयुत्त. 3	:	संयुत्तनिकायपालि (3 खन्धवग्गो)
संयुत्त. 4	:	संयुत्तनिकायपालि (4 सळायतनवग्गो)
संयुत्त. 5	:	संयुत्तनिकायपालि (5 महावग्गो)

प्राक्कथन

बौद्ध धर्म एवं दर्शन सम्बन्धी विशाल साहित्य आज संसार की विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध है। भारत में भी त्रिपिटक के मूलग्रन्थ एवं अनुवाद ग्रन्थ अधिकांशतया प्रकाशित हो चुके हैं और इनके ग्रन्थों का स्वतंत्र अनुसन्धान भी हो रहा है। परन्तु 'संयुत्तनिकाय' का अभी तक विस्तार से कोई अध्ययन नहीं हुआ था। यद्यपि विभिन्न इतिहासविदों ने इसके महत्त्व की ओर ध्यान आकृष्ट किया है तथा इसके सन्दर्भो के आधार पर पालि साहित्य का महत्त्व प्रतिपादित किया है तथापि यह अन्य निकायों की अपेक्षा उपेक्षित ही रहा है।

संयुत्तनिकाय में दार्शनिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक एवं धार्मिक सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, जिसका महत्त्व अत्यन्त उच्चकोटि का है, जो हमारे अतीत के कई अन्धकारावृत्त पक्षों को उंद्घाटित करने वाला है। इसकी शैली अत्यन्त सरल है। काव्यात्मक अंशों , लोक आख्यानों तथा छोटे– छोटे सुत्तों में गम्भीर से गम्भीर अर्थ निहित है। प्रश्नों का समाधान सरल एवं व्यावहारिक दृष्टिकोण से किया गया है। अन्य निकायों में विषय–वस्तु के कम का कोई ध्यान नहीं रखा गया है, एक दार्शनिक सुत्त के बाद दूसरा कोई सामाजिक या अन्य सुत्त वर्णित है। इन निकायों में किसी विषय–वस्तु की पूर्णता नहीं है जिससे किसी अध्ययन की कसौटी का दावा किया जा सके। इसके विपरीत संयुत्तनिकाय के संयुत्तों में सुत्तों का संकलन व्यवस्थित एवं विषयों के अनुकूल किया गया है, इसके संयुत्तों में सम्बद्ध विषय के महत्त्वपूर्ण सुत्तों का संकलन है जिससे तत्–तत् विषय की पूरी जानकारी मिलती है। प्रस्तुत प्रबन्ध में उक्त महत्त्व को ध्यान में रखकर संयुत्तनिकाय का विस्तार से मूल्यांकन करने हेतु प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध के निर्माण में आधारभूत सामग्री संयुत्तनिकाय से ली गई है, किन्तु जहां–कहीं संयुत्तनिकाय में प्राप्त उल्लेखों के स्पष्टीकरण के लिए अन्य निकायों, टीका साहित्य, अनुवाद व समीक्षात्मक ग्रन्थों की आवश्यकता हुई है वहां उनका भी उपयोग करने में संकोच नहीं किया गया है। मूलग्रन्थ में विपुल सामग्री उपलब्ध है, जिसपर तुलनात्मक और समीक्षात्मक अध्ययन करना अपेक्षित है, परन्तु इस प्रबन्ध में मैंने अपने अध्ययन को एक परिधि में सीमित रखना उचित समझा है।

सुविधा की दृष्टि से संयुत्तनिकाय की 2941 सुत्तों की सामग्री को 7 परिच्छेदों में विभक्त कर अध्ययन किया गया है। परिच्छेदों के शीर्षकों एवं उपशीर्षकों का एक दूसरे से कम सम्बन्ध होते हुए भी स्वतंत्र अस्तित्व है।

भूमिका में भगवान् बुद्ध का परिचय देते हुए बुद्धवचनों का विभाजन, त्रिपिटक व सुत्तपिटक का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

प्रथम परिच्छेद में संयुत्तनिकाय का नामकरण, वर्गीकरण, वर्गो, संयुत्तों एवं सुत्तों की तालिका, वस्तुकथा, शैली, नवांगविवरण, प्रामाणिकता एवं महत्त्व पर विचार करते हुए उसके विभिन्न संस्करण, अट्ठकथाओं, टीकाग्रन्थों, अनुवाद ग्रन्थों एवं संस्करण का विवरण दिया गया है।

द्वितीय परिच्छेद में भगवान् बुद्ध की जीवनी पर प्रकाश डाला गया है। निदानकथा की परम्परा के अनुसार संयुत्तनिकाय में प्राप्त सन्दर्भो को तीन उपशीर्षकों–दूरेनिदान, अविदूरे निदान एवं सन्तिके निदान में वर्णित करते हुए भगवान् की चर्या एवं गुणों पर प्रकाश डाला गया है।

तृतीय परिच्छेद में धर्म का परिचय देते हुए दो अन्तों, मध्यम प्रतिपदा के रूप में आर्य मार्ग, सम्बोध्यंग धर्मो एवं शील समाधि प्रज्ञा का वर्णन किया गया है तथा धर्मो की विशेषताएं बतलाते हुए उनका महत्त्व प्रतिपादित किया गया है।

चतुर्थ परिच्छेद में सम्यक्दृष्टि शीर्षक के अन्तर्गत चार आर्यसत्यों एवं प्रतीत्यसमुत्पाद का वर्णन तथा मिथ्यादृष्टि के अन्तर्गत विभिन्न दृष्टियों एवं अव्याकृत सिद्धान्तों की समीक्षा की गई है। प्रमुख सिद्धान्त अनित्य, दुःख, अनात्मवाद एवं उनकी सिद्धि के प्रत्यय पंचस्कन्ध, षडायतन, वेदना एवं धातुओं का परिचय दिया गया है तथा परम् लक्ष्य 'निर्वाण' की व्याख्या की गई है।

पंचम परिच्छेद में संघ का स्वरूप, संघ की स्थिति तथा प्रमुख भिक्षु एवं भिक्षुणियों का परिचय दिया गया है। संघ के स्वरूप के अन्तर्गत संघ का विकास, प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा विधि, प्रत्ययों का विधान, उपोसथ, वर्षावास तथा प्रवारणा आदि से सम्बन्धित नियमों का परिचय दिया गया है। भिक्षुसंघ की स्थिति में ब्रह्मचर्यपालन की सफलता, कीर्तिसूचक शब्द तथा कीर्तिसूचक शब्द की व्याख्या में चार पुद्गलों–स्रोतापत्ति, सकृदागामी, अनागामी एवं अर्हतों के संबंध में आगत विषयवस्तु का विस्तृत परिचय दिया गया है। भिक्षुओं की अनुशासनहीनता से सम्बन्धित आगत प्रसंगों का उद्धरण देते हुए भिक्षु एवं भिक्षुणियों के व्यक्तिगत जीवन की भी समीक्षा की गई है।

षष्ठ परिच्छेद में भगवान् बुद्ध की 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' देशना का उद्देश्य, शैली, विभिन्न वर्गो को देशना की विशिष्टता, उपदेशित विषयवस्तु का विभाजन तथा त्यजनीय एवं सेवनीय धर्मो की विस्तृत व्याख्या करते हुए देशना की

विशेषताओं का परिचय दिया गया है।

सप्तम परिच्छेद में अलौकिक चित्रण के अन्तर्गत ब्रह्मा, शक, देवता, देवपुत्र, यक्ष, मार, नाग आदि एवं नरक का चित्रण किया गया है तथा ऐतिहासिक, धार्मिक, सामाजिक एवं भौगोलिक विवरणों का परिचय दिया गया है।

उपसंहार में शोध के क्षेत्र में हुई उपलब्धियों का संक्षेप में मूल्यांकन किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ यद्यपि सीमित ज्ञान, सीमित साधनों एवं सीमित समय का परिणाम है फिर भी इसे पूर्ण करने में विषय से सम्बन्धित जो ग्रन्थ एवं पत्र–पत्रिकाएं उपलब्ध हो सकी हैं, उनसे लाभान्वित होने का प्रयत्न किया गया है तथा यथासम्भव उनका सन्दर्भ भी सूचित कर दिया है। इस सन्दर्भ में भिक्षु जगदीश काश्यप का नाम विशेष उल्लेखनीय है, जिनके प्रयत्न से त्रिपिटक का देवनागरी संस्करण प्रकाशित हुआ तथा इन्होंने ही भिक्षु धर्मरक्षित के सहयोग से संयुत्तनिकाय का हिन्दी अनुवाद भी किया है, अतः इन दोनों स्मृतिशेष महान् आत्माओं के प्रति मैं अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूँ। 1983 में गुरुवर डॉ0 कोमल चन्द्र जी जैन के निर्देशन में काशी हिन्दू विश्व विद्यालय से शोध उपाधि प्राप्त इस शोध प्रबन्ध के तैयार होने से अभी तक के प्रकाशन में प्राप्त हुए आशीर्वाद के लिए सभी गुरूजनों के प्रति कृतज्ञ हूँ जिनके ऋण से कभी उऋण नहीं हुआ जा सकता। परम पूज्य गुरूवर डॉ0 कोमल चन्द्र जी जैन प्रो0 विश्व नाथ भट्टाचार्य, प्रो. मोहनलाल मेहता, डॉ0 एन0 एच0 सामताणी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। स्मृति शेष पं. जगन्मोहन लाल जी शास्त्री, पं. कैलाश चन्द्र जी शास्त्री, पं. फूल चन्द्र जी सिद्धान्त शास्त्री, भदन्त आनन्द कौशल्यायन, प्रो0 महेश तिवारी, प्रो0 एन. के0 देवराज, डॉ0 हर्ष नारायण जी, पद्म भूषण पट्टाभिराम शास्त्री जी का आशीर्वाद प्राप्त रहा है। श्री जमना लाल जैन, सारनाथ,, डॉ0 सागर मल जैन एवं डॉ0 कमलेश कुमार जी जैन की सहायता शोधप्रबन्ध को तैयार करने में प्राप्त हुई थी। प्रोफेसर संघसेन सिंह जी ने शोधप्रबंध को प्रकाशन कराने में प्रेरणा दी है। उनका मार्गदर्शन भी सदैव प्राप्त होता रहता है। प्रकाशन में धर्मपत्नी डॉ0 राका जैन, श्री पार्श्वप्रसाद, मैत्रेय जैन तथा मैत्री के सहयोग को भुलाया नहीं जा सकता। अपने परिवार के सभी सदस्यों पूज्य बडे भाई साहब श्री प्रीतम चन्द जी, श्री सन्तोष कुमार जी एवं डॉ0 त्रिलोक चन्द्र जी जैन का आशीर्वाद भी सम्बल रहता है। पुनश्च सभी मित्रों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिनका स्नेह मिलता रहता है।

डॉ0 विजयकुमार जैन

लखनऊ
बुद्ध पूर्णिमा, 2004

विषय–सूची

प्राक्कथन
संकेत–विवरण
भूमिका पृष्ठ 01–06

प्रथम परिच्छेद :संयुत्तनिकाय का सामान्य परिचय– 7–21
नामकरण, वर्गीकरण, सुत्ततालिका, वस्तुकथा, शैली–नवांग विवरण, कालक्रम एवं प्रामाणिकता, महत्त्व, सम्बद्ध साहित्य–अट्ठकथा साहित्य, अनुवाद ग्रन्थ संस्करण एवं संयुत्तागम।

द्वितीय परिच्छेद : बुद्धकथा 22–48
दूरे निदान–भगवान् बुद्ध के पूर्वजन्म का परिचय, बुद्धवंश परम्परा एवं बुद्धवंश परिचय, अविदूरे निदान –तपस्या, चित्तशुद्धि का संकल्प, सम्बोधि कथा, सन्तिके निदान–बुद्धत्व प्राप्ति के पश्चात् धर्मो का मनन, ब्रह्मयाचना कथा, धर्म के प्रति गौरवभाव, धर्मचक्र प्रवर्तन, विविध चारिकाएं, जीवन शक्ति का त्याग, परिनिर्वाण, बुद्धचर्या–चीवर, पिण्डपात, शयनासन, एकान्तवास, ग्लानप्रत्यय भैषज्य परिष्कार का सेवन, संघ के प्रति अनुकम्पा, गुणवर्णन–दसबल एवं चार वैशारद्य, ध्यान–अभिज्ञा, ऋद्धि चमत्कार, शारीरिक विशेषताएं, स्तुति–प्रसंग, कीर्तिसूचक शब्द, महत्त्व।

तृतीय परिच्छेद :	धर्म धर्म से तात्पर्य, मध्यममार्ग-दो अन्तों की विस्तृत व्याख्या, बोधिपाक्षिक धर्म-चार स्मृतिप्रस्थान, चार सम्यक्प्रधान, चार ऋद्धिपाद, पांच इन्द्रिय एवं पांच बल,सात सम्बोध्यंग, बोधिपाक्षिक धर्मो की विशेषता, स्कन्धत्रय-शील, समाधि और प्रज्ञा, धर्म का महत्त्व।	49-81
चतुर्थ परिच्छेदः	दर्शन सम्यग्दृष्टि-प्रतीत्यसमुत्पाद, चार आर्यसत्य, मिथ्यादृष्टि-विभिन्न मिथ्यादृष्टियां, अव्याकृत, अनित्य-दुः ख-अनात्म, पंचस्कन्ध, सडायतन, धातु, वेदना, निर्वाण।	82-110
पंचम् परिच्छेद :	संघ संघ का स्वरूप-संघ का विकास, प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा विधि, संघ नियम, प्रत्ययों का विधान, उपोसथ, वर्षावास, प्रवारणा, भिक्षुसंघ की स्थिति-ब्रह्मचर्य पालन की सफलता, अनुशासनहीनता सम्बन्धी वृत्तन्त, प्रमुख भिक्षु परिचय-सारिपुत्त, महामौद्गल्यायन, आनन्द, महाकाश्यप, वंगीश, अनुरुद्ध,उपालि, पुण्णमन्तानिपुत्त, महाकप्पिन, महाकात्यायन, राजुल, तिस्स, छन्न, उपसेन, खेमक, देवदत्त, कोकालिक, यमक, प्रमुख भिक्षुणी परिचय-क्षेमा, उत्पलवर्णा, आलविका, सोका, कृशागोतमी विजया, चाला, उपचाला, शीर्शोपचाला, सेला, वजिरा, थुल्लनन्दा।	111-139

षष्ठ परिच्छेद देशना 140–152

देशना से तात्पर्य, देशना का क्रम, देशना के पात्र देशना की शैली, विषयवस्तु का विभाजन, सेवनीय धर्म–वीर्य की शिक्षा, स्मृतिमान् और संप्रज्ञता की शिक्षा, एकान्तवास, मात्रा से भोजन, अप्रमाद, सत्संगति, दान की शिक्षा एवं महत्त्व, त्यजनीय धर्म–लाभ सत्कार प्रशंसा, सात पाप से विरति की शिक्षा, उपदेश की विशेषताएं।

सप्तम् परिच्छेद प्रकीर्णक 153–194

अलौकिक चित्रण–ब्रह्मा, शक्र, देवता, यक्ष, मार, नाग सुपर्ण, नरक का चित्रण, ऐतिहासिक विवरण–कोशलराज प्रसेनजित, अजातशत्रु, लिच्छवि, राजा उदयन, अभयराज कुमार, सामाजिक स्थिति–क्षत्रिय, ब्राह्मण, श्रमण और ब्राह्मण, वैश्य, निम्नजातियां, नारी, सामाजिक समस्याएं, धार्मिक स्थिति– धार्मिक आचार्य, पूरणकाश्यप, मक्खलिगोशाल, प्रकुधकात्यायन, संजयवेलट्ठिपुत्त, निगण्ठनाटपुत्त, भौगोलिक विवरण–मगध, गया, वैशाली, कोशल, काशी, अंग, वत्स, मल्ल, कपिलवस्तु, विभिन्न नगर एवं नदियां, जम्बूद्वीप।

उपसंहार 195–198

सन्दर्भ ग्रंथ विवरण 199–206

भूमिका

संयुत्तनिकाय पालि त्रिपिटक का एक महत्त्वपूर्ण अंग है, जिसमें आज से लगभग छब्बीस सौ वर्ष पूर्व दिए गये भगवान् गौतम बुद्ध के उपदेशों का संकलन है।

भगवान् बुद्ध का बचपन का नाम सिद्धार्थ था। बुद्धत्व प्राप्ति के बाद इनको बुद्ध की संज्ञा प्राप्त हुई थी। ये प्रारम्भ से ही एकान्तप्रिय, गम्भीर एवं मननशील थे। इनके लक्षणों के आधार पर असित नामक ऋषि ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा था कि एक उद्धारक आ गया है। इनके पिता शुद्धोदन ने इनको सांसारिक जीवन में आसक्त रखने के लिए इनकी सभी सुविधाओं का ध्यान रखा था। ऋतुओं के अनुकूल तीन प्रासाद बनवा दिए थे और यशोधरा से इनका विवाह कर दिया था, लेकिन इन्होंने एक बूढ़े व्यक्ति, एक रोगी व्यक्ति तथा एक मृत व्यक्ति को देखकर संसार को दुःखी अनुभव किया। इन्होंने उसी समय चिन्तन किया कि दुःख है तो उसके समुदय निरोध का कारण भी होना चाहिए। इसी बीच एक रात को इन्होंने वितृष्ण होकर सब राजभोग छोड़कर संन्यास ग्रहण किया, जिसे महाभिनिष्क्रमण की संज्ञा दी जाती है। इसके बाद तत्कालीन प्रसिद्ध आचार्यो के पास इन्होंने ज्ञान सीखा एवं जब इनको कोई सार नजर नहीं आया तो स्वयं ही ज्ञान प्राप्त करने का निश्चय किया। विभिन्न वितर्को एवं उनके समाधान स्वरूप ज्ञान प्राप्त हो जाने पर वैशाख पूर्णिमा को अपने लिए बुद्ध घोषित किया। बुद्धत्व प्राप्ति के बाद प्रथम उपदेश इसिपतन मृगदाय (सारनाथ) में दिया, जिसे धर्मचक्र प्रवर्तन की संज्ञा दी जाती है। इसके बाद 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' अपना जीवन समर्पित कर विचरण करते हुये उपदेश देते रहे, जिसे भिक्षु बुद्ध वचन के रूप में संग्रह करते जाते थे। बुद्धवचनों को आज हम प्रामाणिक रूप से त्रिपिटक में वर्णित पाते हैं।

बुद्धवचनों का विभाजन–

बुद्धवचनों का विभाजन रस के अनुसार एक प्रकार से, धर्म और विनय के अनुसार दो प्रकार से, पठम–मज्झिम–पच्छिम तथा आदि– अन्त और मध्य के अनुसार तथा पिटक के अनुसार तीन प्रकार से, निकाय के अनुसार पॉच प्रकार से, अंगों के अनुसार नौ प्रकार से तथा धर्मस्कन्धों के अनुसार 84000 प्रकार से किया जाता है।

प्रथम प्रकार के विभाजन में भगवान् बुद्ध के अनुत्तर सम्यक् सम्बुद्धत्व की प्राप्ति से लेकर निर्वाण तक के सभी उपदेशों एवं अनुशासनों में एक ही रस (लक्ष्य) विमुक्ति है। द्वितीय प्रकार विनय एवं धर्म के आधार पर है। विनय पिटक को विनय एवं विनयपिटक के अतिरिक्त शेष वचनों को धर्म कहा गया है। तृतीय प्रकार भगवान् बुद्ध के प्रथम, मध्यम एवं अन्तिम वचनों के आधार पर तथा तीन पिटकों के आधार पर

है। प्रथम वचन के रूप में 'अनेक जाति संसार' वाली प्रसिद्ध तीन गाथाओं को अथवा कुछ ग्रन्थों में 'यदाहवे पातु भवन्ति धम्मा' वाली गाथा का उल्लेख किया जाता है। परिनिर्वाण के पूर्व कहा गया अन्तिम वचन "हन्द दानि भिक्खवे, आमन्तयामि वो, वयधम्मा संखारा अप्पमादेन सम्पादेथा" है। इन दोनों के मध्य कहे गए वचन मध्यम हैं। तीन पिटक–विनयपिटक, सुत्तपिटक एवं अभिधम्मपिटक हैं।

चौथा विभाजन सुत्त, गेय्य, व्याकरण, गाथा, उदान, इतिवुत्तक, जातक, अद्भुत धर्म और वेदल्ल– इन नौ अंगों के आधार पर है। नौ अंगों का यह विभाजन सबसे प्राचीन माना जाता है। इसका उल्लेख अपदान [1] मज्झिमनिकाय, [2] एवं मिलिन्द प्रश्न [3] में है। यह विभाजन बौद्ध धर्म के महायान संस्कृत साहित्य में भी पाया जाता है [4] महायान के संस्कृत साहित्य में 12 धर्म प्रवचनों का भी विभाजन पाया जाता है। [5]चीन में ध्यान सम्प्रदाय के छठे धर्मनायक हुइ–नेंग ने भी बौद्ध–शास्त्रों के 12 विभागों का उल्लेख किया है। [6] आगमों का अंगों में विभाजन भारतीय धार्मिक परम्परा की विशेषता है। वेद अंगों में विभाजित है। जैन–आगम भी अंगों में विभक्त हैं। बुद्धवचनों का अंगों में विभाजन विभिन्न शैलियों को ही सूचित करता है।

धर्मस्कन्धों के अनुसार 84000 धर्मस्कन्ध है। यह गणना त्रिपिटक के वचनों की है। त्रिपिटक में तथागत द्वारा कहे गये सुत्तों के अतिरिक्त उनके प्रधान शिष्यों द्वारा कहे गए, उनके सम्मुख कहे गए एवं उनके द्वारा अनुमोदित वचनों का सामावेश है। [7] 'सद्धम्मसंगहो' के अनुसार इक्कीस हजार धर्मस्कन्ध विनयपिटक में, इक्कीस हजार सुत्तपिटक में, तथा ब्यालीस हजार अभिधर्मपिटक में हैं। [8]

पिटकों का तीन प्रकार से विभाजन देशना की भिन्नता से माना जाता है। सुत्तपिटक में व्यवहार–देशना, विनयपिटक में ज्ञान–देशना तथा अभिधर्मपिटक में अधिप्रज्ञा–देशना मानी जाती है। [9] आचार्य बुद्धघोष मूल बुद्ध–वचन के रूप में तीनों पिटकों को मानते हैं लेकिन प्रथम एवं द्वितीय संगीति के आधार पर अभिधर्मपिटक के संग्रह का उल्लेख नहीं मिलता है। कथावत्थु नामक अभिधर्म पिटक के ग्रन्थ की रचना तृतीय संगीति के समय बुद्धपरिनिर्वाण के 236 वर्ष बाद मानी जाती है। [10] यहां यह उल्लेखनीय है कि 'कथावत्थु' का उल्लेख 'खुद्दकनिकाय' के 'उपादाना' ग्रन्थ में आया है। [11] विद्वानों का यह विचार है कि 'धम्मसंगणि' की रचना मातिकाओं के आधार पर हुई है। [12] द्वितीय संगीति के समय तक मातिकाधरों का उल्लेख मिलता है एवं अभिधर्मपिटक ग्रन्थों के प्रारम्भ में विषय–सूची के समान मातिकाएं दी गई हैं। इसलिए सम्पूर्ण अभिधर्मपिटक को ही मातिकाओं के आधार पर विकसित माना जाता है।

पिटक का अर्थ पेटारी (पिटारी) या मंजूषा है। [13] आचार्य बुद्धघोष ने कहा है कि 'पिटक' बुद्धवचनों के भाजन स्वरूप हैं और उसकी परियत्ति या परम्परा को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाते हैं। [14] मूल बुद्धवचन तीन पिटारियों में रखने

की भांति विभक्त हैं, इसलिए प्रत्येक को पिटक कहा जाता है।[15] मज्झिमनिकाय में पिटक शब्द का प्रयोग पिटारी के अर्थ में तथा सम्प्रदाय के अर्थ में हुआ है।[16] पिटारी के अर्थ में पिटक शब्द के प्रयोग को मानने में कीथ ने आपत्ति की है, क्योंकि पिटारी लिखित ग्रन्थों के लिए ही प्रयुक्त हो सकती थी, जबकि बुद्धवचन ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के पहले लिखित नहीं पाये जाते हैं।[17] सारनाथ से प्राप्त कनिष्ककालीन अभिलेख में त्रेपिटकस्य अंकित है [18]। डा० के. एन. न्यूमैन का विचार है कि पालि साहित्य में आगत 'पेटकी' से तात्पर्य एक पिटक के जानने वाले से है जबकि पेटकी का सामान्य अर्थ सम्पूर्ण पिटकों का ज्ञाता माना जाता है। डा० न्यूमैन ने अपने मत की पुष्टि के लिए 'पेटकोपदेश' का उद्धरण देते हुये कहा है कि पेटकोपदेश का प्रयोग सम्पूर्ण पिटकों के लिए नहीं है।[19]

त्रिपिटक के तीन पिटक इस प्रकार हैं– सुत्तपिटक, विनयपिटक एवं अभिधम्मपिटक। सुत्तपिटक के अन्तर्गत पांच निकाय, विनयपिटक के अन्तर्गत पांच ग्रन्थ एवं अभिधर्मपिटक के अन्तर्गत सात ग्रन्थ आते हैं।

त्रिपिटक

सुत्तपिटक	विनयपिटक	अभिधम्मपिटक
1. दीघनिकाय	1. महावग्ग	1. धम्मसंगणि
2. मज्झिमनिकाय	2. चुल्लवग्ग	2. विभंग
3. संयुत्तनिकाय	3. पाराजिक	3. धातुकथा
4. अंगुत्तरनिकाय	4. पाचित्तिय	4. पुग्गलपंञ्ञत्ति
5. खुद्दकनिकाय	5. परिवार	5. यमक
		6. पट्ठान
		7. कथावत्थु

खुद्दकनिकाय के अन्तर्गत 15 ग्रन्थ आते हैं– खुद्दकपाठ, धम्मपद, उदान, इतिवुत्तक, सुत्तनिपात, विमानवत्थु, पेतवत्थु, थेरगाथा, थेरीगाथा, जातक, निद्देस, पटिसम्भिदामग्ग, अपदान, बुद्धवंस, एवं चरियापिटक।

सुत्तपिटक–

सुत्तपिटक का विभाजन पांच निकायों में है। 'निकाय' शब्द का अर्थ समूह है। रीजडेविड्स ने निकाय का अर्थ स्कूल या वर्ग माना है।[20] संस्कृत में निकाय के स्थान पर 'आगम' शब्द का प्रयोग हुआ है। बुद्धघोष की अट्ठ कथाओं की निदान गाथाओं में भी आगम शब्द का प्रयोग निकायों के लिए किया गया है। आज पालि परम्परा में निकाय ही प्रचलित है। मिलिन्दप्रश्न में भी 'पंचनेकायिक' ही अंकित है।[21]

सुत्तपिटक का निकायों में वर्गीकरण आकार की दृष्टि से माना जाता है, यथा– बड़े–बड़े सुत्तों का संकलन दीघनिकाय में मध्यम आकार के सुत्तो का मज्झिमनिकय में, छोटे–बड़े–मध्यम सभी प्रकार के सुत्तों का संकलन संयुत्तनिकाय में, संख्या के कमानुसार वर्णित सुत्तों का संकलन अंगुत्तर निकाय में तथा छोटे–छोटे ग्रन्थों के सुत्तों क़ा संकलन खुद्दकनिकाय में। आकार की दृष्टि से सुत्तपिटक के पांच निकायों का विभाजन मानने में विद्वानों ने आपत्ति की है। आचार्य नरेन्द्र देव का विचार है कि सूत्रों की लम्बाई के अनुसार उनकी व्याख्या की जाय तो सब सूत्रों का समावेश तीन आगम–दीर्घ, मध्यम एवं क्षुद्रक में ही हो सकता था। शेष दो निरर्थक हैं। [22] पी.बी.वापट और नलिनाक्ष दत्त ने भी इस विभाजन में विसंगतियां दिखलाई हैं। संयुत्त और अंगुत्तर को इन्होंने पुनर्व्यव स्थित करने के लिए संकलन मात्र माना है। [23] सुमंगलविलासिनी अट्ठकथा में वर्णित है कि चार निकायों को छोड़कर शेष सभी बुद्धवचन खुद्दक–निकाय के अन्तर्गत आते हैं, [24] जबकि आज खुद्दकनिकाय में 15 ग्रन्थों की गणना की जाती है। विनयपिटक एवं अभिधर्मपिटक का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है।

सुत्त से तात्पर्य–पालि सुत्त का संस्कृत रूप सूत्र है, लेकिन पालि सुत्त की संस्कृत सूत्र से विषमताएं हैं। संस्कृत सूत्र की विशेषता 'स्वल्पाक्षरकथन' पालि सुत्त से ठीक विपरीत है। विद्वानों का विचार है कि जैन और बौद्ध–आगमों में प्रयुक्त सुत्त सूत्र की अपेक्षा 'सूक्त' के अधिक समीप है। डा0 हीरालाल जैन का विचार है कि भगवान् महावीर के समय सूत्र शैली का प्रचार नहीं था। वेदों के सूक्तों का प्रभाव अधिक था। [25] भगवान् बुद्ध के उपदेश 'सुत्त' या 'सुत्तन्त' कहे जाते थे। अशोक के शिलालेख में भी कहा गया है कि जो कुछ बुद्ध भासित है सभी सुभासित है। [26]

सुत्त की व्याख्या करते हुए आचार्य बुद्धघोष ने कहा है कि– 'अत्थानं सूचनतो, सुवुत्ततो सवनतो च सूदनतो। 'सुत्ताणा सुत्तसमागता च सुत्तं सुत्तं ति अक्खातं' ति।। यहां ''अत्थानं सूचनतो'' से तात्पर्य अर्थ की सूचना देने वाले से है। मनोदशा के अनुरूप किए गए उपदेश का सम्यक् ग्रहण एवं संधारण होने से 'सुवत्ततो' कहा गया है। ये सुत्त लौकिक तथा लोकोत्तर फलों का निष्पादन करते हैं। इसलिए 'सवनतो' कहलाते हैं। 'सूदनतो' पद के योग में सुत्त शब्द का प्रयोग 'पग्घरण' अर्थ में किया गया है। ये सुत्त क्लेशों के प्रति संवर की शिक्षा देते हुए त्राण प्रदान करते हैं, इसलिए सुत्तण्णां कहलाते हैं। काष्ठ कर्म में सूत की रेखा के समान ये मार्गदर्शक एवं विनेय्यजनों को सम्यक् प्रतिपन्न करते हैं इसलिए सुत्तसभागता तथा विनेय्यजनों को प्रकीर्णरूप से दिए गए उपदेशों को सुष्ठु अभिग्रन्थन एवं निबन्धन करने के कारण इनको अभिधान सुत्त कहा गया है। [27]

सुत्त के लिए 'सुत्तन्त' का भी प्रयोग किया गया है। अटठकथाओं में ये दोनों

समानार्थक हैं। रीजडेविड्स का विचार है कि 'सुत्तन्त' कुछ निश्चित बुद्धवचनों के लिए प्रयुक्त किया जाता था, सभी सुत्तों के लिए नहीं। जिस प्रकार पेटकोपदेश से तात्पर्य सभी पिटकों से नहीं है। इन्होंने सुत्तन्त के अन्तर्गत दो निकाय–दीघनिकाय एवं मज्झिमनिकाय को ही माना है। [28]

महायान के अनुसार विचिकित्सा का निवारण करने के लिए सूत्र का उपदेश दिया गया था। [29] अर्थविनिश्चय सूत्र के निबन्धन में सूत्र की व्याख्या करते हुए सूत्र के छः अंग बतलाये गए हैं– निदान, उपोद्घात, प्रयोजन, उद्देश्य, निर्देश एवं अनुसन्धि।[30]

आचार्य बुद्धघोष ने सुत्तपिटक के सुत्तों की व्याख्या करते हुए सुत्तों के चार प्रकार बतलाये हैं– अत्तज्झासय, परज्झासय, पुच्छावसिक एवं अट्ठम्पतिक। भगवान् की अपनी इच्छा या प्रेरणा से दिये गए। उपदेश अत्तज्झासय, दूसरों की प्रेरणा से दिए गए उपदेश परज्झासय, प्रश्नोत्तर स्वरूप दिए गए उपदेश पुच्छावसिक तथा अन्य सुत्तों के स्पष्टीकरण के लिए दिए गए उपदेश अट्ठप्पतिक हैं। [31]

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध का विषय सुत्तपिटक का तीसरा निकाय संयुत्तनिकाय है।

संदर्भ–विवरण

1. सुत्तन्तं अभिधम्मं च, विनया चापि केवलं।
   नवंगा बुद्धवचनं, एसा धम्मसभा तव।।
   थेरापदान।, पृ. 52
2. मज्झिम. 1, पृ. 178
3. मिलिन्दपञ्यह, (द्वारिकादास शास्त्री सम्पादित), पृ. 16
4. नवांग प्रवचनानि–महायान सूत्र संग्रह, प्रथम. शंड, पृ. 332
   –नवांगमेतन्मम शासन च–सद्धर्मपुंडरीक सूत्र, पृ. 34
5. सूत्रं गेयं व्याकरणं गाथोदानावदानकम्।
   इतिवृत्तकं निदानं वैपुल्यं च सजातकम्।।
   उपदेशाद्भूतो धर्मो द्वादशांगमिदं वचः। अभिसमयालंकार, पृ. 33
6. दि सूत्र आव वे–लेंग् (हुई नेंग), पृ. 33
   –पालि साहित्य का इतिहास (भरत सिंह), पृ. 113–114 से उद्धत
7. द्वासोतिं बुद्धतो गण्ठिं, द्वे सहस्सानि भिक्खुनो।
   चतुरासोति सहस्सानि, ये में धम्मा पवत्तिनो।। –खुद्दक. 2, पृ. 369
   –सद्धम्मसंगहो, पृ. 33
8. एकवीस सहस्सानि, खन्धा विनयपिटके।
   एकवीस सहस्सानि, खन्धा सुत्तन्तपिटके।
   द्वे चत्तालीस सहस्सानि, खन्धा अभिधम्मपिटकेति।

एवं परिदीपन–धम्मक्खन्ध वसेन चतुरासीति सहस्स पभेदंति। –सद्धम्मसंगहो, पृ. 9

9. 'विनयपिटकं भाणारहेन भगवता णा बाहुल्लतो देसितत्ता
जाणा देसना, सुत्तन्तपिटकं वोहार कुसलेन भगवता वोहार
बाहुल्लतो देसितत्ता बोहार देसना, अभिधम्मपिटकं परमत्थ
कुसलेन भगवता परमत्थबाहुल्लतो देसितत्ता परमत्थदेसना।'
सुमंगलविलासिनी, भाग 1, पृ. 26

10. पालि साहित्य का इतिहास (भरत सिंह), पृ.

11. संखित्तेनपि देसेमि, वित्थारेत तथेवहं
अभिधम्मनयञ्ञूहं, कथावत्थुविसुद्धिया
सब्बेसं विञ्ञपेत्वान्, विहरामि अनासवो।। थेरापदानं 1, पृ. 45

12. द्रष्टव्य–पंचप्पकरण–अट्ठकथा, दुतियो भागो, (कथावत्थुअट्ठकथा) भूमिका, पृ. 15–17

13. द्रष्टव्य– बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ. 106

14. 'पिटकं पिटकत्थ विदू परिवत्तिभाजनत्थतो आहु'–समन्तपासादिका, भाग 1 पृ. 20

15. पालि साहित्य का इतिहास (धर्मरक्षित) पृ. 33

16. मज्झिम. 2, पृ. 219

17. बुद्धिस्ट फिलासफी, पृ. 24, पद संकेत 2
–पालि साहित्य का इतिहास (भरत सिंह) पृ. 138 से उद्धत

18. सारनाथ का इतिहास, पृ. 145

19. डायलाग आव द बुद्ध, प्रीफेस, पृ. 8

20. बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ. 107

21. मिलिन्दपञ्हो (द्वारिका दास शास्त्री), पृ. 16

22. बौद्ध धर्म दर्शन, पृ. 28

23. बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष, पृ. 107–108

24. 'ठपेत्वा चतुरायेते निकाये दीघमादिके।
तदञ्ञं बुद्धवचनं निकायो खुद्दको मतो।। सुमंगलविलासिनी, पृ. 32

25. भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, पृ. 71–72

26. 'भगवता बुधेन भासितेसवे से सुभासिते'
–अशोक के धर्म लेख, प्रथम भाग, पृ. 98

27. द्रष्टव्य–
सुमंगलविलासिनी, भूमिका (महेश तिवारी), पृ. 16

28. द्रष्टव्य– डायलाग आव द बुद्ध, प्रीफेस, पृ.–8

29. महायान सुत्रालंकार, पृ. 55

30. अर्थविनिश्चय सूत्र निबन्धनम्, पृ. 71–74

31. सुमंगलविलासिनी, भाग 1, पृ. 65

प्रथम परिच्छेद
संयुत्तनिकाय का सामान्य परिचय

संयुत्तनिकाय के अध्ययन के पूर्व उसके मूल स्वरूप को जानना आवश्यक है, अतः इस परिच्छेद में संयुत्तनिकाय के नामकरण, वर्गीकरण, वस्तुकथा, शैली तथा उससे सम्बन्धित टीका–ग्रन्थों, अनुवाद–ग्रन्थों आदि का परिचय दिया जा रहा है।

नामकरण –

संयुत्तनिकाय के नाम के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं। एक धारणा परम्परागत है, जो आकार के आधार पर इसके नामकरण पर विश्वास करती है। आकार के आधार पर माना जाता है कि छोटे, बड़े, मध्यम सभी प्रकार के सुत्तों के कारण इसका नाम संयुत्तनिकाय है।[1] कुछ विद्वान् गद्य–पद्य मिश्रित होने के कारण संयुत्त की सार्थकता मानते हैं।[2] अधिकांश विद्वान् इसका यह नाम सुत्तों के पूंजीबद्ध होने के कारण मानते हैं।

'संयुत्त' का अर्थ सम्बद्ध होने से हैं। संयुत्त के संस्कृत रूप संयुक्त (सम्+युज्+क्त) का अर्थ भी मिश्रित या सम्मिश्रित है।[3] इसके अंग्रेजी अनुवाद का नाम 'किण्डर्ड सेइंग' है जो सम्बद्ध अर्थ का सूचक है। सिलवां लेवी ने संयुत्तनिकाय को विभिन्न विषयों का संकलित 'गुलदस्ता' कहा है।[4] इसमें विषयवस्तु के आधार पर सुत्तों का संकलन किया गया है, जिनका नाम 'संयुत्त' है। यहां पर संयुत्त से तात्पर्य 'परिच्छेद' से है। परिच्छेदों का संयुत्तों में विभाजन संयुत्तनिकाय की विशेषता है। विण्टरनित्ज ने इसे उपदेशों का 'सम्बद्ध संग्रह' कहा है। इन्होंने इसके संग्रह में तीन सिद्धान्त बतलाये हैं–

1. बुद्ध धर्म के किसी मुख्य सिद्धान्त को विवेचित करने वाले सुत्तों के आधार पर संगृहीत संयुत्त।
2. मनुष्य, देवता या यक्ष आदि के नाम पर तथा
3. वक्ता, उपदेष्टा या प्रधान व्यक्ति के आधार पर।[5]

बी.सी.लाहा ने संयुत्तनिकाय को प्रमुख सिद्धान्तों का विषयानुसार संग्रह माना है।[6] भिक्षु जगदीश काश्यप ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि अन्य निकायों की अपेक्षा संयुत्तनिकाय में विषय विभाजन की कठिनाई कम है।[7]

एस.के.दास गुप्ता का एक अलग मत उल्लेखनीय है कि संयुत्तनिकाय में विशेष गोष्ठियों अथवा संयोगों में उपदेशित सुत्तों का वर्णन है। संयोगों अथवा गोष्ठियों में विशेष व्यक्तियों से मिलने का अवसर प्राप्त होता था और उस अवसर पर जो उपदेश हुआ करते थे वे संयुत्तनिकाय में उपलब्ध है।[8]

वर्गीकरण–

संयुत्तनिकाय पांच वर्गो एवं छप्पन संयुत्तों में विभक्त है। भिक्षु जगदीश काश्यप और धर्मरक्षित ने हिन्दी अनुवाद में चौवन (54) संयुत्तों में ही विभाजित किया है। इन्होंने पालि निदान संयुत्त एवं अभिसमय संयुत्त को निदान संयुत्त में तथा सळायतन संयुत्त एवं वेदना संयुत्त को एक ही संयुत्त में वर्णित किया है। इसके छप्पन संयुत्तों में से बत्तीस संयुत्त वर्गो में बंटे हुए हैं। प्रत्येक वर्ग में सामान्यतया दस सुत्त हैं। कुछ वर्गो में सुत्तों की संख्या अधिक भी है। स्कन्ध वर्ग एवं षडायतन वर्ग पण्णासकों में बंटे हुए हैं। स्कन्ध वर्ग में तीन पण्णासक एवं षडायतन वर्ग में चार पण्णासक हैं। प्रत्येक पण्णासक पांच वर्गो में बंटा हुआ है।

पण्णासक से तात्पर्य पचास से है, [9] किन्तु संयुत्तनिकाय के स्कन्ध वर्ग के पण्णासकों में कमशः 52,50 एवं 57 सुत्त तथा सळायतन संयुत्त के पण्णासकों में 52,51,52 एवं 93 सुत्त हैं। पण्णासकों की शैली मज्झिमनिकाय में पाई जाती है, इसके पण्णासकों के सुत्तों की संख्या भी कमशः 50, 50 एवं 52 है।

निकायों को अट्ठकथा में भाणवारों में भी परिगणित किया जाता है। सारत्थपकासिनी के अनुसार संयुत्तनिकाय में 100 भाणवार हैं। [10] राहुल सांस्कृत्यायन ने संयुत्तनिकाय में 134 भाणवार माने हैं तथा इसकी ग्रन्थ प्रमाण संख्या 480 अनुमानित की है। [11] पालि साहित्य में ग्रन्थ परिमाण बतलाने के लिए 32 अक्षरों वाले अनुष्टुप् छन्द को गिना जाता है। 220 छन्दों का एक भाणवार होता है, जिसे राहुल जी ने 'आह्निक' के पर्याय की आशंका की है तथा भाणवार में 220X32=7040 अक्षर माने हैं। नालन्दा संस्करण (देवनागरी) के पृष्ठों के आधार पर एक भाणवार के पृष्ठ की संख्या 11.1/4 बतलाई है। [12]

सुत्तसंख्या–

वर्तमान देवनागरी संस्करण में संयुत्तनिकाय के सुत्तों की संख्या 2941 है। बुद्धघोष की अट्ठकथाओं में इसके सुत्तों की संख्या 7762 बतलाई गई है, [13] जबकि आचार्य बुद्धघोष ने संयुत्तनिकाय की अट्ठकथा सारत्थपकासिनी में 56 संयुत्तों एवं उसके वर्तमान सुत्तों की ही व्याख्या की है तथा शेष सुत्तों की ओर कोई ध्यान आकृष्ट नहीं किया गया है। भिक्षु धर्मरक्षित ने गाथा का ही उद्धरण देकर संयुत्तनिकाय के सुत्तों की संख्या 1762 बतलाई है। [14] भिक्षु धर्मरक्षित ने यह गाथा किस अट्ठकथा से ली है इसका कोई उल्लेख नहीं किया है।

	संयुत्त नाम	वर्ग संख्या	सुत्त संख्या
		गाथ वर्ग	
1.	देवतासंयुत्तं	8	81
2.	देवपुत्तसंयुत्तं	3	30
3.	कोसलसंयुत्तं	3	25
4.	मारसंयुत्तं	3	25
5.	भिक्खुनीसंयुत्तं	—	10
6.	ब्रह्मासंयुत्तं	2	15
7.	ब्राह्मणसंयुत्तं	2	22
8.	वंगीससंयुत्तं	—	12
9.	वनसंयुत्त	—	14
10.	यक्खसंयुत्त	—	12
11.	यक्कसंयुत्तं	3	25
		निदान वर्ग	
12.	निदानसंयुत्तं	9	103
13.	अभिसमयसंयुत्तं	—	11
14.	धातुसंयुत्तं	4	39
15.	अनमतग्गसंयुत्तं	2	20
16.	कास्सपसंयुत्तं	—	13
17.	लाभसक्कार संयुत्त	2	22
18.	राहुलसंयुत्तं	4	43
19.	लक्खणसंयुत्तं	2	21
20.	ओपम्मसंयुत्तं	—	12
21.	भिक्खुसंयुत्तं	—	12
		स्कन्ध वर्ग	
22.	खन्धसंयुत्तं	15	159
23.	राधसंयुत्तं	4	46
24.	दृदिठ्ठिसंयुत्तं	4	95
25.	ओकन्तसंयुत्तं	—	10
26.	उप्पादसंयुत्तं	—	10
27.	क्लिससंयुत्तं	—	10

28.	सारिपुत्तसंयुत्तं	—	10
29.	नागसंयुत्तं	—	50
30.	सुपर्णसंयुत्तं	—	46
31.	गन्धब्बकायसंयुत्तं	—	112
32.	वलाहकसंयुत्तं	—	57
33.	वच्छगोत्तसंयुत्तं	—	55
34.	झानसंयुत्तं	—	55

सळायतन वर्ग

35.	सळायतनसंयुत्त	20	248
36.	वेदनासंयुत्तं	3	31
37.	मातुगामसंयुत्तं	3	34
38.	जम्बुखादकसंयुत्तं	—	16
39.	सामण्डकसंयुत्तं	—	16
40.	मोग्गल्लानसंयुत्तं	—	11
41.	चित्तसंयुत्तं	—	10
42.	गामणिसंयुत्तं	—	13
43.	असंखतसंयुत्तं	—	44
44.	अव्याकतसंयुत्तं	—	11

महा वर्ग

45.	मग्गसंयुत्तं	8 (+6)	181
46.	बोध्झङसंयुत्तं	18	189
47.	सतिपट्ठानप्रस्थानसंयुत्तं	10	110
48.	इन्द्रियसंयुत्तं	17	180
49.	सम्मप्पधानसंयुत्तं	5	55
50.	बलसंयुत्तं	10	110
51.	इद्धिपादसंयुत्तं	8	89
52.	अनुरुद्ध संयुत्तं	2	24
53.	झानसंयुत्तं	5	55
54.	आनापानसंयुत्तं	2	20
55.	सोतापत्ति संयुत्तं	7	74
56.	सच्चसंयुत्तं	11	137

वस्तु कथा–

संयुत्तनिकाय पांच वर्गो में विभाजित है। इसके प्रथम 'सगाथ वर्ग' का यह नाम गाथाओं की अधिकता के कारण है। द्वितीय वर्ग, तृतीय वर्ग एवं चतुर्थ वर्ग का नाम प्रथम संयुत्तों के आधार पर है तथा पंचम 'महावर्ग' का नामकरण इसके सिद्धान्तों की महत्ता एवं संयुत्तों की विशालता के कारण है।

सगाथ वर्ग–

प्रथम सगाथ वर्ग में देवता, देवपुत्त, कोसलराज प्रसेनजित, मार, भिक्षुणी, ब्रह्मा, ब्राह्मण, वंगीस, यक्ष एवं इन्द्र के विशेष सन्दर्भो में एक–एक स्वतंत्र संयुत्त है। उपर्युक्त के साथ भगवान् की वार्ता के रूप में ये गाथाएं हैं। गाथाओं की विभिन्न संयुत्तों में पुनरुक्ति भी है। इस वर्ग की अधिकांश गाथाएं सुत्तपिटक के अन्य ग्रन्थों में भी पाई जाती है। जैसे– वंगीस थेर से सम्बन्धित गाथाएं वंगीस थेरगाथा में, भिक्षुणी संयुत्त की गाथाएं थेरीगाथा में एवं अन्य गाथाएं धम्मपद, सुत्तनिपात आदि ग्रन्थों में पाई जाती हैं।

निदान वर्ग–

इस वर्ग का प्रथम संयुत्त दार्शनिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है। प्रतीत्यसमुत्पाद की इतनी विस्तृत, सूक्ष्म एवं गम्भीर व्याख्या सुत्तपिटक में अन्यत्र नहीं मिलती है। इस वर्ग के शेष संयुत्तों का प्रथम संयुत्त की विषयवस्तु से कोई सम्बन्ध नहीं है। धातुओं से सम्बन्धित विस्तृत परिचय धातु संयुत्त में मिलता है। अभिधर्मपिटक में धातुओं की व्याख्या के लिए 'धातुकथा' नामक एक स्वतंत्र ग्रन्थ है, लेकिन सुत्तपिटक में इस तरह का विस्तृत परिचय उपलब्ध नहीं था। काश्यप संयुत्त, लाभसत्कार संयुत्त, ओपम्य संयुत्त एवं भिक्षु संयुत्त में भिक्षुओं को दिए गए उपदेशों का विवरण है। इन संयुत्तों में भिक्षुओं के अनुशासन से सम्बन्धित अच्छी जानकारी मिलती है। राहुल संयुत्त में अनित्य–दु:ख तथा अनात्म का उपदेश दिया गया है, जिसका विस्तृत विवरण षडायतन संयुत्त में मिलता है। लक्षणसंयुत्त में विभिन्न नरकंकालों के आधार पर उनकी पूर्वगतियां बतलाई गई हैं।

स्कन्ध वर्ग–

इस वर्ग का प्रथम संयुत्त स्कन्ध संयुत्त है। इसमें पांच उपादानस्कन्धों की विस्तृत जानकारी दी गई है तथा विभिन्न उपमाओं से उनका स्पष्टीकरण किया गया है। राध संयुत्त में राध भिक्षु के प्रसंग में पांच स्कन्धों का ही वर्णन किया गया है। दिट्ठिसंयुत्त में विभिन्न दृष्टियों का वर्णन करते हुए उनकी उत्पत्ति का कारण पांच उपादनस्कन्धों में आसक्ति बतलाई गई है। ओक्कन्त संयुत्त में षडायतनों, धातुओं तथा पांच स्कन्धों को अनित्य बतलाया गया है। उत्पाद संयुत्त में षडायतन, स्कन्ध,

धातुओं आदि में आसक्ति को दुःख का कारण एवं आसक्ति के निरोध को दुःख का निरोध बतलाया गया है। क्लेश संयुत्त में छन्दराग को प्रत्ययों में उपक्लेश बतलाया गया है तथा इनमें नैष्कम्यता को प्रज्ञापूर्वक धर्मसाक्षात्कार करने में लगा हुआ बतलाया गया है। सारिपुत्त संयुत्त में सारिपुत्त को आठ ध्यानों में परिपूर्ण बतलाया गया है। यहॉ पर ध्यानों की व्याख्या अन्य सुत्तों एवं निकायों के समान की गई है। नामसंयुत्त, सुपण्णसंयुत्त, गन्धर्वकाय संयुत्त एवं बलाहक संयुत्त में इन योनियों में उत्पन्न होने के कारण इनके पुण्य एवं इनके भेद–प्रभेद बतलाये गए हैं। वच्छगोत्र संयुत्त में वत्सगोत्र परिब्राजक द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर हैं, जिसमें पांच उपादानस्कन्धों के प्रत्ययों के अज्ञान को विभिन्न दृष्टियों की उत्पत्ति का कारण बतलाया गया है। ध्यान संयुत्त में ध्यानियों की सफलताओं के आधार पर उनकी 220 कोटियां बतलाई गई हैं।

सळायतन वर्ग–

इसका प्रथम सळायतन संयुत्त संयुत्तनिकाय का सबसे बड़ा संयुत्त है, जिसमें षडायतनों का विस्तृत परिचय मिलता है। वेदना संयुत्त में वेदनाओं की सूक्ष्म जानकारी दी गई है। मातृगाम संयुत्त में महिलाओं से सम्बन्धित अच्छी जानकारी मिलती है। उनके कष्ट, सुख–वैभव, सुगति एवं दुर्गति के कारणों पर प्रकाश डाला गया है। जम्बुखादक संयुत्त एवं सामण्डक संयुत्त में विभिन्न बौद्ध पारिभाषिक शब्दों की जानकारी दी गई है। दोनों सुत्तों की विषयवस्तु एक ही है। एक में जम्बुखादक परिब्राजक तथा दूसरे में सामण्डक परिब्राजक प्रश्न पूछता है, बस यही अन्तर है। मोग्गल्लान संयुत्त में स्कन्धवर्ग में आए सारिपुत्त संयुत्त के समान मौद्गल्यायन को ध्यानों में परिपक्व बतलाया गया है। चित्त संयुत्त में चित्र गृहपति से सम्बन्धित सुत्त हैं। चित्र गृहपति को विभिन्न धर्मो का ज्ञाता बतलाया गया है। वह अन्य मतावलम्बियों के प्रश्नों का उत्तर देता है, उसे बौद्ध सिद्धान्त में दक्ष बतलाया गया है। गामणी संयुत्त में ग्रामणी के साथ निगण्ठनाटपुत्त का वाद–विवाद वर्णित है। ग्रामणी पहले निगण्ठों का उपासक था बाद में बौद्ध धर्म का उपासक हुआ। असंखत संयुत्त में निर्वाण को रागक्षय, द्वेष–क्षय एवं मोह–क्षय बतलाते हुए इसके मार्ग स्वरूप विभिन्न धर्मो का प्रतिपादन किया गया है तथा अव्याकृत संयुत्त में इनकी संख्या गिनाते हुए इनके कहने के कारण बतलाये गए हैं।

महावर्ग–

इस वर्ग में आर्य–अष्टांगिक मार्ग, सात सम्बोध्यंग, चार स्मृतिप्रस्थान, पांच इन्द्रिय, पांच बल, चार सम्यक्ज्ञान, चार ऋद्धिपाद, चार ध्यान, आनापान–स्मृति, स्रोतापत्ति अंग एवं चार आर्यसत्यों का एक–एक संयुत्त में विस्तृत परिचय मिलता है। इनमें से स्रोतापत्ति अंग एवं चार आर्यसत्यों को छोड़कर शेष सभी संयुत्तों के अधिकांश

सुत्तों में समानता है। इनमें अविद्या वर्ग, विहार वर्ग, मिथ्यात्व वर्ग, अप्रमाद वर्ग, बलकरणीय वर्ग एवं एषणा वर्ग आए हुए हैं और धर्मों का नाम बदलकर सभी विषय वस्तु सभी के साथ घटित बतलाई गई है। इनमें सैंतीस बोधिपाक्षिक धर्मों का विस्तृत परिचय मिलता है तथा उनके समान ही आनापान–स्मृति एवं ध्यानों का महत्त्व बतलाया गया है। सभी धर्मों को एक रस रूप बतलाया गया है। स्रोतापत्तिसंयुत्त में आर्यश्रावक की प्रथम अवस्था स्रोतापत्ति मार्ग एवं उसके फल की प्राप्ति का वर्णन तथा विभिन्न अग्र श्रावकों–गृहस्थों का परिचय दिया गया है। सच्च संयुत्त में आर्यसत्यों की विस्तृत जानकारी है। इसमें भगवान् का प्रथम उपदेश धर्मचकप्रवर्तन सुत्त भी संगृहीत है तथा विभिन्न उपमाओं द्वारा संसार की दुःखमय स्थिति चित्रित की गई है।

शैली–

संयुत्तनिकाय में सुत्तपिटक के अन्य ग्रन्थों की भांति सुत्तों में प्रारम्भिक निदान, कुशलक्षेम, अभिवादन, प्रश्नोत्तर के ढंग, आश्चर्य करने, परिताप करने तथा विदा करते समय एक समान शब्दों का प्रयोग हुआ है। पुनरुक्तियों की अधिकता एवं उपमाओं के प्रयोग की बहुलता है। संवादों में इतिहास एवं आख्यानों का समावेश किया गया है। नाटकीय कियात्मकता की अभिव्यक्ति मिलती है। एक वाक्य के बार–बार आने पर उसे संक्षेप में आदि और अन्त के शब्द को देकर पेय्याल या पे० लिखा रहता है, जिससे पहले आया सम्पूर्ण पाठ समझा जाता है। पेय्जाल से तात्पर्य पातुं+अल से है जिसका अर्थ है कि इतने में ही अर्थ जानना पर्याप्त है।[15]

पुनरुक्तियों की अधिकता का कारण विषय का स्पष्टीकरण करना भी है। प्रत्येक सुत्त विषयवस्तु की सूक्ष्मता को आगे बढ़ाता हुआ गम्भीरता की ओर बढ़ता जाता है। सुत्तों का एक दूसरे से कम सम्बन्ध होते हुए अपने आप में परिपूर्ण है। किसी दूसरे सुत्त पर स्पष्टीकरण के लिए आश्रित नहीं है। एक ही विषयवस्तु पर अनेक सुत्तों की उपलब्धि, सिद्धान्त वाक्यों का बारम्बार कथन एवं सुत्तों में व्याप्त पुनरुक्तियां विषयवस्तु को महत्वपूर्ण एवं स्मरण योग्य बनाने के लिए किया गया प्रयास प्रतीत होता है। पुनरुक्तियों की अधिकता का कारण यह भी माना जाता है कि संगीतियों में जब वचनों का संगायन किया गया तब प्रत्येक विहार के भिक्षु को सन्तुष्ट रखने के लिए उनके द्वारा कहे गए वचनों को स्थान देना था जिससे सभी विहारों के भिक्षु सन्तुष्ट रह सकें।[16]

नवांग विवरण –

बुद्धवचनों का नौ अंगों में विभाजन सबसे प्राचीन माना जाता है। नौ अंगों का यह विभाजन शैली के आधार पर है। संयुत्तनिकाय में इन सभी अंगों का प्रतिपादन मिलता है। जिसका विवरण इस प्रकार है–

सुत्त–

अट्ठकथा में सुत्त से तात्पर्य दोनों विभंग, निद्देस, खन्धक, परिवार, सुत्तनिपात तथा अन्य सुत्त नामक तथागत वचनों से है।[17] विण्टरनित्ज सुत्त से तात्पर्य सभी बुद्यद्धवचनों से मानते हुए सुत्तनिपात का विशेष उल्लेख करते है[18] गायगर ने सुत्त के अन्तर्गत गद्यात्मक उपदेशों की गणना की है।[19] आचार्य नरेन्द्र देव का विचार है कि सूत्र पहले आकार में छोटे होते थे तथा उनमें धर्मो के नाम एवं लक्षण होते थे, जिस प्रकार माला में दाने पिराये जाते हैं उसी प्रकार विविध कर्म एक सूत्र में ग्रथित होते थे। बाद में सूत्रों की संख्या और कलेवर में वृद्धि हुई एवं सभी प्रकार के उपदेशों को सूत्र कहा जाने लगा। इन्होंने पांच स्कन्ध, आयतन आदि से सम्बन्ध रखने वाली देशना को सूत्र कहा है।[20]

संयुत्त के सभी उपदेश 'सुत्त' नाम से हैं। सुत्तनिपात के अंशों से भी इसकी समानता है।[21] इसके अन्तर्गत आने वाली देशना भी स्कन्ध आयतन आदि से सम्बन्ध रखने वाली है। इसके छोटे–छोटे सुत्तों में धर्मो के नाम एव लक्षण समाहित हैं।

गेय्य–

गेय्य से तात्पर्य गद्य और पद्य मिश्रित रचनाओं से माना जाता है।[22] आचार्य नरेन्द्र देव ने गेय्य संस्कृत के गेय तुल्य माना है, जिसका तात्पर्य छन्दोबद्ध रचना से है, लेकिन इन्होंने गेय और गाथा की किसी छन्द विशेष में लिखा न मानकर श्लोकों का संग्रह मात्र माना है।[23] अट्ठकथा में संयुत्तनिकाय के सम्पूर्ण सगाथवर्ग की गेय्य के अन्तर्गत गणना की गई है।[24] आधुनिक विद्वान् भी संयुत्तनिकाय के प्रथम सगाथवर्ग को गेय की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण मानते हैं।

वेय्याकरण–विण्टरनित्ज ने वैय्याकरण से तात्पर्य व्याख्या एवं अर्थकथाओं से लिया है।[25] बौद्ध संस्कृत ग्रन्थों में वेय्याकरण से तात्पर्य भविष्यवाणी से है जो भविष्य के बुद्धों के सम्बन्ध में पूर्व घोषणाएं हैं। जातकट्ठवण्णना की निदानकथा में भी ऐसा ही अर्थ लिया जाता है। अट्ठकथा में वेय्याकरण के अन्तर्गत सम्पूर्ण अभिधर्मपिटक, गाथारहित सुत्त तथा आठअंगों से युक्त बुद्धवचनों की गणना की है।[26]

वेय्याकरण की दृष्टि से संयुत्तनिकाय में गाथा रहित सुत्त, आठ अंगों से युक्त बुद्धवचन तथा व्याख्यात्मक सुत्तों की बहुलता है। इसमें अट्ठकथाओं के अनुरुप व्याख्या एवं कथाएं भी हैं।

गाथा–विण्टरनित्ज एवं गायगर ने पूर्णतया पद्य में रचित रचनाओं को गाथा कहा है। अट्ठकथा में इसके अन्तर्गत धम्मपद, थेरगाथा, थेरीगाथा, सुत्तनिपात तथा सुत्तनाम से रहित गाथाओं की गणना की है।[27]

संयुत्तनिकाय के अधिकांश सुत्त के प्रारम्भिक अंश गद्य में तथा बाद में गाथाएं हैं लेकिन ऐसे भी सुत्त हैं जो पूर्णतया पद्य में हैं। सगाथवर्ग में ऐसे सुत्त पाए जाते हैं जिनमें निदान भी नहीं दिया गया है। इसमें सुत्तनिपात, धम्मपद, थेरगाथा एवं थेरी गाथा के अनुरुप बहुत सी गाथाएँ हैं तथा इसका प्रथम वर्ग सगाथ वर्ग है। संयुत्तनिकाय में धम्मपद यह नाम भी आया है।[28] संयुत्तनिकाय अट्ठकथा के अनुसार तत्प्रसंग में अप्रमाद वर्ग का उपदेश किया गया है।[29] धम्मपद को 31 गाथाएं संयुत्तनिकाय में विविध प्रसंगों में आई हैं।

वंगीस थेरगाथा में संयुत्तनिकाय की 70 गाथाएं एवं महामोद्गल्यायन से सम्बन्धित 5 गाथाएं समान हैं। संयुत्तनिकाय में गाथाओं के पूर्व उनका 'निदान' किया गया है।

संयुत्तनिकाय के भिक्षुणी संयुत्त में आगत भिक्षुणियों से सम्बन्धित गाथाएं थेरीगाथा में आई हुई हैं। सन्दर्भो में कुछ भिन्नता अवश्य है। उत्पलवर्णा से सम्बन्धित 4 गाथाएँ, सोमा थेरी से सम्बन्धित दो गाथाएं समान हैं। सेला थेरी गाथा की गाथा किसागोतमी सुत्त एवं आलविका सुत्त में है। खेमा थेरी की गाथा विजया भिक्षुणी के प्रसंग में है। उपचाला, चाला तथा सीसुपचाला की गाथाएं बदलकर संयुत्तनिकाय में चाला, सीसुपचाला एवं उपचाला के प्रसंग में आई हैं।

सुत्तनिपात में संयुत्तनिकाय के मार संयुत्त की गाथाएं आई हुई हैं।

इतिवुत्तक–

इतिवुत्तक का अर्थ 'ऐसा कहा गया है' इसके अन्तर्गत 112 प्रवचनों की गणना की गई है।[30] इत्तिवुत्तक खुददकनिकाय के ग्रन्थों में गिना जाता है। इसका प्रत्येक सुत्त 'वुत्तं हेतु भगवता' से प्रारम्भ होता है। यह प्रामाणिक बुद्धवचन माना जाता है। संयुत्तनिकाय में इतिवुत्तक के अनुरुप सुत्त एवं गाथाएं हैं। अन्तर मात्र यह है कि 'वुत्तं हेतुं भगवता' की जगह संयुत्तनिकाय में विस्तृत निदान दिया गया है। संयुत्तनिकाय के समिद्धि सुत्त की तीन गाथाएं, इतिवुत्तक के अद्धा सुत्त में, कल्याणमित्त सुत्त की पांच पंक्तियां तथा पुरिससुत्त, कल्याणमित्तसुत्त एवं देवहित सुत्त की गाथाएं इतिवुत्तक में आई हुई हैं।[31]

जातक–

550 जातकों को जातक के अन्तर्गत गिना जाता है।[32] विण्टरनित्ज ने बुद्ध के पूर्वजन्म से सम्बन्धित सभी प्रसंगों को जातक कहा है। संयुत्तनिकाय में भगवान् बुद्ध के पूर्वजन्म की कुछ गाथाएं आई हुई हैं। जातक में आगत बकजातक संयुत्तनिकाय में बकब्रह्मसुत्त नाम से आया है।[33] आदित्य जातक की 7 गाथाएँ, तथा विलारकोलिव जातक की 9 गाथाएं[34] संयुत्तनिकाय में आई हुई हैं। इसके अतिरिक्त 30 से अधिक गाथाएं दोनों ग्रन्थों में समान रूप से मिलती हैं।

अद्भुत धर्म–

आश्चर्यो से युक्त सभी धर्मो को अद्भत धर्म कहा गया है तथा इनके अन्तर्गत चार अद्भुत धर्मों की गणना की गई है। [35] विण्टरनित्ज ने इन धर्मो के अन्तर्गत चमत्कारिक वर्णनों [36] तथा गायगर ने अलौकिक शक्तियों से युक्त प्रसंगों की गणना की है। [37]

संयुत्तनिकाय में भी अद्भुत धर्मो, चमत्कारिक वर्णनों एवं अलौकिक शक्तियों की भरमार है। इद्धिपाद संयुत्त में चार ऋद्धिपाद एवं उसकी शक्तियों में अद्भुत धर्मो की गणना की गई है तथा प्रथम सगाथ वर्ग में देवता, देवपुत्र, मार, ब्रह्मा आदि अलौकिक शक्तियों का विस्तृत परिचय मिलता है।

वेदल्ल–

प्रश्नोत्तर स्वरूप उपदेशों को 'वेदल्ल' कहा जाता है। अट्ठकथा में इसके अन्तर्गत चूल वेदल्लसुत्त, महावेदल्लसुत्त, सम्मादिट्ठिसुत्त, सक्कपञ्हासुत्त तथा महापुराण आदि सुत्तों की गणना की गई है। [38] गायगर ने वेदल्ल का अर्थ अस्पष्ट माना है क्योंकि उत्तरी बौद्धधर्म में वेदल्ल का अर्थ वेपुल्य कहा जाता है। [39]

संयुत्तनिकाय के प्रथम सगाथवर्ग की विशेषता है कि इसकी गाथाएं प्रश्नोत्तर स्वरूप हैं। पहले देवता आदि गाथा में ही प्रश्न पूछता है तथा भगवान् भी उसका उत्तर गाथा में ही देते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य वर्गो के सुत्तों में भी प्रश्नोत्तर शैली पाई जाती है।

कालक्रम एवं प्रामाणिकता :–

त्रिपिटक का कालक्रम विभाजित करते हुए विद्वानों ने संयुत्तनिकाय को चौथे स्थान पर रखा है। सर्वप्रथम उन वचनों को स्थान दिया गया है जो त्रिपिटक के सभी ग्रन्थों की गाथाओं में पाए जाते हैं। दूसरे वे बुद्धवचन हैं जो समान शब्दों में केवल दो या तीन ग्रन्थों में पाये जाते हैं। तीसरे–सील–परायण वग्ग, अट्ठकवग्ग एवं पातिमोक्ख तथा चौथे दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय, अंगुत्तरनिकाय एवं संयुत्तनिकाय हैं। इसके बाद शैष बुद्ध वचनों को स्थान दिया जाता है। [40]

विलियम गायगर ने संयुत्तनिकाय को दीघनिकाय एवं मज्झिमनिकाय के बाद एक पूरक संकलन मात्र माना है। [41] विद्वानों ने 'सुत्तन्त' के अन्तर्गत संयुत्तनिकाय के सुत्तों की गणना नहीं की है। 'सुत्तन्त' के अन्तर्गत प्रथम दो निकाय की ही गणना की है। आधुनिक विद्वान् भी संयुत्तनिकाय को बहुत बाद की रचना कह देते हैं। [42] संयुत्तनिकाय में दीघनिकाय के ब्रह्मजाल सुत्त का नाम आया है, [43] जिससे यह अनुमान लगाना कि संयुत्तनिकाय बाद की रचना है उचित प्रतीत नहीं होता है। सभी बुद्ध वचनों का प्रथम संगीति में संगायन हुआ था। संयुत्तनिकाय में ब्रह्मजाल सुत्त के

नाम का कारण यही है कि भगवान् ने इस सुत्त के उपदेश के साथ ही इस सुत्त का यह नाम दे दिया था जिससे इसमें आगत दृष्टियों की चर्चा के समय इस सुत्त का नाम लिया जाता है।

दीघनिकाय एवं संयुत्तनिकाय की विषयवस्तु के आधार पर संयुत्तनिकाय में ऐसी कोई मान्यता नहीं मिलती है जिससे संयुत्तनिकाय को बाद का माना जाय। संयुत्तनिकाय में दीघनिकाय एवं मज्झिमनिकाय की विषयवस्तु में समानता है। कुछ सुत्त समानरूप से मिलते हैं। दीघनिकाय की अपेक्षा संयुत्तनिकाय का परिनिर्वाण सुत्त अधिक प्रमाणिक माना जाता है। वास्तव में प्राथमिक चार निकायों का अन्तरसंगायन की प्रक्रिया का परिणाम है न कि समय का। इस सन्दर्भ में प्रो. बी0सी0 लाहा का मत है कि संयुत्तनिकाय पहले दो निकायों के आलोचना का फल है तथा उसमें बौद्ध दर्शन के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों का कमिक एवं औचित्यपूर्ण परिपाक है। [44]

संयुत्तनिकाय को कण्ठस्थ करने के एवं उसकी भाणक परम्परा के उद्धरण अट्ठकथाओं में मिलते हैं। अट्ठसालिनी में संयुत्त भाणक शब्द आया है। [45] पपंचसूदनी में वर्णित है कि सामणेर तिस्स झाडू लगाते समय सम्पूर्ण संयुत्तनिकाय को मौखिक पढ़ता रहता था। [46] महाकाश्यप संयुत्तनिकाय के संरक्षक एवं संगायक बतलाये गए हैं। [47] समन्तपासादिका में वर्णित है कि जब राजा महेन्द्र अनुराधपुर की राजधानी गए तब महेन्द्रराजा ने पेतवत्थु, विमानवत्थु तथा सच्चसंयुत्त का उपदेश दिया। [48]

महत्त्व :–

संयुत्तनिकाय का नाम एवं उनके सुत्तों का उल्लेख बड़े ही सम्मान एवं प्रामाणिक बुद्धवचनों के रूप में लिया जाता रहा है एवं लिया जाता है।

कथावत्थु में विभिन्न सन्दर्भो में भगवान् बुद्ध के वचनों को प्रतिपादित करने के लिए 'सुत्तन्त' के रूप में संयुत्तनिकाय की गाथाएं उद्धृत की गई हैं। [49] पेटकोपदेश [50], मिलिन्द प्रश्न [51] में संयुत्तनिकाय के नाम सहित वचनों को उद्धत किया गया है। धम्मपदट्ठ कथा में संयुत्तनिकाय की 15 कथाएं समान रूप से मिलती हैं। [52] आचार्य बुद्धघोष ने संयुत्तनिकाय की गाथाओं की व्याख्या में अपने 'विशुद्धिमग्ग' ग्रन्थ की रचना की है एवं संयुत्तनिकाय के वचनों को उद्धृत किया है।

बौद्ध संस्कृत ग्रन्थों में भी संयुत्तनिकाय का नामोल्लेख किया जाता है एवं उसके वचनों को उद्धृत किया जाता है। दिव्यावदान [53] एवं महाव्युत्पत्ति [54] में नामोल्लेख है। सूत्रालंकार में 17 सुत्त समान हैं। 55 चाइनीज मध्यमिक आगम में 10 सुत्तों की समानता है। [56]

संयुत्तनिकाय का महत्त्व वर्णन करते हुए भिक्षु धर्म रक्षित ने कहा है कि

इसके सुत्त रोचक, लालित्यपूर्ण, गम्भीर, मार्मिक एवं ऐतिहासिक हैं। उन्होंने इसे दार्शनिक, साहित्यिक, भोगेलिक, ऐतिहासिक एवं धार्मिक दृष्टि से सुत्तपिटक के ग्रन्थों में महत्त्वपूर्ण माना है। [57] राहुल सांस्कृत्यायन से स्थालीपुलाक न्याय से इसका महत्त्व अंकित किया है तथा दार्शनिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माना है। [58] जगदीश काश्यप ने भी दार्शनिक महत्त्व स्वीकार करते हुए इसके विषय विभाजन के महत्त्व को स्वीकार किया है। [59]

सम्बद्ध साहित्य :–

अट्ठकथा–

साहित्य अन्य निकायों की भांति इसकी भी अट्ठकथा है। इसकी अट्ठकथा का नाम 'सारत्थपकासिनी' है। इसके रचयिता आचार्य बुद्धघोष हैं। आचार्य बुद्धघोष ने सारत्थपकासिनी की रचना ज्योतिपाल नामक भिक्षु की प्रार्थना पर की थी। इसकी रचना महाअट्ठकथा के आधार पर की गई थी जो श्रीलंका में पहले से विद्यमान थी। डा0 आदिकरम ने इस अट्ठकथा को महत्त्वपूर्ण रचना माना है। [60]

सारत्थपकासिनी की टीका का भी उल्लेख मिलता है। वर्णित है कि श्रीलंका में पराक्रमबाहु के शासन काल में एक सभा बुलाई गई जिसका उद्देश्य अट्ठकथाओं पर टीका लिखना था। इस सभा के संयोजक प्रसिद्ध सिंहली भिक्षु स्थविर महाकाश्यप थे। इसमें ततिय सारस्थ मंजूषा नामक सारत्थपकासिनी की टीका लिखी गई थी। [61] गंधवश के अनुसार सारत्थपकासिनी की टीका का नाम सारत्थमंजूस है तथा उसके रचयिता का नाम सारिपुत्त है। [62] 1442 के बरमा के पगान अभिलेख में संयुत्तनिकाय के सगाथवर्ग संयुत्त, निदानवर्ग संयुत्त तथा षडायतन वर्ग संयुत्त की अट्ठकथाओं के नाम तथा सगाथ वर्ग संयुत्त एवं खन्धवर्ग संयुत्त की टीका का उल्लेख मिलता है। [63] आज सारत्थ्पकासिनी अट्ठकथा के अतिरिक्त कोई टीकाएं उपलब्ध नहीं है। सारत्थपकासिनी के विभिन्न संस्करण उपलब्ध हैं। यह पालि टेक्स्ट सोसाअटी, लन्दन से रोमन में तीन भागों में प्रकाशित है। दुर्भाग्य से देवनागरी में अभी तक इसका प्रकाशन नहीं हुआ है। सारत्थपकासिनी को समझने के पूर्व आचार्य बुद्धघोष की ही रचना विशुद्धिमार्ग को पढ़ना अनिवार्य है क्योंकि जिसकी व्याख्या आचार्य जी ने 'विशुद्धिमार्ग' में की है उसको विस्तार भय के कारण अट्ठकथाओं में दुहराया नहीं गया है। इसका उल्लेख आचार्य बुद्धघोष ने निकायों की अट्ठकथा की भूमिका में किया है।

अनुवाद ग्रन्थ–

संयुत्तनिकाय का अंग्रेजी अनुवाद पालि टैक्स्ट्स सोसाइटी, लन्दन से पांच भागों में प्रकाशित है। प्रथम दो भागों का अनुवाद श्रीमती रीज डेविड्स ने सुरियसुमंगल

थेर एवं एफ.एल. वुडवर्ड के सहयोग से किया है तथा तृतीय, चतुर्थ एवं पंचम भाग का अनुवाद एफ.एल.बुडवर्ड द्वारा किया गया है। इसका जर्मन अनुवाद 1925 में विलियम गायगर द्वारा किया गया है जिसके दो भाग प्रकाशित हुए हैं तथा हिन्दी अनुवाद भिक्षु जगदीश काश्यप एवं धर्मरक्षित द्वारा किया गया है जो दो भागों में महाबोधि सभा, सारनाथ से प्रकाशित हुआ है।

संस्करण–

संयुत्तनिकाय के विभिन्न संस्करण सिंहली स्यामी एवं वर्मो लिपियों में प्रकाशित हुए हैं।[64] इसका रोमन संस्करण लियोन फियर द्वारा पालि टेक्स्ट् सोसाइटी से प्रकाशित हुआ है। देवनागरी संस्करण 1959 में नवनालन्दा महाविहार से चार भागों में प्रकाशित हुआ है जिसके प्रधान सम्पादक भिक्षु जगदीश काश्यप हैं। इगतपुरी से मूल के साथ अट्ठकथा का प्रकाशन हुआ।

संयुक्तागम–

संयुत्तनिकाय की भांति सर्वास्तिवादियों का संयुक्तागम चाइनीज में पाया जाता है। अनेस्की के अनुसार चाइना में संयुक्तागम के तीन संस्करण हैं। एक द्वितीय शताब्दी का, एक पांचवीं शताब्दी के पूर्व का है जो मध्य एशिया के उत्तरी भारत के आधार पर है तथा एक 435–493 ईस्वी समय का है जो श्रीलंका के जेतवन विहार से अनुवादित हुआ था।[65] यह अनुवाद गुणभद्र भिक्षु द्वारा किया गया था।[66]

संयुक्तागम 50 अध्यायों में विभक्त हैं। इसका चाइनीज नाम मिसेलिनियस है।[67] नानजियो ने संयुक्तागम एवं संयुत्तनिकाय में काफी अन्तर मानते हुए भी विषयवस्तु के आधार पर समानता बतलाई है।[68] प्रो. अकोनमा ने आगम और निकायों का तुलनात्मक अध्ययन किया है।[69] संयुक्तागम का उल्लेख महायान के विभिन्न ग्रन्थों में हुआ है।[70]

संदर्भ – विवरण

1. संयुत्त. 1, आमुख, पृ. 4
2. भगवान् बुद्ध, जीवन और दर्शन, भूमिका, पृ. 17
3. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पृ. 1142
4. लिटरेचरी हिस्ट्री आव संस्कृत बुद्धिज्म, एपिण्डिक्स 1, पृ. 163 से उद्धृत
5. ए हिस्ट्री आव इण्डियन लिटरेचर, भाग 2, पृ. 54–56
6. हिस्ट्री आव पालि लिटरेचर, भाग 1, पृ. 32
7. संयुत्त. 1, आमुख, पृ. 4
8. भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग 1, पृ. 88
9. पण्णासक–पंचासक=50। –पालि साहित्य का इतिहास (धर्मरक्षित), पृ. 51
10. 'भाणवारती भाणवार सतं होति। सारत्थपकासिनी, भाग 1, पृ. 3
11. पालि साहित्य का इतिहास (राहुल सांस्कृत्यायन) पृ. 95
12. वही, पृ. 55, 15

13. 'सत्तसुत्त सहस्सानि सत्तसुत्त सतानि च।
द्वासट्ठिचेव सुत्तानि, एसो संयुत्त संगहो'ति।।
सारत्थपकासिनी, भाग 1, भूमिका, पृ. 2, –समन्तपासादिका, भाग 1, पृ. 25, अट्ठसालिनी, पृ. 22, सुमंगलविलासिनी, भाग 1, पृ. 31

14. 'सुत्तन्तानं सहस्सानि सत्तसुत्त सतानि च।
द्वासट्ठि चेव सुत्तन्ता एसो संयुत्त संगहो।। –पालि साहित्य का इतिहास (धर्मरक्षित), पृ. 56

15. पालि साहित्य का इतिहास, (धर्मरक्षित), पृ. 43

16. द्रष्टव्य– पालि लिटरेचर एण्ड लैंग्वेज, पृ. 11–12

17. 'तत्थ उभतो विभंग निद्देस–खन्धक–परिवारा, सुत्तनिपातो मंगलसुत्त–रतनसुत्त–नाळवसुत्त तुवट्ठक सुत्तानि च अञ्ञं पि च सुत्तनामकं तथागत वचनं सुत्तं ति वेदितब्बं।
समन्तपासादिका, भाग 1, पृ. 25

18. हिस्ट्री आव इण्डियन लिटरेचर, भाग 2, पृ. 10

19. पालि लिटरेचर एण्ड लैंग्वेज, पृ. 13

20. बौद्ध धर्म दर्शन, पृ. 28

21. आलवक सुत्त, सुभासित सुत्त, कोकालिक सुत्त, सुन्दरिकभारद्वाज सुत्त तथा कवि भारद्वाज सुत्त दोनों ग्रन्थों में आए हुए हैं।
–संयुत्त 1, पृ. 215, 188, 150, 166 एवं 171 तथा खुद्दक. 1, पृ. 295, 233, 368, 334 एवं 200

22. हिस्ट्री आव इण्डियन लिटरेचर, भाग 2, पृ. 10

23. बौद्ध शर्म दर्शन, पृ. 28

24. 'सब्बं पि सगाथकं सुत्तं गेय्यं ति वेदिवब्बं। विसेसेन संयुत्तके सकलो पि सगाथवग्गो। –समन्तपासादिका, भाग 1, पृ. 25

25. हिस्ट्री आव इण्डियन लिटरेचर, भाग 2, पृ. 10

26. 'सकलम्पि अभिधम्मपिटकं, निग्गाथकं सुत्तं, यं च अञ्ञपि अट्ठहि अंगेहि असंगहितं बुद्धवचनं, तं वेय्याकरणं ति वेदितब्बं।' समन्तपासादिका, भाग 1, पृ. 25–26

27. 'धम्मपद, थेरगाथा, थेरीगाथा सुत्तनिपाते नो सुत्तनामिका सुद्धिकगाथा च ति वेदितब्बा।'
समन्तपासादिका, भाग 1, पृ. 26

28. 'मा सद्दं करि पिंकर, भिक्खु धम्मपदानि भासति।
अपि च धम्मपद विजानिय, पटिपज्जेन हिताय नो सिया।। –संयुत्त. 1, पृ. 311

29. सारत्थपकासिनी, भाग 1, पृ. 309

30. 'वुत्तं हेतु भगवता'ति आदिनयप्पवत्ता दसुत्तर सुत्तसुत्तन्ता इतिवुत्तकं ति वेदिवब्बं।'
– समन्तपासादिका, भाग 1, पृ. 26

31. द्रष्टव्य–संयुत्त. 1, पृ. 69, 88, 166, 183, 185, 138, 173 एवं खुद्दक.– पृ. 213, 219, 197, 220, 214, 204, 217

32. 'अप्पण्णक– जातकादीनि पञ्ञासाधिकानि पञ्चजातक सतानि जातकं ति वेदितब्बं।'
–समन्तपासादिका, भाग 1, पृ. 26

33. संयुत्त, 1, पृ. 143 एवं जातक (हिन्दी) भाग 4, पृ. 22–25

34. संयुत्त. 1, पृ. 18, 19 एवं जातक भाग 1, पृ. 210–211

35. 'चत्तारो मे भिक्ख वे अच्छरिया अब्भुत धम्मा आनन्देति आदिनयप्पवत्ता सब्बे पि अच्छरियब्भुतधम्म वटिसंयुत्त सुत्तन्ता अद्भुत धम्मं' ति वेदितब्बं।' –स.पा., भाग 1, पृ. 26

36. हिस्ट्री आव इण्डियन लिटरेचर, भाग 2, पृ. 10

37. पालि लिटरेचर एण्ड लेंग्वेज, पृ. 14

38. 'चूलवेदल्ल–महावेदल्ल–सम्मादिट्ठि–सक्कपण्ह संखरभाजनिय महापुण्णसुत्तादयो सब्बे पि वेदं च लद्धा लद्धा पुच्छितसफततन्ता वेदल्लं ति वेदिवब्बा।' –स.पा., भाग 1, पृ. 26

39. पालि लिटरेचर एण्ड लैंग्वेज, पृ. 10

40. (क) बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ. 121–122 (ख) ए हिस्ट्री आव पालि लिटरेचर, भाग 1, पृ 42

41. पालि लिटरेचर एण्ड लैंग्वेज, पृ. 18 42. बौद्ध धर्म–दर्शन, पृ. 28

43. 'यानिचिमानि ब्लासट्ठि दिट्ठिगतानि ब्रह्मजाले भणितानि।' –संयुत्त. 4, पृ. 255

44. हिस्ट्री आव इण्डियन लिटरेचर, भाग 2, पृ. 39 45. अट्ठसालिनी, पृ. 330

46. पपंचसूदनी, भाग 2 (रोमन) पृ. 92 47. आचार्य बुद्धघोष और उनकी अट्ठकथाएं, पृ. 55

48. समन्तपासादिका, भाग 1, पृ. 69 49. कथावत्थु, पृ. 306, 262, 383, 428 एवं 478

50. पेटकोपदेश (रोमन) पृ. 9

51. 'भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन संयुत्तनिकाय व'।
–मिलिन्दप्रश्न (द्वारका दास शास्त्री) पृ. 281 एवं द्रष्टव्य पृ. 284, 105, 261, 156, 173

52. बुद्धिस्ट लाजेण्ड्स भाग 1, पृ. 45, 46, 53. दिव्यावादनम् पृ. 206

54. महाव्युत्पत्ति, 1424.65–100 55. लिटरेरी हिस्ट्रीस आफ सं. बु. पृ. 29

56. मज्झिम. 1, पृ. 18–25 57. पालि साहित्य का इतिहास पृ. 56

58. पालि साहित्य काइतिहास राहुल. पृ. 95–107 59. सं. 1 पृ. 4 आमुख

60. बुद्धघोष उनकी अट्ट कथाएं पृ. 59 से उद्धृत 61. पा.सा. का इतिहास (भरत सिंह) पृ 569

62. वही, पृ. 617 63. वही पृ 684–85

64. सिंहली संस्करण–भिक्षु वन्दन मुल्ले एवं अमर सिंह महाथेर द्वारा 1926 में

65. 13वां अन्तर्रा. कां. आव ओरियन्टलिस्ट हमवर्ग, सित. 1902, संक्सन 11 ए.पी. 61

66. स्टडीज आव दो ओरिजन्स आव बुद्धिज्म, पृ. 180

67. पा.सा.का.इ. (भरत) पृ.127

68. स्टडीज आव दी ओरिजन्स आव बुद्धिज्म, पृ 5

69. वही पृ. 3–4 70. वही

71. दिव्यावदान पृ. 206

द्वितीय परिच्छेद

बुद्धकथा

भगवान् बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित अधिकांश साहित्य परवर्ती है। प्राचीन बौद्ध–साहित्य में तथागत के जीवन को प्रकाशित करने वाली कथाएं अल्पमात्रा में उपलब्ध होती हैं।

संयुत्तनिकाय त्रिपिटक के प्राचीन ग्रन्थों में एक है। इसमें बौद्ध धर्म से सम्बन्धित प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है किन्तु भगवान् बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित सामग्री कमबद्ध रूप में उपलब्ध नहीं है। जो सामग्री उपलब्ध है वह प्रसंगवशात् वर्णित अथवा प्रत्येक सुत्त के पूर्व प्रसंग के आधार के रूप में कही गयी है। इस प्रकार से संयुत्तनिकाय में भगवान् बुद्ध के पैंतालिस वर्षीय जीवन (बोधि प्राप्ति से लेकर परिनिर्वाण काल तक) के घटना प्रसंगों का वर्णन मिलता है।

भगवान् बुद्ध का जीवन–चरित्र वर्णन करते समय तीन उपविभागों में बांटा जाता है। प्रथम– पूर्व जीवन से सम्बन्धित, द्वितीय– जन्म से बोधि प्राप्ति के पूर्व तक, तृतीय–बोधि प्राप्ति से लेकर महापरिनिर्वाण तक। इन तीन उपविभागों को निदानकथा में दूरेनिदानं, अविदूरे निदानं एवं सन्तिके निदानं कहा गया है।

इस परिच्छेद में, इसी परम्परा के आधार पर हमने संयुत्तनिकाय में वर्णित प्रसंगों को तीन उपशीर्षकों के अन्तर्गत विभक्त किया है तथा भगवान् की चर्या एवं गुणों का वर्णन किया है। भगवान् बुद्ध के जीवन चरित्र के विभिन्न स्रोत हैं। इस परिच्छेद में आवश्यकतानुसार अन्य स्रोतों की भी सहायता ली गई है।

दूरेनिदान

दूरेनिदान के अन्तर्गत भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्मों का विवरण, पूर्वबुद्धों का परिचय एवं बुद्धवंश की परम्परा का अध्ययन आता है। इन प्रसंगों का विस्तृत विवरण परवर्ती साहित्य में अधिक मिलता है।

संयुत्तनिकाय में इनके बीज विद्यमान हैं, यहां इनका वर्णन धार्मिक आदर्श के रूप में हुआ है। ये तथ्य इसलिए भी महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि भगवान् बुद्ध ने स्वयं इन मान्यताओं को स्वीकार किया है एवं इनका उल्लेख भी किया है। भगवान् बुद्ध के समय में ही इन मान्यताओं की स्थापना हो गई थी लेकिन उस समय अत्यधिक महत्त्व नहीं दिया जाता था। ऐसा होना स्वाभाविक भी है। गौतम बुद्ध के विद्यमान रहते उनके शिष्य किसी पूर्व बुद्ध को क्यों अधिक महत्त्व देते।

भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद इन मान्यताओं को अधिक महत्त्व मिला तथा बुद्ध एवं उनके जीवन पर काव्य लिखे गए। इन मान्यताओं का विस्तृत विवरण अनेक ग्रंथों में मिलता है। इन मान्यताओं को हम पालि त्रिपिटक के अन्तर्गत खुद्दकनिकाय के जातक, बुद्धवंश एवं चरियापिटक में विस्तृत रूप में पाते हैं। दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय के भी कुछ सुत्तों से उपर्युक्त मान्यताओं की पुष्टि होती है। अंगुत्तरनिकाय एवं संयुत्तनिकाय में इस विषय को प्रतिपादित करने वाली सामग्री अत्यल्प मात्रा में उपलब्ध है।

संयुत्तनिकाय में इस परम्परा से सम्बन्धित निम्न जानकारी उपलब्ध होती है— भगवान् गौतम बुद्ध के पूर्व जन्म का परिचय, बुद्धवंश परम्परा का वर्णन एवं पूर्व छः बुद्धों का परिचय।

भगवान् बुद्ध के पूर्वजन्म का परिचय :—

संयुत्तनिकाय के दो सुत्तों में भगवान् गौतम बुद्ध के पूर्वजन्म की घटनाओं का उल्लेख मिलता है। अन्य ग्रन्थों में पूर्वजन्म में भगवान् गौतम बुद्ध को बोधिसत्व कहा गया है किन्तु संयुत्तनिकाय में इसका उल्लेख नहीं है। पूर्वनाम के अनुसार ही उनका उल्लेख है। बोधिसत्व से सम्बन्धित विवरण इसी जन्म के हैं।

एक सुत्त में भगवान् ने अपने को कुशावली नगर का राजा कहा है। उस समय का वैभव भी वर्णित है— जैसे कि कुशावती नगर सहित चौरासी हजार नगरियां, महाव्यूह कूटागार सहित चौरासी हजार कूटागार, प्रमुख उपोसथ हस्तिपाल सहित चौरासी हजार हाथी, प्रमुख वैजयन्त रथ सहित चौरासी हजार रथ, प्रमुख वलाहक अश्व सहित चौरासी हजार अश्व, सुभद्रा देवी प्रमुख रानी सहित चौरासी हजार रानियां, प्रमुख नायक सहित चौरासी हजार नायक। इसी प्रकार प्रमुख सहित चौरासी हजार गायें, चौरासी हजार थालियां आदि। अन्त में उपर्युक्त सम्पूर्ण वैभवों को नष्ट हुआ कहकर अपने प्रमुख सिद्धांत 'अनित्यता' की पुष्टि की गई है। [1]

द्वितीय सुत्त में भगवान् बुद्ध ने अपने को पूर्वजन्म में बकब्रह्मा का कप्प नामक शिष्य कहा है। एक बार भगवान् श्रावस्ती के जेतवन में विहार कर रहे थे, उनको अपने चित्त से बकब्रह्मा के मन की बात ज्ञात हुई कि बक–ब्रह्मा को पापदृष्टि उत्पन्न हो गई है कि ब्रह्मलोक नित्य है, ध्रुव है, शाश्वत है, अखण्ड है, जरामरण से परे सर्वश्रेष्ठ मुक्ति का स्थान है। ऐसा जानकर भगवान् अन्तर्ध्यान हो ब्रह्मलोक में प्रकट हुए। प्रकट होकर ब्रकब्रह्मा को समझाया कि वह मिथ्यादृष्टि में पड़ा हुआ है, यथार्थता बतलाते हुए अनित्यता सिद्ध की एवं सर्वश्रेष्ठ मुक्ति निर्वाण पद को बतलाते हुए ब्रह्मलोक में उत्पन्न होने को कुछ पुण्यों का फलमात्र बतलाया। बकब्रह्मा द्वारा पूछने पर कि क्या वे उसके पूर्वजन्मों के वृत्तान्त को जानते हैं भगवान् ने उसके पूर्वजन्म के तीन वृत्तान्त बतलाये। उसने एक प्यासे को पानी पिलाया था।

एक आदमी को डूबने से बचाया था तथा नेवला को सर्प से छुड़ाया था, जिससे वह इस पुण्य का भागी हुआ।[2] इसी प्रसंग में भगवान् ने अपने को बकब्रह्मा का शिष्य बतलाया है कि वे उसके 'कप्प' नामक शिष्य थे और उसके गुणों से प्रभावित थे।[3]

बुद्धवंश परम्परा :–

सामान्यतया माना जाता है कि ई.पूर्व छठी शताब्दी में उत्पन्न सिद्धार्थ गौतम ही प्रथम बुद्ध थे। इतिहासविद् भी ऐसा ही मानते हैं। बौद्धसाहित्यपरम्परा में यह बात नहीं है। बौद्धपरम्परा की सभी शाखाएं मानती हैं कि बुद्ध शब्द किसी व्यक्तिविशेष का नाम नहीं बल्कि गुणवाचक शब्द है, जिसकी प्राप्ति निश्चित शर्तें पूरी करने पर होती हैं।

जिसने बोधि प्राप्त कर लिया है उसे बुद्ध कहा जाता है। बोधि, श्रेष्ठतम ज्ञान को कहा जाता है। बोधिसत्व, बुद्धत्व प्राप्ति के लिए कृत संकल्प प्राणी को कहा गया है।[4]

बोधिकारक धर्म–संयुत्तनिकाय में सम्यक् सम्बुद्धत्व की प्राप्ति कैसे होती है तथा पूर्ववर्ती बुद्धों ने सम्यक् सम्बुद्धत्व की प्राप्ति कैसे की इसका विवरण मिलता है। नालन्दसुत्त में उल्लेख है कि पांच नीवरणों के प्रहाण से, चार स्मृतिप्रस्थानों के प्रतिष्ठित करने से एवं सात सम्बोध्यंगों की यथार्थ भावना से सम्यक् सम्बुद्धत्व की प्राप्ति होती है। भगवान् बुद्ध ने इसी प्रकार से सम्यक् सम्बुद्धत्व की प्राप्ति की। पहले जिन्होंने सम्यक् सम्बुद्धत्व प्राप्त किया है, तथा भविष्य में जो प्राप्त करेंगे वे इसी प्रकार से प्राप्त करेंगे।[5] सम्मासम्बुद्ध सुत्त में कहा गया है कि चार आर्यसत्यों के यथार्थ ज्ञान से ही अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध कहा जाता है।[6] सम्मासम्बुद्ध नामक ही एक अन्य सुत्त में कहा गया है कि पांच उपादानस्कन्धों के निर्वेद, विराग तथा निरोध से उपादान रहित हो विमुक्त होने से अर्हत् सम्यक्–सम्बुद्ध कहा जाता है।[7] अयोगुलसुत्त में उल्लेख है कि सम्यक्–सम्बुद्ध में जो अद्भुत एवं आश्चर्यकारी धर्म हैं वे चार ऋद्धिपादों की भलीभाँति भावना एवं अभ्यास करने से हैं।[8]

बुद्ध वर्ग में भगवान् बुद्ध ने बतलाया है कि उन्होंने प्रतीत्यसमुत्पाद के ज्ञान के बाद बुद्धत्व प्राप्ति का दावा किया था। इसके पहले बोधिसत्व रहते इसके प्रत्ययों का मनन किया। समाधानस्वरूप प्रतीत्यसमुत्पाद का ज्ञान प्राप्त हुआ। यही बात पूर्व के छः बुद्धों के साथ भी वर्णित है।[9]

बुद्धों की विशेषताएं–गौरवसुत्त में बतलाया गया है कि भूत, भविष्य तथा वर्तमान के बुद्ध धर्म के प्रति गौरव–भाव रखकर विचरण करते हैं।[10] सभी बुद्धों के साथ दो अग्रश्रावकों की परम्परा बतलाई गई है, जिनके उपस्थित रहने पर दिशाएं शोभित रहती थीं। भगवान् बुद्ध के दो अग्रश्रावक सारिपुत्त एवं मौग्गल्यायन थे।[11]

उज्झानसञ्ञी सुत्त में बतलाया गया है कि तथागत बुद्ध सभी जीवों पर अनुकम्पा रखते हैं। उनमें कोई बुराई नहीं रहती, उनसे कोई भूल नहीं होती तथा वे

कभी त्रुटि नहीं करते हैं।[12] सम्मासम्बुद्ध सुत्त में कहा गया है कि तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध अनुत्पन्न मार्ग के उत्पन्न करने वाले, अज्ञात–मार्ग के जानने वाले, नहीं बतलाये गये मार्ग के बतलाने वाले, मार्गविद् और मार्ग–कोविद होते हैं तथा उनके श्रावक उनका अनुगमन करने वाले होते हैं।[13]

बुद्धवंश परिचय :–

संयुत्तनिकाय में भगवान् बुद्ध के अतिरिक्त छः पूर्वबुद्धों के नाम एवं उनका संक्षिप्तविवरण प्राप्त होता है। निदानकथा में चौबीस पूर्व बुद्धों के नाम एव उनका विस्तृत परिचय मिलता है। उदाहरणार्थ– इनके जन्मों का कल्प, नगर का नाम, माता–पिता का नाम, प्रमुख दो अग्रश्रावक–श्राविकाओं तथा परिचायकों के नाम, बोधिवृक्ष का नाम, उस समय के मनुष्यों की ऊँचाई, आयु, भिक्षुओं की संख्या तथा भगवान् बुद्ध के बोधिसत्व रूप का विवरण है।[14]

संयुत्तनिकाय में इस विवरण के समान सात बुद्धों के नाम तथा चार बुद्धों के परिचय में उस समय के मनुष्यों की आयु एवं प्रमुख दो अग्रश्रावकों का वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त कुछ और प्रसंग तथा परिचय भी हैं, जो संक्षेप में इस प्रकार हैं–

सात नाम–

विभिन्न संदर्भो में सात बुद्धों के नाम इस प्रकार हैं– भगवान् विपश्यी, भगवान् सिखी, भगवान् वेस्सभू, भगवान् ककुसन्धु, भगवान् कोणागमन, भगवान् काश्पप तथा भगवान् गौतम।[15] भगवान् गौतम बुद्ध को सातवां ऋषि कहा गया है।[16]

परिचय–

भगवान् ककुसन्धु, कोणागमन, काश्यप तथा गौतम का एक ही सुत्त में विस्तृत परिचय है। निदानकथा के अनुसार ये इसी भद्रकल्प में जन्मे हुए थे।[17] वेपुल्लपब्बतसुत्त में इन चार बुद्धों का परिचय दिया गया है, जिससे उस काल की स्थिति स्पष्ट होती है। इन बुद्धों के समय–तत्कालीन वैपुल्य पर्वत के अलग–अलग नाम, मनुष्यों की आयु, मनुष्यों के सम्बोधन, पर्वत में उतरने–चढ़ने का समय तथा प्रमुख दो अग्रश्रावकों के नाम हैं।

भगवान् ककुसन्धु के समय वैपुल्य पर्वत का नाम प्राचीन वंश था। मनुष्यों को 'तिवरा' कहा जाता था। आयु चालीस हजार वर्ष थी। पर्वत में चढ़ने–उतरने का समय चार–चार दिन था तथा प्रमुख अग्रश्रावक विधुर एवं सजीव थे।

भगवान् कोणागमन के समय पर्वत का नाम बंकक हो गया। मनुष्यों को रोहित कहा जाने लगा। मनुष्यों की आयु तीस हजार वर्ष हो गयी। पर्वत पर चढ़ने–उतरने का समय तीन–तीन दिन हो गया तथा प्रमुख अग्रश्रावक विधुर एवं संजीव थे।

भगवान् काश्यप के समय पर्वत का नाम 'सुपस्स' था। मनुष्यों को 'सुप्पिय' कहा जाने लगा। मनुष्यों की आयु बीस हजार वर्ष थी। पर्वत पर चढ़ने–उतरने का समय दो–दो दिन तथा प्रमुख अग्रश्रावक तिस्स एवं भारद्वाज थे।

भगवान् गौतम बुद्ध के समय पर्वत का नाम 'वैपुल्य' था। मनुष्यों को मागध कहा जाता था, उनकी उम्र अधिक से अधिक सौ वर्ष थीं पर्वत पर चढने उतरने का समय अल्पकाल तथा प्रमुख अग्रश्रावक सारिपुत्त एवं मौग्गल्यायन थे। [18]

भगवान् काश्यप और सिखी के सम्बन्ध में कमशः दो तथा एक और भी सुत्त मिलते हैं।

भगवान् काश्यप–भगवान् काश्यप से सम्बन्धित प्रथम सुत्त में कहा गया है कि भगवान् काश्यप के समय सहम्पति ब्रह्मा सहक नाम का भिक्षु था, वह पांच इन्द्रियों की भावना से संसार से विरक्त होकर इसी के फल से ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुआ था। भगवान् काश्यप के समय सहक भिक्षु के कारण उसका यह नाम भी सहम्पति ब्रह्मा हुआ। [19] द्वितीय सुत्त घटीकार सुत्त है, जिसमें घटीकार देवता अपने को भगवान् काश्यप का उपासक बतलाता है तथा सात भिक्षुओं को अपना मित्र कहता है ये सात भिक्षु भगवान् गौतम बुद्ध के समय मुक्ति को प्राप्त हुए, जिनके नाम भी दिए गए हैं। उपक, पलगण्ड, पक्कुसति, भद्दिय, खण्डदेव, बाहुरग्गि तथा पिय–ये सात भिक्षु भगवान् काश्यप के समय घटीकार देवता के मित्र थे। इसका समर्थन भगवान् गौतम बुद्ध ने किया है। [20]

भगवान् सिखी–इनका परिचय देने वाला एक सुत्त है, जिसमें निदानकथा के समान ही इनको अरुणवती नगर का बतलाया गया है। उस समय के राजा अरुणवान तथा प्रमुख दो अग्रश्रावक अभिभू और सम्भव थे। [21]

भगवान् सिखी और उनके अग्रश्रावक ऋद्धिसम्पन्न तथा ज्ञानी थे। एक बार भगवान् सिखी अपने अग्रश्रावक अभिभू को अपने साथ ब्रह्मलोक ले गए। वहाँ पर अभिभू ने उपदेश देकर ब्रह्मसभा को उत्साहित किया। उपदेश के बाद ब्रह्माओं ने आपत्ति की कि स्वयं भगवान् सिखी के रहते उनके शिष्य का उपदेश देना उचित नहीं है। सिखी भगवान् ने तब अभिभू से अपनी शक्ति दिखाने को कहा। अभिभू ने अपनी शक्ति प्रदर्शित करने के लिए गाथाएं कहीं, जो हजारों लोकों में सुनाई पड़ी। इस प्रकार ब्रह्मसभा अभिभू के प्रभाव को मान गई । भगवान् सिखी ने भूलोक में वापस आकर अपने भिक्षुओं से गाथाओं की आवाज के विषय में पूछा, तो उनके शिष्यों ने वे गाथाएं दोहरा दी। इस प्रकार भगवान् सिखी और उनके अग्रश्रावक की ऋद्धि तथा महत्त्व का वर्णन है। [22]

अविदूरे निदान

भगवान् गौतम बुद्ध के बोधि प्राप्ति के पूर्व का वर्णन पालिवाङ्मय में बोधिसत्व के नाम से मिलता है। भगवान् के बोधिप्राप्ति के पहले का वृतान्त प्राचीन माने जाने वाले पालि साहित्य में बहुत कम पाया जाता है। अर्वाचीन साहित्यकारों ने यह कमी अनेक अलौकिक कथाएं जोड़कर पूरी की है।

संयुत्तनिकाय में भगवान् बुद्ध के बुद्धत्व प्राप्ति से लेकर परिनिर्वाण तक के सुत्त हैं। इनके अध्ययन से बोध प्राप्ति के पूर्व की कुछ जानकारी मिलती है, जिनसे प्रचलित मान्यताओं की पुष्टि होती है।

निदानकथा में भगवान् बुद्ध के जन्म से लेकर बुद्धत्व–प्राप्ति तक की प्रमुख मान्यताएं इस प्रकार प्रचलित हैं। यथा– बोधिसत्व को तुसितपुर में दर्शाते हुए उन्हें मनुष्य रूप में जन्म लेने के लिए देवताओं द्वारा याचना, बोधिसत्व का सिद्धार्थ के रूप में जन्म, ब्राह्मणों द्वारा भविष्य कथन, उद्यान जाते समय चार निमित्तों का दर्शन,निर्वेद, गृहत्याग, तपश्चर्या, सुजाता की खीर, बोधिमण्डाभिरोहण, मार पराजय तथा सम्बोधिप्राप्ति।[23]

संयुत्तनिकाय में उपर्युक्त मान्यताओं से सम्बन्धित जो प्रसंग मिलते हैं, उनसे भगवान् बुद्ध की पूर्व तपस्या, ध्यान, सम्बोधि के वितर्कों तथा मार पराजय की जानकारी मिलती है।

तपस्या :–

बौद्ध परम्परा की मान्यता है कि भगवान् बुद्ध ने बोधिसत्व की स्थिति में छः वर्ष तक कठोर तपस्या की थी। इस काल में आलारकराम एवं उद्दकराम पुत्र के यहाँ भी गए और उनसे ध्यान की कुछ प्रकियायें सीखीं थीं। लेकिन इन सबसे बोधिसत्व का समाधान नहीं हुआ और इस शिक्षा को अपूर्ण समझकर आगे बढ़ गये।

संयुत्तनिकाय में दो सुत्त ऐसे हैं, जिनमें से एक में उद्दकराम की शिक्षा को गलत कहा गया है तथा दूसरे में भगवान् ने अपनी पूर्व तपस्या छोड़ने पर सन्तोष व्यक्त किया है।

उद्दकसुत्त के अनुसार उद्दकरामपुत्र अपने को वेदज्ञ, सर्वजित, मूल को खनने वाला कहता था, जबकि वह न तो ज्ञानी था, न सर्वजित था तथा न दुःखमूल को खननेवाला था। उद्दकरामपुत्र अपूर्ण है, इस बात का अनुभव भगवान् को बोधिसत्त्व अवस्था में ही हो गया था। यथार्थ में ज्ञानी कैसे होता है ? वेदज्ञ कैसे होता है ? दुःखमूल को खनने वाला कैसे होता है? इसका ज्ञान भगवान् बुद्ध ने प्राप्त किया था। कहा गया है कि छः स्पर्शायतनों के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थ जान लेने से ज्ञानी होता है। इनको यथार्थ जानकर उपादान रहित हो विमुक्त हो जाता है, उसी को सर्वजित् कहते हैं। दुःख, चार महाभूतों से बने शरीर को

तथा तृष्णा को दुःखमूल कहा गया है। जिसकी तृष्णा प्रहीण हो गई उसे दुःखमूलखन दिया कहा गया है।[24]

दूसरा सुत्त तपोकम्मसुत्त है। इसमें बतलाया गया है कि भगवान् बुद्ध बुद्धत्व प्राप्त कर तुरन्त ही उरुवेला के नदी तट पर अजपाल निग्रोध के नीचे ध्यान कर रहे थे। उस समय भगवान् सन्तोष अनुभव कर रहे थे कि वे अनर्थकारी दुष्कर तपस्या से छूट गए। इसी समय मार उनके निकट आकर कहता है कि आप तपकर्म से दूर होकर शुद्धि के मार्ग से हट गए हैं। उत्तर में भगवान् मुक्तिलाभार्थ तपस्या को उसी प्रकार व्यर्थ बतलाते हैं, जिस प्राकर जमीन पर बिना पतवार के पड़ी हुई नाव।[25]

संयुत्तनिकाय में भगवान् की उस दुष्कर तपस्या का वर्णन नहीं है। मज्झिमनिकाय में दुष्कर तपस्या का विस्तृत विवेचन मिलता है। इसमें दुष्कर तपश्चर्या के विषय में कहा गया है कि भगवान् बुद्ध तपस्वियों में तपस्वी, रुक्षाचारियों में परम रुक्षाचारी, जुगुप्सुओं में परम जुगुप्सी तथा प्रविवेकों में परम विविक्त थे।[26]

चित्तशुद्धि का संकल्प :–

बोधिसत्व की अवस्था का वर्णन करते हुए कहा गया है कि पूर्वकाल में अनुभव किए गये कामगुणों की ओर मन पहुँच जाता था। इसलिए उन्होंने निश्चय किया था कि पूर्वकाल में पांच कामगुणों के प्रति जो निरुद्ध हो गए थे, आत्महित के लिए अप्रमत्त और स्मृतिमान् हो चित्त की रक्षा करनी चाहिए।[27]

विभिन्न वितर्को का मनन :–

भगवान् ने प्रतीत्यसमुत्पाद का उपदेश करते हुए कहा है कि– बोधिसत्व रहते उन्होंने अनुभव किया था कि लोक घोर दुःख में पड़ा हुआ है। पैदा होता है, बूढ़ा होता है, मर जाता है, मरकर फिर जन्म लेता है। यह दुःख के छुटकारे को नहीं जानता। इसलिए उन्होंने निश्चय किया कि वे दुःख के निवारण को जानेंगे। इसके बाद उन्हें दुःख समुदय एवं दुःख निरोध का ज्ञान हुआ।[28]

मार बाधा : –

निदानकथा में भगवान् के बुद्धत्व प्राप्त करने के पहले मार को विभिन्न बाधाएं उपस्थित करते हुए बतलाया गया है[29] तथा उन पर भगवान् की विजय बतलाई गई है। इसकी पुष्टि संयुत्तनिकाय से होती है। कहा गया है कि बुद्धत्व प्राप्ति के तत्काल बाद तक मार सात वर्ष से पीछा कर रहा था, लेकिन उसको कोई भी दोष नहीं मिला।[30] सुत्तनिपात में भी कहा गया है कि मार भगवान् के पीछे सात वर्ष तक पड़ा रहा।[31]

सम्बोधि कथा :–

भगवान् ने वैशाख पूर्णिमा की रात्रि को ज्ञान प्राप्त किया था। निदानकथा

के अनुसार बुद्धत्व प्राप्ति का दावा त्रिविध प्रकार के ज्ञान के बाद किया। रात्रि के प्रथम प्रहर में पूर्व जन्म का ज्ञान प्राप्त किया, दूसरे प्रहर में दिव्यचक्षु को विशुद्ध किया तथा अन्तिम प्रहर में प्रतीत्यसमुत्पाद के ज्ञान का साक्षात्कार किया। उस समय अनेक आश्चर्यजनक घटनाएं घटित हुई। भगवान् ने उदान को कहा जो सभी के द्वारा भी कहा बतलाया गया है।[32] इस उदान को अट्ठकथा में प्रथम बुद्धवचन कहा है।[33]

संयुत्तनिकाय में इस विषय में विस्तृत जानकारी मिलती है। यहाँ पर यह मूल सुत्त नहीं है, अपितु विभिन्न धर्मो का वर्णन है, जिनका मनन भगवान् ने बोधिसत्त्व अवस्था में किया एवं उनके यथार्थज्ञान के उपरान्त बुद्धत्व का दावा किया।

यहां पर प्रतिपादित विभिन्न धर्मो से स्पष्ट होता है कि बुद्धत्व प्राप्ति का कम बोधिसत्व अवस्था से ही चलता रहा और वैशाख पूर्णिमा के दिन जो त्रिविद्या का ज्ञान हुआ वह अन्तिम था। इसके बाद बोधिसत्व ने अपने को बुद्ध घोषित किया।

विभिन्न धर्मो का ज्ञान :–

चार आर्यसत्यों का ज्ञान–भगवान् ने कहा है कि जब उनको चार आर्य सत्यों का तीन प्रकार से ज्ञान हुआ तभी उन्होंने अपने को अनुत्तर सम्यक् सम्बुद्ध घोषित किया।[34]

पांच उपादनस्कन्धों का ज्ञान–बोधिसत्व अवस्था में भगवान् को पांच उपादनस्कन्धों में वितर्क उठा था कि रूपादि क्या है? उनका आस्वाद, दोष और छुटकारा क्या है? उन्हें जब इनका यथार्थ ज्ञान हुआ तब भगवान् बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्ति का दावा किया।[35]

षडायतनों का ज्ञान–इसी प्रकार बोधिसत्व अवस्था में भगवान् के मन में वितर्क उठा था कि चक्षु आदि का आस्वाद, दोष और मोक्ष क्या है? जब इनका यथार्थ ज्ञान हुआ तब भगवान् ने अपने लिए अनुत्तर सम्यक् सम्बुद्धत्व की प्राप्ति का दावा किया।[36] इसी प्रकार इन्द्रियों का ज्ञान,[37] वेदना का ज्ञान,[38] ऋद्धिपाद की भावना के मार्ग का ज्ञान[39] होने के पश्चात् अनुत्तर सम्यक् सम्बुद्धत्व की प्राप्ति का उल्लेख है।

प्रतीत्यसमुत्पाद का ज्ञान–प्रतीत्यसमुत्पाद का अनुलोम–प्रतिलोम दोनों प्रकार का ज्ञान बोधिसत्व अवस्था में ही बतलाया गया है तथा शेष छः बुद्धों के विषय में भी यह बात कही गई है।[40]

सन्तिके निदान

बुद्धत्व प्राप्ति से लेकर परिनिर्वाण तक का भगवान् बुद्ध का परिचय सन्तिके निदान के अन्तर्गत आता है।[41] संयुत्तनिकाय में संगृहीत सुत्त बुद्धत्व प्राप्ति से लेकर परिनिर्वाण तक के हैं। इनमें भगवान् के पैंतालीस वर्षीय जीवन की प्रमुख घटनाएं, उनके द्वारा दिये गए उपदेश एवं स्थानों के नाम आदि का सप्रसंग विवरण मिलता है। संयुत्तनिकाय में 45 वर्षीय घटित प्रसंगों का विवरण बिना कम के यत्र तत्र बिखरा

हुआ है।

भगवान् के प्रारम्भिक जीवन का परिचय कमबद्ध घटनाओं के रूप में विनयपिटक के महावग्ग में मिलता है। यथा– बोधिकथा, अजपालकथा, मुचलिन्दकथा, राजायतनकथा, ब्रह्मयाचनकथा, पञ्चवग्गियकथा, धम्मचक्कपवत्तन, अनत्त परियाय, पब्बतु जा चारिका, मारकथा आदि।[42]

संयुत्तनिकाय में इन प्रसंगों का विवरण विभिन्न सुत्तों में मिलता है। भगवान् के बुद्धत्व प्राप्ति के बाद के प्रारम्भिक प्रसंग इस प्रकार हैं– बुद्धत्व प्राप्ति के बाद विभिन्न धर्मों का मनन, ब्रह्मयाचना कथा, धर्म के प्रति गौरव रखकर विहार करने का निश्चय, धर्मचकप्रवर्तन, चारिका का आदेश, चारिका के विभिन्न स्थान एवं उपदेशित विषयवस्तु। प्रारम्भिक प्रसंगों के बाद अन्तिम प्रसंग, जीवनशक्ति का त्याग एवं परिनिर्वाण का विवरण संयुत्तनिकाय में है।

बुद्धत्व प्राप्ति के पश्चात् धर्मो का मनन–

विनयपिटक के अनुसार भगवान् ने बुद्धत्व प्राप्ति के तुरन्त बाद चार सप्ताह कमशः बोधिवृक्ष, अजपालन्यग्रोधवृक्ष, मुचलिन्दवृक्ष, एवं राजायतनवृक्ष के नीचे बिताए। उन्होंने प्रथम सप्ताह में प्रतीत्यसमुत्पाद का अनुलोम, प्रतिलोम, प्रतिलोम–अनुलोम के ढंग से मनन किया।[43]

संयुत्तनिकाय में इस संदर्भ में कहा गया है कि पांच इन्द्रियों की भावना से निर्वाण की प्राप्ति होती है। भगवान् बुद्धत्व प्राप्ति के तुरन्त बाद उरुवेला में नेरञ्जरा नदी के किनारे अजपाल न्यग्रोध के नीचे एकान्त में ध्यानावस्थित थे, तभी उनके मन में वितर्क उठा कि पांच इन्द्रियों की भावना तथा उनकी बहुलता से अमृत की प्राप्ति होती है। भगवान् के इस वितर्क का समर्थन सहम्पति ब्रह्मा ने आकर किया और अपना पूर्व वृत्तान्त सुनाया कि उसने भी भगवान् काश्यप के समय पांच इन्द्रियों की भावना के बल पर ब्रह्म पद को प्राप्त किया है।[44]

ब्रह्मसुत्त में बतलाया गया है कि बुद्धत्व प्राप्ति के बाद अजपाल न्यग्रोध वृक्ष के नीचे भगवान् के मन में वितर्क उठा कि मनुष्यों की शुद्धि के लिए शोक–परिदेव दुःख–दौर्मनस्य को मिटाने के लिए तथा निर्वाण की प्राप्ति के लिए यही एक मात्र मार्ग है, जो चार स्मृतिप्रस्थान हैं। इसका समर्थन ब्रह्मा ने किया कि पहले भी इसी से लोग मुक्ति को प्राप्त हुए हैं।[45]

पठमविहारसुत्त में बतलाया गया है कि भगवान् आठ माह एकान्तवास करते हुए ध्यानावस्थित रहे जो ध्यान बुद्धत्व प्राप्ति के बाद सर्वप्रथम लगाया था।[46] इसी प्रकार दुतिय विहारसुत्त में इस ध्यान की अवधि तीन माह बतलाई गई है। यह ध्यान वेदना के विषय में था। मिथ्यादृष्टि के प्रत्यय से वेदना होती है, मिथ्यादृष्टि के शान्त हो जाने से वेदना शान्त होती है। इसी प्रकार सम्यक्दृष्टि के प्रत्यय से, सम्यक्दृष्टि

के शान्त हो जाने से, मिथ्या समाधि के प्रत्यय से, मिथ्या समाधि के शान्त हो जाने से, सम्यक् समाधि के प्रत्यय से, इच्छा के प्रत्यय से, इच्छा के शान्त हो जाने से, वितर्क के प्रत्यय से, वितर्क के शान्त हो जाने से, संज्ञा के प्रत्यय से, संज्ञा के शान्त हो जाने से वेदना होती है। इच्छा, वितर्क और संज्ञा के अशान्त होने के प्रत्यय से, इच्छा के शान्त हो जाने, किन्तु वितर्क और संज्ञा के अशान्त होने से, इच्छा और वितर्क के शान्त हो जाने किन्तु संज्ञा के अशान्त होने से, वितर्क और संज्ञा सभी के शान्त हो जाने से तथा अर्हत् फल की प्राप्ति के जो प्रयास हैं उसके करने से भी वेदना होती है। [47]

ब्रह्मयाचना कथा :—

यह घटना बुद्धत्व प्राप्ति के तुरन्त बाद की है। बतलाया गया है कि अजपाल वृक्ष के नीचे भगवान् ने वितर्क से संसारीजनों की स्थिति पर विचार किया और उन्होंने पाया कि उनका धर्म प्रतीत्यसमुत्पाद और निर्वाण संसारी लोगों के अनुकूल नहीं है। कहा गया है कि संसारी लोग काम आसक्ति में रत एवं काम आसक्ति में प्रसन्न रहते हैं। उनका धर्म गम्भीर, दुदर्शनीय, दुर्जेय, शांत, तर्क से परे, निपुण पण्डितों के जानने योग्य है। इसलिए भगवान् ने वितर्क किया कि जनता को उपदेश देना उचित नहीं है, क्योंकि इसे प्रजा समझेगी नहीं और न समझना उसके लिँए पीड़ादायक होगा। इस सन्दर्भ में भगवान् ने गाथाएं भी कही हैं। [48]

इस प्रकार भगवान् द्वारा अल्प उत्सुकता का वितर्क ब्रह्मा ने मन में जानकर सोचा— यदि तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध धर्म का उपदेश नहीं करेगें तो लोक नष्ट हो जायेगा। वह अन्तर्धान हो भगवान् के पास उपस्थित हुआ। उसने भगवान् को विधिपूर्वक प्रणाम कर निवेदन किया कि — भगवान् उपदेश दे, संसार में ऐसे भी प्राणी हैं, जो अल्पमल वाले एवं परलोक से डरते हैं। धर्म का श्रवण न करने से वे नष्ट हो जायेगें। धर्म के जानने वाले भी मिलेंगे। इस प्रकार निवेदन करते हुए तीन गाथाएं भी कही जिनमें संसार का चित्रण करते हुए उपदेश की आवश्यकता पर जोर दिया है।

ब्रह्मा के निवेदन पर भगवान् ने प्राणियों की दया के निमित्त संसार को बुद्धनेत्र से देखा। भगवान् ने देखा कि संसार में विविध प्रकार के प्राणी हैं। अल्पमल, तीक्ष्णबुद्धि, सुन्दर स्वभाव वाले, शीघ्र समझने वाले तथा परलोक एवं पाप से भयभीत। इन सभी की स्थिति का चित्रण भगवान् ने कमल और नाल के दृष्टान्त से उपमा द्वारा किया एवं ब्रह्म—याचना स्वीकार करते हुए कहा कि उन्होंने पहले मनुष्यों की पीड़ा का ध्यान रखकर निपुण उत्तम धर्म का उपदेश नहीं किया था। अब उनके लिए अमृत का द्वार खुल गया है, जो कानवाले हैं वे श्रद्धापूर्वक सुनें। [49]

धर्म के प्रति गौरव भाव :—

बुद्धत्व प्राप्ति के बाद भगवान् जब अजपाल न्यग्रोध के नीचे विहार कर रहे

थे तब ध्यान करते समय उनके चित्त में वितर्क उठा कि–बिना किसी को ज्येष्ठ माने और बिना किसी का गौरव माने विचरण करना दुःखद है। इसलिए किसी को ज्येष्ठ एवं गौरव मानकर विहार करना चाहिए। आगे उन्होंने सोचा कि अपरिपूर्ण शील, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति, ज्ञान दर्शन की पूर्ति के लिए ही किसी श्रमण या ब्राह्मण को ज्येष्ठ मान उसका सत्कार और गौरव मानकर विहार करना चाहिए, किन्तु उन्होंने देवताओं, मार, ब्रह्मा सहित इस सम्पूर्ण लोक में तथा इस प्रज्ञा में किसी को भी अपने समान नहीं पाया। इसलिए विचार कर निश्चय किया कि 'उचित है कि अपने सम्बुद्ध धर्म को ही ज्येष्ठ मान सत्कार कर उसका गौरव करते हुए विहार किया जाय। [50]

इस प्रकार भगवान् द्वारा निश्चय करने पर सहम्पति–ब्रह्मा अन्तर्धान होकर आया और विधिपूर्वक प्रणामकर निवेदन किया कि भूतकाल के जितने सम्बुद्ध थे, जो वर्तमान में हैं तथा अनागत में होंगे– सभी धर्म के प्रति गौरव करते थे, करते हैं और करेंगे। बुद्धों की यही परम्परा है। [51]

इस सन्दर्भ में विनयपिटक में कुछ भिन्नता प्रतीत होती है, क्योंकि महावग्ग में उपक आजीवक द्वारा पूछने पर कि आपको कौन सा धर्म अच्छा लगता है? किसको गुरु मानकर प्रव्रजित हुए हैं ? आपका शास्ता कौन है? भगवान् कहते हैं कि वे सबको पराजित करने वाले, सभी धर्मो में निर्लेप, सर्वत्यागी, तृष्णा क्षय से विमुक्त हैं, अपने को ही जानकर उपदेश करेंगें। [52]

धर्मचक्रप्रवर्तन :–

ब्रह्म–याचना स्वीकार करने के बाद भगवान् ने उपदेश के लिए योग्य पात्र की खोज का विचार किया। विचार करते हुए भगवान् ने सबसे पहले आलारकराम एवं उद्दकरामपुत्र को चुना, लेकिन ये दोनों मर चुके थे। इसलिए पंचवर्गीय भिक्षुओं को प्रथम उपदेश देना उचित समझा। भगवान् जब पंचवर्गीय भिक्षुओं के पास वाराणसी के निकट ऋषिपत्तन में पहुँचे तो पहले इन भिक्षुओं ने भगवान् को बाहुलिक समझकर उपेक्षा की तथा स्वागत सत्कार न करने का निश्चय किया, लेकिन जैसे–जैसे भगवान् उनके निकट पहुँचते गए, वे भिक्षु प्रभावित होते गये और एक ने पात्र लिया, एक ने आसन बिछाया, एक ने पादोदक, एक ने पादकठल्लिका पास रखी। भगवान् के बैठ जाने पर भिक्षुओं ने भगवान् के लिए 'आवुस' कहकर सम्बोधित किया। तब भगवान् ने कहा–तथागत को नाम लेकर या आवुस कहकर मत पुकारो। तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध है, उन्होंने जिस अमृत को पाया है, उसका उपदेश करेंगे, जिसके लिए कुलपुत्र अनागार होकर विचरते हैं। उस अनुत्तर ब्रह्मचर्यफल को पाकर इसी जन्म में विहार करेंगे।

इस प्रकार भगवान् द्वारा उपदेश की उत्सुकता दिखाने पर भी पंचवर्गीय भिक्षुओं को भगवान् की बात पर विश्वास नहीं हुआ। अपनी बात को तीन बार दुहराया

और भगवान् ने कहा कि इस प्रकार उन्होंने पहले कभी नहीं कहा, तब पंचवर्गीय भिक्षु उपदेश सुनने को तैयार हुए। [53] भगवान् ने भिक्षुओं को दो अन्तों के त्याग के साथ मध्यममार्ग अपनाने का उपदेश दिया, जिसे धर्मचकप्रवर्तन कहा जाता है।

संयुत्तनिकाय में उल्लिखित धर्मचकप्रवर्तन नामक सुत्त [54] में महावग्ग के सदृश मात्र उपदेश का विवरण उपलब्ध है। इसमें उपर्युक्त कथा का कोई संकेत नहीं है।

पंचवर्गीय भिक्षुओं को भगवान् ने अपने प्रथम धर्मोपदेश में दो अन्तों के त्याग एवं मध्यम मार्ग के सेवन की बात कही जो तथागत की अपनी खोज थी। उन्होंने मध्यममार्ग को आंख देने वाला, ज्ञान कराने वाला, शान्ति के लिए, अभिज्ञा के लिए, सम्बोधि के लिए बताया है। साथ ही चार आर्य सत्यों के तिहरे अर्थात् बारह प्रकार के ज्ञान के बाद अपने लिए अनुत्तर सम्यक् सम्बुद्धत्व की बात कही एवं आर्यअष्टांगिक मार्ग तथा चार आर्यसत्यों की विस्तृत व्याख्या की। तत्पश्चात् पंचवर्गीय भिक्षुओं ने भगवान् का अभिनन्दन किया। फलस्वरूप भिक्षु को धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ कि 'यं **किञ्चिसमुदय धम्मं, सब्बं तं निरोध धम्मं ति।'** भगवान् ने कहा कि कोण्डञ्ञ को ज्ञान हो गया अञ्ञासि वत, भो कोण्डञ्ञो इसलिए उसका नाम 'अञ्कोण्डञ्ञ हो गया।

भगवान् के उक्त उपदेश के बाद देवताओं ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा कि वाराणसी के पास ऋषितन मृगदाय में भगवान् ने अनुतर धर्मचक का प्रवर्तन किया है, जिसे कोई श्रमण, ब्राह्मण, देव, मार, ब्रह्म सहित इस लोक में प्रवर्तित नहीं कर सकता है। धर्मचक प्रवर्तन का यह शब्द ब्रह्मलोक तक पहुँचा, लोक कांपने लगा एवं पृथ्वी में आश्चर्य प्रकट हुए।

चारिका का आदेश :–

धर्मचक प्रवर्तन के बाद पंचवर्गीय भिक्षु, यश और उसके साथी प्रव्रजित हुए तो भगवान् ने भिक्षुओ को धर्म प्रचार के लिए भ्रमण करने का आदेश दिया। [55] संयुत्तनिकाय में यश आदि की प्रव्रज्या का उल्लेख नहीं है, लेकिन चारिका विधान का उल्लेख है, जिसमें भगवान् भिक्षुओं को बहुजन के हित व सुख के लिए विचरण का आदेश देते हैं।

ऋषिपन मृगदाय में विहरते हुए भगवान् ने भिक्षुओं को आमंत्रित कर कहा– हम सभी दिव्य लोक और मनुष्य लोक के सभी बन्धनों से मुक्त हैं, इसलिए बहुजन के हित और सुख के लिए, लोक पर दया करने के लिए, देवताओं और मनुष्यों के हित के लिए, सुख के लिए विचरण करो। एक साथ दो मत जाओ। आदि, मध्य और अन्त में कल्याणकारक इस धर्म का उपदेश करो। ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो, जो कि अर्थ सहित व्यंजन सहित पूर्ण परिशुद्ध है। संसार में अल्प दोष वाले भी प्राणी हैं, वे धर्म को जानने के इच्छुक होंगे, यदि वे धर्म न सुनेंगे तो उनकी हानि होगी। भगवान् ने

भी धर्म देशना के लिए उरुवेला जाने का निश्चय किया। [56]

विविध चारिकाएँ :—

भगवान् तीन माह वर्षावास करते थे। इसके बाद विहार करते हुए उपदेश देते थे। इस प्रकार भगवान् ने अपने बुद्धकाल के 45 वर्षावास व्यतीत किए। वर्षावासों का उल्लेख कमिक रूप से संयुत्तनिकाय में नहीं मिलता है, लेकिन तत्सम्बन्धित स्थानों के विवरण इसमें मिलते हैं।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने बुद्ध के जीवन और मुख्य—मुख्य उपदेशों को वर्षावासों के आधार पर बुद्धचर्या में संगृहीत किया है। जो इस प्रकार हैं—

वर्षावास कमांक	स्थान	ई. पू. समय
1	ऋषिपतन (सारनाथ)	528
2—4	राजगृह	527—25
5	वैशाली	524
6	मकुल पर्वत (विहार)	523
7	त्रायस्त्रिंश	522
8	संसुमार गिरि (चुनार)	521
9	कौशाम्बी (इलाहाबाद)	520
10	पारिलेयक (मिर्जापुर)	519
11	नाला	518
12	वैरंजा (कन्नौज—मथुरा के बीच)	517
13	चालिय पर्वत (विहार)	516
14	श्रावस्ती (गोंडा)	515
15	कपिलवस्तु	514
16	आलवी (अरवल)	513
17	राजगृह	512
18	चालिय पर्वत	511
19	चालिय पर्वत	510
20	राजगृह	509
21—45	श्रावस्ती	508—484
46	वैशाली	483[57]

संयुत्तनिकाय के थपतिसुत में भगवान् की चारिका किस प्रकार होती थी, इसका विवरण मिलता है। कहा गया है कि भगवान् श्रावस्ती से कोशल, कोशल से मल्लों के प्रदेश, मल्लो के प्रदेश से बज्जियों के प्रदेश, वज्जियों के प्रदेश से काशी, काशी से मगध जाते थे। पुनः मगध से काशी, वज्जियों के प्रदेश, मल्लों के प्रदेश,

कोशल, श्रावस्ती, अनाथपिण्डिक के जेतवन से विहरते थे।[58] वर्षावास में भगवान् आनापान–स्मृति पूर्वक भ्रमण करते थे।[59]

जीवन शक्ति का त्याग :–

वैशाली में विहार करते हुए भगवान् ने आनन्द को बुलाकर चापाल चैत्य में चलने को कहा। चापाल चैत्य में पहुँचकर उन्होंने विविध चैत्यों की प्रशंसा करते हुए चापाल चैत्य को भी रमणीय बतलाया। इसके बाद आनन्द को सम्बोधित करते हुए कहा–जिस किसी के चार ऋद्धिपाद भावित, अभ्यस्त, अपना लिए गए, सिद्ध कर लिए गए, अनुष्ठित, परिचित, अच्छी तरह अभ्यस्त किए हैं वे यदि चाहें तो कल्प भर या शेष कल्प तक ठहर सकते हैं। भगवान् ने चार ऋद्धिपादों को भावित किया, अभ्यस्त किया, सिद्ध कर लिया, अनुष्ठित किया, परिचित किया, अच्छी तरह आरम्भ किया है। यदि वे चाहें तो कल्प भर या शेष कल्प ठहर सकते हैं। इस प्रकार तीन बार कहा। लेकिन प्रत्युत्तर में आनन्द ने कुछ नहीं कहा। तब भगवान् ने आनन्द को सम्बोधित कर कहा– आनन्द! जाओ तुम्हारी इच्छा हो, जाओ। आनन्द पास के किसी वृक्ष के पास जाकर बैठ गये।

आनन्द के जाने के बाद भगवान् के पास पापी मार आया और निवेदन किया कि भगवान् परिनिर्वाण पावें उनके परिनिर्वाण का समय हो गया है। याद दिलाते हुए उसने कहा कि भगवान् के श्रावक भिक्षु व्यक्त, मेघावी, विनीत, विशारद योगक्षेम प्राप्त, बहुश्रुत, धर्मधर, धर्मानुधर्मप्रतिपन्न, अच्छे मार्ग पर आरूढ़, धर्मानुकूल आचरण करने वाले हो गए हैं। इसलिए भगवान् परिनिर्वाण पायें।[60]

दीघनिकाय में वर्णित है कि भगवान् ने मार से कहा था कि जब उनके श्रावक भिक्षु उपर्युक्त गुणों से सम्पन्न हो जाएंगे तब भगवान् परिनिर्वाण को प्राप्त करेगें।[61] मार द्वारा तीन बार कहने पर भगवान् ने कहा कि वे तीन माह बाद परिनिर्वाण को पावेगें। इस प्रकार भगवान् ने चापाल चेत्य में स्मृतिमान् और संप्रज्ञ की अवस्था में आयु संस्कार को छोड़ दिया। उसी समय भयावह एवं रोमांचकारी भूचाल उठा तथा देवताओं ने दुन्दुभि बजायी भगवान् ने उदान कहा।[62]

जराधम्मसुत्त में भगवान् की वृद्धावस्था का सजीव चित्रण है। भगवान् को देखकर आनन्द कहते हैं कि –भगवान् के चमड़े का रंग उतना परिशुद्ध पर्यवदान नहीं है। अंग भी शिथिल हो गये हैं। पूरी काया में झुर्रियां पड़ी हुई हैं। शरीर आगे की ओर झुका है। आंख, कान, नाक आदि इन्द्रियों में भी विपरिणाम दिखाई पड़ता है। भगवान् कहते हैं कि– आनन्द! यह ऐसा ही होता है। यौवन में जरा धर्म है, आरोग्य में व्याधि धर्म है। जीवन में मरण धर्म है।[63]

गिलानसुत्त में वर्णित है कि भगवान् वैशाली के वेलुग्राम में वर्षावास कर रहे थे, उनको एक बड़ी संगीन बीमारी हो गई, मरणान्तक पीड़ा होने लगी। जिसे भगवान्

ने स्मृतिमान् और संप्रज्ञ हो स्थिर भाव से सहन किया। भगवान् ने यह विचार कर कि बिना भिक्षुसंघ को कहे परिनिर्वाण पाना ठीक नहीं है, उत्साह से बीमारी को हटाकर विहार करने लगे।

आनन्द के कहने पर कि वह भगवान् की बीमारी से घबड़ा गया था, उसे दिशाएं भी नहीं दीख पड़ती थीं, सिर्फ यह विश्वास था कि भगवान् बिना भिक्षु संघ से कहे परिनिर्वाण प्राप्त नहीं करेंगे। भगवान् कहते हैं कि उन्होने बिना किसी भेदभाव के धर्म का उपदेश कर दिया है। भगवान् धर्म की कोई भी बात छिपा कर नहीं रखते। जिसके मन में संचालन करने की इच्छा रहती है, भिक्षुसंघ को अपने अधीन रखता है। वह कहें–सुने। भगवान् को कुछ भी कहना बाकी नहीं है।

भगवान् अपनी अवस्था का वर्णन करते हुए कहते हैं कि– अब वे पुरनिया, बूढ़ा, महल्लक, अवस्था प्राप्त हो गए हैं, उनकी आयु अस्सी साल की हो गई है। जैसे पुरानी गाड़ी को बांधकर चलाते हैं उसी प्रकार उनका शरीर हो गया है।[64] एक बार जब भगवान् बीमार थे, भगवान् ने महाचुन्द से सात सम्बोध्यंग कहलवाये तब भगवान् प्रसन्न हुए और उनकी बीमारी दूर हुई।[65]

परिनिर्वाण :–

दीघनिकाय के महापरिनिब्बानसुत्त में भगवान् की अन्तिम यात्रा एवं परिनिर्वाण का विस्तृत विवरण है। संयुत्तनिकाय का परिनिब्बानसुत्त दीघनिकाय की अपेक्षा अत्यन्त संक्षिप्त है, इसमें मात्र अन्तिम उपदेश, ध्यानपूर्वक परिनिर्वाण तथा परिनिर्वाण होने पर सहम्पति–ब्रह्मा, देवेन्द्र शक, आनन्द तथा अनुरुद्ध के द्वारा भगवान् के प्रति व्यक्त किए उद्‌गार हैं।

अन्तिम उपदेश– कुशीनारा के शालवन में विहार करते हुए भगवान् ने भिक्षुओं को अन्तिम उपदेश के लिए बुलाकर कहा था कि सभी संस्कार अनित्य हैं, अप्रमाद पूर्वक जीवन के लक्ष्य को सम्पादित करो। यह तथागत का अन्तिम वचन है।[66]

अन्तिम ध्यान :–

अन्तिम उपदेश के बाद तथागत ध्यान में लीन हो गए। उसके अन्तिम ध्यान का क्रम इस प्रकार बताया गया है– प्रथम ध्यान से द्वितीय ध्यान, द्वितीय ध्यान से तृतीय ध्यान, तृतीय ध्यान से चतुर्थ ध्यान, चतुर्थ ध्यान से आकाशानञ्चायतन की अवस्था में, आकाशानञ्चायतन से विज्ञानानञ्चायतन, विज्ञानानञ्यायतन से आकिञ्चन्यायतन, आकिञ्चन्यायतन से नैवसंज्ञानासंज्ञायतन की अवस्था में पुनः आकिञ्चन्यायतन, विज्ञानानञ्यायतन, आकाशानञ्यायतन, चतुर्थध्यान, तृतीय ध्यान, द्वितीय ध्यान, प्रथमध्यान, द्वितीयध्यान, तृतीयध्यान, चतुर्थध्यान, में बैठे। फिर भगवान् परिनिर्वाण को प्रात हुए।[67]

भगवान् के परिनिर्वाण पर उद्‌गार– सहम्पति–ब्रह्मा ने कहा कि–संसार के सभी लोग एक दिन विदा होंगे, लेकिन 'बुद्ध' तथागत, बलप्राप्त, सम्बुद्ध, लोक में अतुलनीय परिनिर्वाण को प्राप्त हो गए। देवेन्द्र शक ने भगवान् की वाणी को ही दुहराया कि सभी संस्कार अनित्य हैं, उत्पन्न और लय होना उनका स्वभाव है, उत्पन्न होकर निरुद्ध हो जाते हैं, नितान्त शान्त हो जाना ही संख है। आनन्द ने कहा– बुद्ध सर्वश्रेष्ठ थे, परिनिर्वाण होने का वह समय घोर था, रोमांचित कर देने वाला था। अनुरुद्ध ने कहा– भगवान् के स्थिर चित्त के समान किसी ने जीवन धारण नहीं किया था। वे अचल परम शान्ति के लिए परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। उन्होंने निर्विकार चित्त से वेदनाओं का अन्त कर दिया था। जिस प्रकार प्रदीप बुझ जाता है, वैसे ही उनका चित्त विमुक्त हो गया।[68]

भगवान् के परिनिर्वाण के बाद संयुत्तनिकाय में चमत्कार आदि का वर्णन नहीं है, दीघनिकाय के महापरिनिर्वाण सुत्त में चमत्कारिक वर्णन है।[69] संयुत्तनिकाय में आनन्द के उद्‌गार से यह बात स्पष्ट होती है कि भगवान् के परिनिर्वाण के बाद आश्चर्य हुए थे।

बुद्धचर्या

भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं को चार प्रत्ययों के सेवन का विधान किया था, जिसका पालन वे स्वयं भी करते थे। प्रत्ययों से सम्बन्धित भगवान् की विभिन्न घटनाएं संयुत्तनिकाय में मिलती हैं, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि वे नियमों के प्रति स्वयं कितने सजग थे।

चीवर :–

भगवान् ने जीर्ण वस्त्रों को ग्रहण करने का विधान किया था तथा मुलायम चीवर की भी स्वीकृति दी थी। भगवान् स्वयं भी पांसुकूलिक चीवर धारण करते थे। भगवान् ने अपने पांसुकूलिक को काश्यप से बदलकर उनकी मुलायम संघाटी ले ली थी।[70] गिलानसुत्त से पता चलता है कि भगवान् के लिए चीवर उनके भिक्षु बनाया करते थे।[71] जिण्णसुत्त से पता चलता है कि भगवान् चीवर के सम्बन्ध में भिक्षुओं का ध्यान रखते थे। भगवान् महाकाश्यप से निवेदन करते हैं कि वे अब बूढ़े हो गए हैं, पांसुकूल को छोड़कर गृहस्थों के बनाए मुलायम चीवर को धारण करें। निमन्त्रण के भोजन को स्वीकार करें तथा भगवान् के साथ विहार करें।[72]

पिण्डपात :–

भगवान् स्वयं अल्पाहारी[73] एवं अल्पाहार के प्रशंसक थे।[74] वे उपदेश से प्राप्त भिक्षान्न ग्रहण नहीं करते थे।[75] भिक्षा न मिलने पर उन्हें क्षोभ नहीं होता था। कभी–कभी उनके विरोधियों द्वारा कोशिश की जाती थी कि भगवान् को भिक्षा न

मिले। एक बार ऐसी भी स्थिति आई जब भगवान् को बिना भिक्षा लिए ही वापस लौटना पड़ा। ऐसी स्थिति में भगवान् ने अपने लिए अभास्वर देवताओं के समान बतलाया है। मार द्वारा भिक्षान्न में बाधा उपस्थित करने के कारण से अपुण्य का भागी बतलाया गया है। [76]

भगवान् जब एकान्तवास करते थे, तब उनके लिए एक शिष्य भिक्षान्न लाया करता था। [77] अन्यथा वे स्वयं ही भिक्षान्न के लिए जाया करते थे। भगवान् द्वारा प्रतिदिन भिक्षा लेने पर एक दिन उदय ब्राह्मण भगवान् को 'पकुट्टक' कहकर कहता है कि बार– बार भिक्षा लेने आते हैं। इस पर भगवान् ढंग से समझाते हैं कि कई बातें ऐसी होती हैं जो दुहराई जाती हैं। बार–बार याचक मांगता है, बार–बार दानी दान देता है आदि। [78]

शयनासन :–

अट्ठकथा के अनुसार भगवान् रात्रि के तीसरे याम में आराम करते थे। संयुत्तनिकाय में भगवान् को सिंह–शैय्या में शयन करते हुए बतलाया गया है। सिंह–शैय्या में सोने का ढंग बतलाते हुये कहा है कि – भगवान् पैर धोकर विहार के भीतर दाहिनी करवट सिंह शैय्या लगा, पैर पर पैर रखकर, स्मृतिमान और संप्रज्ञ हो, मन में उत्थान संज्ञा लेकर लेट जाते थे। [79]

भगवान् की पीठ अगियाने लगती थी इसलिए अग्रश्रावकों को उपदेश के लिए आदेश देकर स्वयं सिंह–शैय्या में आराम करते थे। [80]

भगवान् अरण्य में रहना पसन्द करते थे तथा आरण्यक की प्रशंसा किया करते थे। [81]

एकान्तवास :–

भगवान् एकान्तवास भी करते थे। एक सुत्त में भगवान् को आठ माह [82] का तथा दूसरे सुत्त में तीन माह [83] का एकान्तवास करते हुए बतलाया गया है। एकान्तवास में भगवान् एक भिक्षु के अतिरिक्त किसी से नहीं मिलते थे, जो उनके लिए भिक्षान्न लाता था। एकान्तवास में भगवान् उन्हीं विषयों का मनन करते थे, जिनका मनन बुद्धत्व प्राप्ति के तुरन्त बाद किया था।

ग्लान प्रत्यय भेषज्य परिष्कार :–

भगवान् बुद्ध ने अपने शरीर को साधारण जन के समान सुखदुःख अनुभव करने वाला बतलाया है। बीमार होने या चोट लगने पर वे उसको स्मृतिमान और संप्रज्ञतापूर्वक सहन करते थे। [84]

एक बार जब भगवान् को वातरोग की पीड़ा हुई तो भगवान् ने गरम पानी में गुड़ मिलवा कर, पिया तब उनकी बीमारी कुछ घटी। [85]

भगवान् भिक्षुओं की बीमारी का भी पूरा ध्यान रखते थे। जब भी भगवान् को पता चलता था कि कोई भिक्षु बीमार है, वे स्वयं उसके पास जाकर उसकी पीड़ा की पूछताछ करते थे तथा भावना के लिए सात सम्बोध्यंगों की सलाह देते थे [86] तथा अनित्यता का उपदेश देते थे। [87]

संघ के प्रति अनुकम्पा :—

भगवान् भिक्षु संघ के प्रति असीम अनुकम्पा रखते थे। पिण्डोल्पसुत्त में वर्णित है कि एक बार भगवान् किसी कारणवश भिक्षुसंघ को छोड़कर एकान्तवास को चले गए। एकान्त में विचार करते हुए भगवान् ने निश्चय किया कि उनका भिक्षु संघ को छोड़ना उचित नहीं है।

भगवान् ने तरुण वृक्ष का स्मरण किया कि जिस प्रकार नया वृक्ष पानी के न मिलने से नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार नये भिक्षुओं द्वारा भगवान् को न देखने से अन्यथात्व हो सकता है। इसलिये वे भिक्षुसंघ को पुनः स्वीकार कर लेते हैं। [88]

गुण वर्णन

संयुत्तनिकाय में भगवान बुद्ध के विभिन्न गुणों का उल्लेख मिलता है।

दसबल एवं चार वैशारद्य :—

भगवान् की दसबल एवं चार वैशारद्यों से युक्त बतलाया गया है। इनके कारण ही भगवान् सिंहनाद करते थे और ब्रह्मचक चलाते थे। [89] दसबल एवं चार वैशारद्य इस प्रकार हैं—दसबल—इनका वर्णन पटिसम्भिदामग्ग, विभंग और महावस्तु आदि ग्रन्थों में मिलता है। मज्झिमनिकाय के अनुसार तथागत के दसबल इस प्रकार हैं—

1. स्थान को स्थान के रूप में तथा अस्थान को अस्थान के रूप में यथार्थतः जानना।
2. अतीत, वर्तमान तथा अनागत के कर्मों को स्थान हेतु एवं विपाक की दृष्टि से जानना।
3. सर्वत्रगामिनी प्रतिपदा को ठीक से जानना।
4. अनेक धातु तथा नाना धातु वाले लोक को जानना।
5. नाना अधिमुक्तिवाले प्राणियों को जानना।
6. सत्वों, पुद्गलों की इन्द्रियों के परत्व—अपरत्व को ठीक से जानना।
7. ध्यान, विमोक्ष, समाधि, समापत्ति के संक्लेश, व्यवदान और उत्थान को ठीक से जानना।
8. पूर्वनिवासों का स्मरण करना।
9. दिव्यचक्षु से प्राणियों को उत्पन्न होते एवं मृत्यु प्राप्त होते देखना।
10. आस्रवों का क्षय कर आस्रव रहित चेतोविमुक्ति तथा प्रज्ञा विमुक्ति का इसी जन्म में साक्षात्कार कर विहरना। [90]

चार वैशारद्य— चार वैशारद्य घोषणाएं हैं, जिनमें कोई शंका नहीं।

1. अपने को सम्यक्सम्बुद्ध कहा, सभी धर्मो का बोध किया, इसमें कोई सन्देह नहीं।
2. अपने को क्षीणास्रव कहा इसमें कोई सन्देह नहीं।
3. जो अन्तराय कर्म कहे गए हैं, उनकी सच्चाई में सन्देह नहीं।
4. जिस उद्देश्य दुःख क्षय के लिए धर्म का उपदेश किया उसमें सन्देह नहीं।[61]

ध्यान अभिज्ञा :–

भगवान् ने अपने लिए आस्रव के क्षीण हो जाने से आस्रव रहित चेतोविमुक्ति और प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में प्राप्त किया बतलाया है। भगवान् ने ध्यानों की भावना को भी पूरा किया था। जब भी भगवान् चाहते थे ध्यान लगाते थे।

चार रूपध्यान :–

प्रथमध्यान–काम और अकुशल धर्मो के छूट जाने से सवितर्क, सविचार, विवेकज, प्रीतिसुख वाले प्रथम ध्यान को प्राप्त होकर विहरना।

द्वितीयध्यान– वितर्क और विचार के शान्त हो जाने से आध्यात्म संप्रसाद चित्त की एकाग्रता वाले समाधिज प्रीति सुख वाले द्वितीय ध्यान को प्राप्त होकर विहरना।

तृतीयध्यान–प्रीति के भी हट जाने से स्मृतिमान् और संप्रज्ञ हो काया सुख अनुभव करते हुए उपेक्षा के साथ विहरना।

चतुर्थध्यान– सुख दुःख के प्रहाण से, सौमनस्य और दौर्मनस्य के अस्त हो जाने से, अदुःख, असुख, उपेक्षा से युक्त स्मृति परिशुद्ध वाले चतुर्थ ध्यान को प्राप्त होकर विहरना।

चार अरूप ध्यान :–

आकाशानञ्चायतन–रूप संज्ञाओं के अतिक्रमण होने, प्रतिघ संज्ञाओं के अस्त होने तथा नानात्व संज्ञाओं के अमनसिकार के आकाश अनन्त है– ऐसा आकाशानञ्चायतन को प्राप्त कर विहरना। विज्ञानानञ्चायतन–आकाशानञ्चायतन का अतिक्रमण कर विज्ञान अनन्त है ऐसा विज्ञान विज्ञानानञ्चायतन को प्राप्त कर विहरना। आकिञ्चन्यायतन– विज्ञानानञ्चायतन को अतिकमण कर कुछ नहीं है ऐसे आकिञ्चन्यायतन को प्राप्त कर विहरना। नैवसंज्ञानासंज्ञायतन– आकिञ्चन्यायतन का सर्वथा अतिकमण कर नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को प्राप्त कर विहरना। संज्ञावेदयितनिरोध– नैवसंज्ञानासंज्ञायतन का समतिकमणकर संज्ञावेदयितनिरोध को प्राप्त कर विहरना। भगवान् ने इस प्रकार के ध्यानों में काश्यप को भी अपने समान वर्णित किया है।[62]

ऋद्धिचमत्कार :—

भगवान् बुद्ध को अलौकिक शक्ति के धारक के रूप में वर्णित किया गया है। इस शक्ति का कारण चार ऋद्धिपादों की भावना थी। कहा गया है कि यदि भगवान् चाहें तो हिमालय पर्वत भी सोने का हो जाय। [93] चाहें तो कल्पभर या शेष कल्प तक जीवित रहें। [94] यदि चाहें तो धर्मपूर्वक राज्य करें। [95] चाहें तो एक होते हुए बहुत हो जायें, बहुत होकर एक जो जायें आदि ऋद्धियों को अनुभव करने वाला बतलाया है।[96]

भगवान् ने अपने लिए मायावी होने का खण्डन किया है, इसके बाद भी कि वे माया को जानते हैं। इस बात का स्पष्टीकरण किया गया है कि जिस प्रकार कोई दुष्ट व्यक्ति को जानने से दुष्ट नहीं हो जाता, उसी प्रकार वे माया, मायावियों तथा माया के दुःखद फल नरक को जानते हुए भी मायावी नहीं हैं। [97]

शारीरिक विशेषतायें :—

भगवान् बुद्ध को 32 महापुरुष लक्षणों से युक्त कहा गया है। दीघनिकाय में इसका विस्तृत विवेचन भी मिलता है। [98] संयुत्तनिकाय में इसका उल्लेख नहीं है, लेकिन 32 महापुरुष लक्षणों में से कुछ लक्षणों का परिचय मिलता है, जिसमें भगवान् की कृषवीर, एणीमृग के समान जांघवाला [99], सूर्य के समान प्रकाशमान अंगीरस [100] तथा चन्द्रमा के समान सुखदायक कहा गया है। [101]

भगवान् के पैरों में चोट लगने पर उन्हें दुःखद, तीव्र, कठोर, परेशान करने वाली वेदना हुई थी, जिसे भगवान् ने स्थिर चित्त से स्मृतिमान् और संप्रज्ञ हो सहन किया था। इस अवसर पर देवताओं ने भगवान् को नाग और सिंह के समान कहा है तथा आजानीय और अतुलनीय बल वाला कहा है। इनको दान्त एवं बहुत (भारी) भारवाहक के समान कहा गया है। एक देवता ने इन सभी से भगवान् की उपमा देना मूर्खतापूर्ण समझकर भगवान् के वेदना सहन करने वाले स्वभाव को स्वाभाविक समाधि के अभ्यास का फल कहा है। [102]

अन्य विशेषताएं :—

मार द्वारा भगवान् के पास बड़े–बड़े पत्थर गिराने पर भगवान् कहते हैं कि चाहे सारे गृद्धकूट पर्वत को गिरा दें, लेकिन विमुक्त बुद्धों में कोई चञ्चलता पैदा नहीं हो सकती। [103] गरजने के प्रश्न के उत्तर में वे कहते हैं कि बलशाली भवसागर को पार किए महावीर सभाओं में निडर होकर गरजते हैं। [104] उपदेश से अनुरोध और विरोध के प्रश्न में भगवान् अपने अनुशासन का कारण हित और अनुकम्पा बतलाते हैं। [105] मार द्वारा भिक्षाटन में बाधा पहुँचाने पर भगवान् ने अपने को अभाश्वर देवताओं के समान प्रीति से सन्तुष्ट रहने वाला कहा है। [106] भगवान् अपनी अविचलता के सम्बन्ध में कहते हैं कि आकाश फट जाय पृथ्वी कांप जाय, सभी प्राणी कांप जांय या

छाती में भाला भी चुभाया जाय तब भी बुद्ध विचलित नहीं होते हैं।[107] मार द्वारा शीर्षोपचाला भिक्षुणी से गुरू के सम्बन्ध में पूछे जाने पर, भिक्षुणी भगवान् बुद्ध को अपना गुरु बतलाती हुई उनके गुणों का वर्णन करती है एवं कहती है– पूर्ण स्वतंत्र, परमज्ञानी, कर्मो के क्षय को प्राप्त, व्याधियों से मुक्त, शाक्य कुल में उत्पन्न उसके गुरु हैं।[108]

स्तुतिप्रसंग :–

भगवान् की स्तुति के सम्बन्ध में विभिन्न प्रसंग मिलते हैं, जिनसे भगवान् के गुणों पर भी प्रकाश पड़ता है। बंगीस द्वारा स्तुति करते हुए कहा गया है कि भगवान् का नाम नाग है, ऋषियों में सातवें ऋषि हैं। महामेघ के समान श्रावकों पर धर्मवर्षा कर रहे हैं।[109] जिस प्रकार मेघरहित आकाश में चांद शोभित होता है, उसी प्रकार भगवान् महामुनि संसार में शोभित होते हैं।[110] ब्रह्मा कहता है कि भगवान् उनकी बातों को जानते हैं, उसी प्रकार अन्य बातों को भी जानते हैं। उनका देदीप्यमान तेज ब्रह्मलोक को प्रकाशित कर रहा है।[111] मध्यममार्ग की चर्चा करने के बाद देवता कहता है कि वह मुक्त चिन्ता और आनन्द से रहित भवसागर को पार किए ब्राह्मण को चिरकाल के बाद देख रहा है।[112]

अनाथपिण्डिक भगवान् को 'धर्मराज' कहकर सम्बोधित करते हैं।[113] अनोमसुत्त में कहा गया है कि वे अनोम नाम वाले सूक्ष्मदृष्टा, ज्ञान देने वाले, कामों में अनासक्त, सर्वज्ञ, पण्डित, आर्य मार्ग पर चलते हुए महर्षि हैं।[114]

कीर्तिसूचक वचन :–

भगवान् बुद्ध के सम्बन्ध में प्रसिद्ध कीर्तिसूचक वचन बतलाया गया है, जिसका उद्धरण विभिन्न सन्दर्भो में एवं विभिन्न ग्रन्थों में मिलता है। इस कीर्तिसूचक वचन में कहा गया है कि वे भगवान् अर्हत् सम्यक–सम्बुद्ध, विद्याचरण–सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, अनुपम, पुरुषदम्य सारथी, देवमनुष्यों के शास्ता हैं।[115]

संयुत्तनिकाय में इस कीर्तिसूचक वचन का प्रयोग श्रद्धा इन्द्रियों के रूप में होता है। इसकी विस्तृत व्याख्या विशुद्धिमार्ग में की गई है।[116]

भगवान्– यह बुद्ध का विशेषण है, जो बोधिज्ञान के बाद प्रज्ञप्त सिद्ध होता है। भग (ऐश्वर्य) धर्मो से युक्त होने से भगवान् कहा जाता है। राग आदि भग्न कारक धर्मो के नाश करने वाला होने से, विभक्त करने वाला होने से, भवों में रमण करने वाला होने से भी भगवान् कहलाता है।

अर्हत्–सभी क्लेश शत्रुओं को हत करने से बुद्ध को अर्हत् कहा जाता है।

बुद्ध–विशेष ज्ञान को जानने योग्य अभिज्ञाओं को जानने, भावना करने योग्य धर्मो की भावना करने, प्रहाण करने योग्य धर्मो को प्रहाण करने से बुद्ध कहा गया है।

सम्यक्सम्बुद्ध–सम्यक् (ठीक) दृष्टि से चार आर्यसत्यों सहित सभी धर्मो को

जानने से सम्यक्सम्बुद्ध कहा गया है।

विद्याचरण सम्पन्न– विद्याओं एवं चरण से युक्त होने से विद्याचरण सम्पन्न कहा गया है। विद्याएं–तीन और आठ कही गई हैं, साथ ही छः अभिज्ञाओं को भी विद्या कहा गया है।

चरण–शील–संवर, इन्द्रियों में गुप्त द्वार होना, मात्रा के साथ भोजन करना, जागरणशील, सात सद्धर्म एवं चार रूपावचर ध्यान इन पन्द्रह को चरण कहा गया है।

सुगत–शोभन करने, सुन्दर ध्यान को जाने, सम्यक् रूप से गए होने तथा सम्यक् रूप से बोलने के कारण सुगत कहा गया है।

लोकविद्–लोक से विदित होने तथा चार आर्यसत्यों के जानने से लोकविद् कहा गया है।

अनुत्तर पुरुषदम्य सारथी–दमन योग्य पुरुषों को हांकने के कारण पुरुषदम्य सारथी तथा आठ दिशाओं–आठ समापतियों को हांकने से अनुत्तर कहा गया है। भगवान् आठ दिशाओं में पुरुषों को हांकते हैं, इसलिए उन्हें अनुत्तर पुरुषदम्य सारथी कहा गया है।

शास्ता– अनुशासन करने के कारण उन्हें शास्ता कहा गया है।

पुप्फ सुत्त में भगवान् अपने सम्बन्ध में कहते हैं कि जिस प्रकार कमल पानी में पैदा होता है, बढ़ता है, लेकिन उसमें लिप्त नहीं रहता है, उसी प्रकार वे संसार में रहकर भी संसार को जीत, संसार से अनुपलिप्त रहते हैं। इसी सुत्त में बताया गया है कि वे संसार से विवाद नहीं करते, संसार ही उनसे विवाद करता है। आगे वे कहते हैं कि कोई भी धर्मवादी विवाद नहीं करता, वे अपने कथन को पण्डितों के अनुरूप कहते हुए स्पष्ट कहते हैं कि जिस प्रकार पण्डित लोग प्रज्ञप्त करते हैं, उसी प्रकार वे भी यथार्थ धर्म के अनुरूप ही कहते हैं तथा जानते और समझते हैं। [117]

तथागत बुद्ध के रूप में भगवान् कहते हैं कि वे अपराध स्वीकार करने वालों को क्षमा कर देते हैं। [118]

महत्त्व :–

सत्थारवन्दनासुत्त में बतलाया गया है कि जिसको सभी लोग नमस्कार करते थे ऐसा इन्द्र भगवान् को नमस्कार करता है। [119] भगवान् बुद्ध को नमस्कार करने का ढंग बतलाते हुए इन्द्र ने निम्न गाथा के उच्चारण का उल्लेख किया है। [120]

"उट्ठेहि वीर विजित सङ्गाम,पन्नमार अनण विचर लोके।
देसस्सु भगवा धम्म अञ्ञातारो भविस्सन्ती" ति।।

बुद्ध की निन्दा करने से नरक गति बताई गई है। बुद्ध की शरण में जाने से नरक प्रेत आदि नीच गतियों से छुटकारा हो जाता है। [121] धर्म में शंका दूर हो जाती है। [122] सभी डर भय दूर हो जाते हैं। [123] स्वर्गलोक की प्राप्ति तथा ऐश्वर्य की

प्राप्ति भी बतलाई गई है।[124] राहु तथा चन्द्रमा एवं सूर्य को ग्रसित किए जाने पर भगवान् की शरण में आने से उनका छुटकारा बतलाया गया है।[125]

भगवान् भिक्षुओं को सलाह देते हैं कि भय उत्पन्न होने पर भिक्षुओं को भगवान् का स्मरण करना चाहिए– 'सो भगवा———————बुद्धो भगवा' ति। ऐसा स्मरण करते ही भिक्षुओं का भय चला जाएगा। भगवान् द्वारा इसका कारण बतलाते हुए कहा है कि तथागत ही अर्हत् सम्यक्–सम्बुद्ध, वीतरागी, वीतद्वेषी, वीतमोही, अभयी, अच्छम्मी, अनुत्रायी, अपलापी है।[126] जिस प्रकार सिंह जंगल के सभी प्राणियों में श्रेष्ठ, अग्र एवं महानुभाव होता है उसी प्रकार भगवान् हैं।[127]

संदर्भ–विवरण

1. संयुत्त. 3, पृ. 360–363
2. संयुत्त. 1, पृ. 143–145
3. कप्पो च ते बद्धचरो अहोसिं, सम्बुद्धिमन्तं वतिनं अमञ्ञि।
   तं ते पुराणं वतसीलवतं, सुतप्पबुद्धो व अनुस्सरामी'ति।। वही, पृ. 144
4. पालि हिन्दी कोश, प. 236
5. संयुत्त. 5, पृ. 136
6. वही पृ. 371
7. वही 3, पृ. 294
8. वही पृ. 242
9. वही 2, पृ. 6 से 12
10. वही 1, पृ. 129
11. संयुत्त. 5, पृ. 140
12. तथागतस्स बुद्धस्स, सब्बभूतानुकम्पिनो।
    तस्सच्चया न विज्जन्ति, तस्स नत्थि अपागतं।
    सो न सम्मोहमापादि, सो व धीरो सदा सतो' ति।। वही 1, पृ. 24
13. वही 3, पृ. 295
14. निदानकथा, भूमिका, पृ. 74
15. सुयंत. 2, पृ. 6–12
16. 'इसीनं इसि सतमो।' वही 1, पृ. 193
17. जातकट्ठ. पृ. 33
18. संयुत्त. 2, पृ. 160–162
19. वही 5, पृ. 201
20. वही 1, पृ. 33
21. जातकट्ठ., पृ. 32
22. संयुत्त. 1, पृ. 155–157
23. निदानकथा, भूमिका पृ. 34

24. संयुत. 4, पृ. 76
25. वही 1, पृ. 103
26. मज्झिम. 2, पृ. 323–331
27. संयुत्त. 4, पृ. 90
28. वही 2, पृ. 11
29. जातकट्ठ पृ. 53
30. एक समयं भगवा उरुवेलायं विहरति नज्जा नेरञ्जराय तीरे अजपालनिग्रोधे।
तेन खो पन समयेन मारो पापिमा सतवस्सानि भगवन्तं अनुबन्धो होति ओजारापेक्खो ओतारं अलभमानो। संयुत्त. 1, पृ. 121
31. सतवस्सानि भगवन्तं, अनुबन्धि पदापदं।
ओतारं नाधिगच्छिस्सं, सम्बुस्स सतीमतो।। खुद्दक. 1, पृ. 332
32. 'अनेक जाति संसारं, सन्धाविस्सं अनिब्बसं।
गहकारकं गवेसन्तो, दुक्खा जाति पुनप्पुनं।।
गहकारक दिट्ठासि, पुन गेहं न काहसि
सब्बा ते फासुका भग्गा, गहकूटं विसङ्खतं।
विसङ्खारगतं चितं, तण्हानं खयमज्झगा' ति।। निदानकथा, पृ. 190
33. समन्त. 1, पृ. 17
34. संयुत्त. 5, पृ. 362
35. यतो च ख्वाहं, भिक्खवे, इमेसं पञ्चन्नं उपादानक्खन्धानं एवं अस्सादं च अस्सादतो आदीनवं च आदीनवतो निस्सरणं च निस्सरणतो यथाभूतं अब्भञ्यासिं, अथाहं, भिक्खवे, सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय अनुतरं सम्मासम्बोधि अभिसम्बुद्धो ति पच्चञ्ञासिं। ञाणं च पन मे दस्सनं उदपादि– 'अकुप्पा मे विमुति', अयमन्तिमा जाति, नत्थि दानि पुनब्भवो' ति। संयुत्त. 3, पृ. 264
36. संयुत्त. 4, पृ. 7–8
37. वही 5, पृ. 176
38. वही 4, पृ. 206
39. वही 5, पृ. 241
40. वही 2, पृ. 6–11, 89
41. महावग्गो, पृ. 3–23
42. 'इति महाबोधिमण्डे सब्बञ्ञुतप्पतितो याव महापरिनिब्बानम चा यस्मिं यस्मिं ठाने भगवा विहासि इदं सन्तिकेनिदानं नाम'। जातकट्ठ. पृ. 67
43. महावग्ग, पृ. 3
44. संयुत्त. 5, पृ. 201
45. संयुत्त. 5, पृ. 143
46. वही 5, पृ. 12
47. वही 5, पृ. 13
48. ''किच्छेन मे अधिगतं, हलं दानि पकासितुं।
रागदोसपरेतेहि, नायं धम्मो सुसम्बुधो।।
''पटिसोतगामिं निपुणं, गम्भीरं दुद्दसं अणुं।

रागरता न दक्खन्ति, तमोखन्धेन आवुटा''ति।। संयुत्त 1, पृ. 137

49. संयुत्त. 1, पृ. 137–139

50. वही 1, पृ. 139–40

51. "ये च अतीता सम्बुद्धा, ये च बुद्धा अनागता।
यो चेतरहि सम्बुद्धो, बहुन्नं सोकनासनो।।
"सब्बे सद्धम्मगरुनो, विहंसु विहरन्ति च।
तथा पि विहरिस्सन्ति, एसा बुद्धान धम्मता।।
"तस्मा हि अत्तकामेन, महतमभिकङ्खता।
सद्धम्मो गरु कातब्बो, सरं बुद्धान सासनं'' ति।।वही 1, पृ. 141

52. सब्बाभिभू सब्बविदूहमस्मि सब्बेसु धम्मेसु अनुपलितो।
सब्बञ्जहो तण्हक्खये विमुतो सयं अभिञ्ञय कमुद्दिसेय्यं।।
न मे आचरियो अत्थि सदिसो मे न विज्जति।
सदेवकस्मिं लोकस्मिं नत्थि मे पटिपुग्गलो।।
अहं हि अरहा लोके अहं सता अमृतरो।
एकोम्हि सम्मासम्बुद्धो सीति भूतोस्मि निब्बुतो।। महावग्ग पृ. 11

53. महावग्ग, पृ. 10

54. संयुत्त. 5, पृ. 360–363

55. महावग्ग, पृ. 23

56. "मुतोहं, भिक्खवे, सब्बपासेहि ये दिब्बा ये च मानुसा।
तुम्हे पि, भिक्खवे, मुता सब्बपासेहि ये दिब्बा ये च
मानुसा। चरथ, भिक्खवे, चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय
अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। मा एकेन द्वे अगमित्थ।
देसेथ, भिक्खवे, धम्मं आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं
सब्यञ्जनं। केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। सन्ति
सता अप्परजक्खजातिका, अस्सवनता धम्मस्स परिहायन्ति।
भविस्सन्ति धम्मस्स अञ्ञातारो। अहं पि, भिक्खवे, येन उरुवेला
सेनानिगमो तेनुपसङ्कमिस्सामि धम्मदेसनाया''ति। संयुत्त. 1, पृ. 105

57. बौद्ध दर्शन, पृ. 26
महामानव बुद्ध पृ. 10

58. संयुत्त. 5, पृ. 296–300

59. वही पृ. 277

60. वही पृ. 221

61. दीघ. 2, पृ. 88–90

62. "तुलमतुलं च सम्भवं, भवसङ्खारमवस्सजि मुनि।
अज्झतरतो समाहितो, अभिन्दि कवचमिवत्तसम्भवं'' ति।। संयुत्त 5, पृ. 225

63. वही 5, पृ. 188

64. संयुत्त 5, पृ. 130–132

65. वही पृ. 76

66. संयुत्त. 1, पृ. 157

67. वही पृ. 157—58

68. वही पृ. 157—58

69. दीघ. 2, पृ. 120

70. सयुत्त. 2, पृ. 185

71. वही 5, पृ. 349

72. वही 2, पृ. 169

73. संयुत्त. 1, पृ. 16

74. वही पृ. 81

75. वही पृ. 172

76. वही पृ. 113

77. वही 5, पृ. 12

78. वही 1, पृ. 173

79. अथ खो भगवा बहुदेवरतिं अब्भोकासे चङ्कमित्वा रतिया पच्चूससमयं पादे पक्खालेत्वा विहारं पविसित्वा दक्खिणेन पस्सेन सीहसेय्यं कप्पेसि पादे पादं अच्चाधाय सतो सम्पजानो उट्ठानसञ्ञं मनिसि करित्वा। संयुत्त. 1, पृ. 107

80. वही 4, पृ. 165

81. वही 1, पृ. 179

82. वही 5, पृ. 12

83. वही पृ. 13

84. संयुत्त. 1, पृ. 110

85. वही पृ. 174

86. वही 5, पृ. 74

87. वही 3, पृ. 340—44

88. वही 3, पृ. 316—319

89. ''दसबलसमन्नागतो, भिक्खवे, तथागतो चतूहि च वेसारज्जेहि समन्नागतो आसभं ठानं पटिजानाति, परिसासु, सीहनादं नदति, ब्रह्मचक्कं पवत्तेति। संयुत्त. 2, पृ. 25

90. मज्झिम. 1, पृ. 98—101

91. मज्झिम. 1, पृ. 101—102

92. संयुत्त. 2, पृ. 176—180

93. ''भगवता खो, भन्ते चतारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा। आकङ्खमानो च, भन्ते, भगवा हिमवन्तं पब्बतराजं सुवण्णं त्वेव अधिमुच्चेय्य सुवण्णं च पनस्सा''ति। संयुत्त. 1, पृ. 116

94. वही 5, पृ. 222

95. वही 1, पृ. 116

96. संयुत्त. 2, पृ. 181

97. वही 4, पृ. 299

98. दीघ. 3, पृ. 110

99. संयुत्त. 1, पृ. 16

100. ''पदुमं यथा कोकनदं सुगन्धं,
पातो सिया फुल्लमवीतगन्धं।

अङ्गिरसं पस्स विरोचमानं,
तपन्तमादिच्चमिवन्तलिक्खे" ति।। संयुत्त. 1, पृ. 80

101. "चन्दो यथा विगतवलाहके नभे, विरोचति विगतमलो व भाणुमा।
एवं पि अङ्गिरस त्वं महामुनि, अतिरोचसि यससा सब्बलोकं" ति।। वही पृ. 196

102. संयुत्त. 1, पृ. 26–28

103. "सद्दे पि केवलं सब्बं, गिज्झकूटं चलेस्ससि।
नेव सम्माविमुत्तानं, बुद्धानं अत्थि इञ्जितं" ति। वही 1, पृ. 109

104. वही 1, पृ. 109–10

105. वही 1, पृ. 111

106. वही 1, पृ. 118

107. संयुत्त. 1, पृ. 106

108. वही 1, पृ. 134

109. "नागनामोसि भगवा, इसीनं इसिसतमो।
महामेघो व हुत्वान, सावके अभिवस्सति।। संयुत्त. 1, पृ. 193

110. वही 1, पृ. 196

111. "अद्धा पजानासि ममेतमायुं, अञ्ञे पि जानासि तथा हि बुद्धो।
तथा हि त्यायं जलितानुभावो, ओभासयं तिट्ठति ब्रह्लोकं" ति।। वही 1, पृ. 145

112. **"चिरस्सं वत पस्सामि, ब्राह्मणं परिनिब्बुतं।
अप्पतिट्ठं अनायूहं, तिण्णं लोके विसत्तिकं" ति।।** वही 1, पृ. 3

113. "इदं हि तं जेतवनं, इसिसङ्घ निसेवितं।
आवुत्थं धम्मराजेन, पीतिस जननं मम।। संयुत्त. 1, पृ. 53

114. "अनोमनामं निपुणत्थदस्सिं,
पञ्ञाददं कामालये असत्तं।
तं पस्सथ सब्बविदुं सुमेधं,
अरिये पथे कममानं महेसिं" ति।। वही 1, पृ. 31

115. इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो
लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा ति। वही 1, पृ. 221

116. विसुद्धि. 1, पृ. 409–468

117. संयुत्त. 3, पृ. 356–337

118. वही 1, पृ. 24

119. वही 1, पृ. 236

120. वही पृ. 235

121. संयुत्त. 5, पृ. 291

122. वही 5, पृ. 195

123. वही 5, पृ. 331

124. वही 5, पृ. 333

125. वही 1, पृ. 47, 48

126. वही 1, पृ. 221–222

127. वही 3, पृ. 312

तृतीय परिच्छेद

धर्म

भगवान् बुद्ध के वचनों को धर्म एवं विनय में बांटा गया था। जिस ग्रन्थ में 'धर्म' का प्रतिपादन हुआ है, उसे सुत्तपिटक कहते हैं। संयुत्तनिकाय सुत्तपिटक का एक ग्रन्थ है, इसके सभी सुत्त धर्म के अन्तर्गत आते हैं, लेकिन यहां उन्हीं विशेष पारिभाषिक शब्दों पर विचार किया जा रहा है, जो बौद्ध धर्म का प्रतिनिधित्व करते हैं।

धर्म से तात्पर्य– 'धर्म' शब्द अति प्राचीन है। विभिन्न आचार्यो ने धर्म की अनेक व्याख्याएं की है। व्यवहार में हम धर्म उसे कहते हैं जो धारण किया जाता है।

भगवान् ने आचरण के लिए दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा के रूप में आर्य अष्टांगिक मार्ग का प्रतिपादन किया था, जिसमें सभी सम्बोध्यग धर्म एवं शील, समाधि और प्रज्ञा समाहित हो जाते हैं। यही भगवान् द्वारा उपदिष्ट आचरण के लिए प्रतिपादित धर्म है।

संयुत्तनिकाय में 'धर्म' का वर्णन निम्न प्रकार आया है। सत्य वचन को सर्वोत्तम एवं सनातन धर्म कहा गया है।[1] सुमार्ग पर लगे हुए लोगों को 'धर्मात्मा' कहा गया है। सुमार्ग का तात्पर्य सत्य, धर्म, संयम तथा ब्रह्मचर्य वाले मध्यम–मार्ग से है।[2]

त्रिशरण की वन्दना से धर्म में लगा हुआ स्रोतापन्न एवं सुप्रतिष्ठित कहा गया है, जिसका समर्थन भगवान् ने किया है।[3] इन्द्रियों में संयम, भोजन में मात्रा जानना, जागरणशील होना इन तीन धर्मो से सुख की प्राप्ति बतलाई गई है। इनसे आस्रवों का क्षय होता है।[4]

गृहस्थों के लिए 7 सद्धर्म बतलाये गये हैं, जिनसे अपना तथा दूसरे का कल्याण होता है। जीवहिंसा से विरति, चोरी से विरति, परस्त्री गमन से विरति, झूठ से विरति, चुगली से विरति, कठोर वचन से विरति, गप्प हांकने से विरति।[5]

अप्रमाद धर्म को सभी धर्मो में अग्र बतलाया गया है। अप्रमाद से इहलोक तथा परलोक में सुफल की प्राप्ति भी बतलाई है। जिस प्रकार जंगल में हाथी के पैर को सभी जानवरों के पैरों से श्रेष्ठ कहा गया है उसी प्रकार सभी धर्मो में अप्रमाद श्रेष्ठ है।[6]

'नाम' एक धर्म को इस प्रकार प्रतिपादित किया गया है कि इसके वश में सभी लोग हो जाते हैं।[7] उसी प्रकार चित्त तथा तृष्णा को एक धर्म कहा गया है जिसके वश में सभी लोग हो जाते है।[8] 'कोध' धर्म को नष्ट करने की सलाह दी गई है।[9]

सत्य, दम, घृति तथा व्यायाम– इन चारों को गृहस्थों का सर्वोत्तम धर्म कहा गया है। इन चार धर्मो को दूसरे श्रमण और ब्राह्मण भी मानते थे। इन धर्मो से इस लोक तथा पर लोक में शोक नहीं होता है।[10]

देवता द्वारा पूछे जाने पर कि संसार में अनेक प्रकार से मार्ग कहे गये हैं फिर भी लोग भयभीत हैं। ऐसा कौन सा स्थान है जहां खड़े होकर प्राणी भय को प्राप्त नहीं होता है ? इसके उत्तर में भगवान् चार धर्म बतलाते हैं, जहां पर खड़े होने से परलोक का डर नहीं रहता–

1. मन और वचन को ठीक रास्ते से लगाना।
2. अन्न–पान से भरे घर में रहना।
3. शरीर से पापाचरण नहीं करना।
4. श्रद्धालु एवं मृदु होना तथा बांटकर वस्तुओं का उपभोग करना एवं हिलना–मिलना। [11]

मार, मारधर्म, अनित्य, अनित्य धर्म, दुःख, दुःख धर्म, अनात्म, अनात्म धर्म, क्षय धर्म, व्यय धर्म के रूप में पांच उपादान स्कन्धों को बतलाया गया है तथा इनके प्रति छन्द, राग तथा छन्द राग प्रहाण करने की सलाह दी गई है। [12] सैंतीस बोध्यङ्गधर्मो को धर्मो के रूप में गिनाया गया है। [13]

मध्यममार्ग

भगवान् बुद्ध ने अपना धर्म मध्यम मार्ग के रूप में प्रतिपादित किया है। संक्षेप में मध्यम मार्ग के रूप में दो अन्तों–कामसुखों के सेवन का त्याग, आत्मपीड़ा वाली तपस्या का त्याग एवं मध्यम मार्ग के रूप में आर्य–अष्टांगिक मार्ग का सेवन आता है।

धम्मचक्कपवत्तन सुत्त में दो अन्तों का त्याग बतलाते समय कामसुख को हीन, ग्राम्य और पृथकजनों के अनुकूल, अनार्य एवं अनर्थ करने वाला कहा था तथा आत्मपीड़ा वाली तपस्या को दुःख देने वाली अनार्य एवं अनर्थ करने वाली बतलाया था। [14]

भगवान् बुद्ध के समय सामाजिक स्थिति इतनी बिगड़ गई थी कि कोई कर्मफल एवं पुनर्जन्म आदि को न मानकर काम सुख में लीन था तो कोई कठिन तपस्या से मुक्ति मानकर अपने को कष्ट देने में लगा हुआ था।

भगवान् बुद्ध ने स्वयं दो अन्तों का अनुभव अपने बुद्धत्वकाल के पूर्व किया था। पालि साहित्य में वर्णित है कि राजा शुद्धोधन ने पूरा प्रयास किया था कि 'सिद्धार्थ' सांसारिक आसक्तियों में लगे रहें, लेकिन सिद्धार्थ ने कामसुखों का उपभोग

करके उसमें कोई चिरस्थायी आनन्द नहीं पाया और उनकी अनित्यता समझ कर उन्हें त्याग दिया। इसके बाद तपस्या में भी उन्होंने इतनी कठोर तपस्या की कि उनके शरीर का अस्थिपंजर मात्र शेष रह गया। उसमें भी भगवान् ने लाभ नहीं देखा। अन्त में उसको भी त्याग दिया तथा बोधि की ओर उन्मुख हुए।

संयुत्तनिकाय में भी भगवान् ने बुद्धत्व प्राप्त करने के बाद अपनी पूर्व तपस्या के त्याग पर सन्तोष व्यक्त किया है। [15] विभिन्न प्रसंगों में भगवान् कामसुखों की भर्त्सना करते हैं तथा उसे त्याज्य बतलाते हैं। अत्थकरण सुत्त में भगवान् कहते हैं कि–कामभोगों में आसक्त, कामभोगों से अन्धा बने, किसी सीमा की चिन्ता नहीं करने का फल कटु होता है। जिस प्रकार जाल में पड़ी मछलियों का परिणाम कड़ुआ होता है। [16]

में आसक्त, कामभोगों से अन्धा बने, किसी सीमा की चिन्ता नहीं करने का फल कटु होता है। जिस प्रकार जाल में पड़ी मछलियों का परिणाम कड़ुआ होता है। [16]

रासिय सुत्त में भगवान् से राशिय ग्रामणी पूछता है कि सुना जाता है कि भगवान् सभी तपस्याओं की निन्दा करते हैं एवं रुक्षाजीवी तपस्या की सबसे अधिक निन्दा करते हैं ? क्या यह ठीक है ? भगवान् के सिद्धान्त के अनुकूल है ? प्रतिकूल तो नहीं ? इस प्रकार पूछे जाने पर भगवान् ने इस बात को अपने सिद्धान्त के विपरीत बतलाया। दो अन्तों के सम्बन्ध में किसी प्रकार का विवाद न रहे इसलिए भगवान् ने काम–सुखों के सेवन के दस प्रकार बतलाए एवं रुक्षाजीवी तपस्या के तीन प्रकार बतलाते हुए उनके गुण दोष बतलाये। [17]

कामभोगों के प्रकार एवं उनके गुण–दोष– अधर्म और हृदयहीनता से, धर्म और अधर्म से तथा धर्म से इन आजीविकाओं के सेवन के आधार पर कामभोगों के इस प्रकार बतलाए गए हैं।

1. कोई कामभोगी अधर्म से, हृदयहीनता से कामभोगों को पाने की कोशिश करता है, कामभोग पाकर वह न तो अपने को सुखी बनाता हे, न आपस में बांट कर पुण्य करता है। इस प्रकार का वह आदमी तीन प्रकार से निन्द्य होता है– अधर्म और हृदयहीनता की आजीविका से, स्वयं उपभोग न करने से तथा आपस में न बांटकर पुण्य न कमाने से।
2. कोई अधर्म और हृदयहीनता से भोगों को पाकर, आपस में न बांटता है, न पुण्य कमाता है– इस प्रकार वह दो से निन्द्य है, लेकिन वह स्वयं अपने को सुखी बनाता है। इस एक से प्रशंसनीय है।
3. कोई अधर्म और हृदयहीनता से भोगों को कमाने के कारण एक से निन्द्य, लेकिन वह स्वयं अपने लिए सुखी बनाता है तथा आपस में बांटकर पुण्य कमाता है– इस प्रकार वह दो से प्रशंसनीय होता है।

4. कोई अधर्म से कामभोग पाकर न तो अपने को सुखी बनाता है, न आपस में बांटकर पुण्य कमाता है– इस प्रकार का वह आदमी एक से प्रशंसनीय होता है कि–धर्म से भी कमाया, लेकिन शेष तीन से–अधर्म के कारण, अपने को सुखी न बनाने के कारण तथा आपस में न बांटकर पुण्य न कमाने से निन्दनीय होता है।

5. कोई धर्म और अधर्म से भोगों को पाकर अपने को सुखी बनाता है– इस प्रकार वह दो से निन्द्य एवं दो से प्रशंसनीय होता है। अर्थात् धर्म के कारण तथा अपने को सुखी बनाने के कारण प्रशंसनीय तथा अधर्म, न बांटने एवं पुण्य न कमाने के कारण निन्द्य होता है।

6. कोई धर्म और अधर्म से भोगों को कमाते हुए अपने को सुखी बनाता है। एवं बांटकर पुण्य भी कमाता है– इस प्रकार वह एक अधर्म के कारण निन्द्य तथा शेष तीन में प्रशंसनीय होता है।

7. कोई धर्म से कामभोग पाकर न अपने को सुखी बनाता है, न बांटकर पुण्य कमाता है– इस प्रकार प्रथम धर्म को कमाने के कारण प्रशंसनीय तथा अपने को सुखी न बनाने एवं बांटकर पुण्य न कमाने के कारण निन्द्य होता है।

8. कोई धर्म से कमाकर अपने को सुखी तो बनाता है लेकिन आपस में बांटकर पुण्य नहीं कमाता– इस प्रकार वह दो से प्रशंसनीय एवं एक से निन्द्य होता है।

9. कोई धर्म से कामभोग पाकर अपने को सुखी बनाता है एवं आपस में बांटकर पुण्य भी कमाता है, लेकिन वह लोभाभिभूत हो मूर्च्छित हो, बिना दोष देखे, फल देखे, उसका भोग करता है– इस प्रकार का वह प्रथम तीन से प्रशंसनीय एवं अन्तिम एक से निन्द्य होता है।

10. कोई चारों स्थानों से प्रशंसनीय होता है अर्थात् वह धर्म से कमाकर अपने को सुखी बनाता है, आपस में बांटकर पुण्य कमाता है तथा उपभोग करते समय लोभाभिभूत एवं मूर्च्छित नहीं होता, उसके दोष एवं मोक्ष को देखते हुए भोग करता है वह सर्वोत्तम है।

रुक्षाजीवी तपस्वियों के प्रकार एवं उनके गुण–दोष– रुक्षाजीवी तपस्वियों के तीन प्रकार बतलाते हुए उनके गुण दोष बतलाये गये हैं।

1. कोई रुक्षाजीवी तपस्वी श्रद्धापूर्वक घर से प्रव्रजित होता है। विचार करता है कि कुशल धर्मो का लाभ करुंगा। वह अपने को कष्ट एवं पीड़ा देता है, किन्तु न तो वह कुशल धर्मो का लाभ करता है और न अलौकिक धर्म तथा परम ज्ञान का साक्षात्कार करता है। इस प्रकार वह रुक्षाजीवी तपस्वी तीन स्थानों से निन्दनीय होता है–अपने को कष्ट एवं पीड़ा से, कुशल धर्मो का

16338

लाभ नहीं करने से तथा परम ज्ञान का साक्षात्कार नहीं करने से।

2. कोई रुक्षाजीवी तपस्वी श्रद्धापूर्वक प्रव्रजित होता है। अपने को कष्ट एवं पीड़ा देता है। वह कुशल धर्मो का लाभ तो कर लेता है लेकिन धर्म तथा परम ज्ञान का साक्षात्कार नहीं करता। इस प्रकार वह एक धर्म के साक्षात्कार करने से प्रशंसनीय होता है शेष दो से निन्दनीय होता है।

3. कोई श्रद्धापूर्वक प्रव्रजित होता है। अपने को कष्ट एवं पीड़ा देता है। वह कुशल धर्मो का लाभ कर लेता है तथा अलौकिक धर्म एवं परम ज्ञान का साक्षात्कार भी कर लेता है। इस प्रकार का रुक्षाजीवी तपस्वी दो से प्रशंसनीय होता है– धर्म एवं परमज्ञान का साक्षात्कार करने एवं कुशल धर्मो का लाभ करने से, लेकिन एक स्थान से निन्दनीय होता है–अपने को कष्ट एवं पीड़ा देने से।

संयुत्तनिकाय का प्रथम ओघतरण सुत्त मध्यम मार्ग को प्रतिपादन करने के लिए सबसे अच्छा उदाहरण है। भगवान् से पूछे जाने पर कि आपने बाढ़ को कैसे पार किया? भगवान् उत्तर देते हैं कि उन्होंने बिना रुकते और बिना कोशिश करते हुए बाढ़ को पार किया तथा बतलाया कि यदि रुकने लगता तो डुब जाता और यदि कोशिश करने लगता तो बह जाता– इसलिए उन्होंने बिना रुकते और बिना कोशिश करते हुए बाढ़ को पार किया।[18] रुक जाने से तात्पर्य–कामभोग में लिप्त होने से है तथा बहुत कोशिश करने में आत्मपीड़न वाली तपश्चर्या का निर्देश है, जिसमें एक को भगवान् ने नदी में डूबने के समान बतलाया एवं दूसरे को बाढ़ में बहने के समान बतलाया है तथा इन दोनों अन्तों का वर्जन करते हुए मध्यममार्ग के रुप में आर्य अष्टांगिक मार्ग का प्रतिपादन किया है। भगवान् द्वारा उपर्युक्त प्रकार से दो अन्तों के वर्जन की बात कहने पर देवता ने कहा था कि वह चिरकाल के बाद ब्राह्मण को निर्वाण पाया देखता है, जिसने बिना रुके, बिना कोशिश करते संसार की बाढ़ को पार किया।[19]

बोधिपाक्षिक धर्म

आचार्य बुद्धघोष का सैंतीस बोधिपाक्षिक धर्मो के सम्बन्ध में कहना है कि सैंतीस धर्म बूझने के अर्थ से बोध नाम से पुकारे जाते हैं तथा आर्यमार्ग के पक्ष में होने से बोधिपाक्षिक कहे जाते हैं। पक्ष में होने से इसका अर्थ है– उपकार करने वाला।[20] इनकी संख्या 37,14 और 7 बतलाई है। ये अपने कार्य को पूरा करने के लिए स्वरूप और प्रवर्तित होने से आर्यमार्ग के हाने पर ही होते हैं।[21]

पालि साहित्य में इन सैंतीस धर्मो को धर्म की कसौटी कहा गया है। मज्झिमनिकाय में इनको विवाद से परे बतलाया है।[22] दीघनिकाय के महापरिनिर्वाण

सुत्त में भगवान भिक्षुओं को वैशाली की उपस्थान शाला में अन्तिम उपदेश के लिए बुलवाते हैं और अपने अन्तिम वचन के पहले विभिन्न (सैंतीस) धर्मो का उपदेश देते हुए कहते हैं कि इनको अच्छी तरह सीखकर सेवन करना, भावना करना और बढ़ाना जिसमें ब्रह्मचर्य चिरस्थायी हो, साथ ही यह बहुजन हितार्थ, बहुजन सुखार्थ लोकानुकम्पार्थ, देव मनुष्यों के अर्थ और हित–सुख के लिए हो सके। [23]

संयुत्तनिकाय में सम्बोध्यंग धर्म नाम से इन धर्मो का उल्लेख नहीं है लेकिन धर्मो की चर्चा होने पर इन धर्मो को गिनाया गया है। इनका विस्तृत परिचय भी संयुत्तनिकाय के महावग्ग में मिलता है। ये (सैंतीस) धर्म इस प्रकार हैं– चार स्मृतिप्रस्थान, चार सम्यक् प्रधान, चार ऋद्धिपाद, पांच इन्द्रियां, पांच बल, सात बोध्यंग, आर्य अष्टांगिक मार्ग। [24]

चार स्मृतिप्रस्थान :–

चार स्मृतिप्रस्थान के नामकरण के सम्बन्ध में आचार्य बुद्धघोष का कहना है कि उन–उन आलम्बनों में घुसकर प्रवेश करके जानने से उपस्थान हैं और स्मृति ही उपस्थान है, इसलिए इन्हें स्मृतिप्रस्थान कहा जाता है। काय, वेदना, चित्त और धर्मो में अशुभ, दुःख, अनित्य और अनात्म के आकार से ग्रहण करने और शुभ, सुख, नित्य और आत्मसंज्ञा के प्रहाण कृत्य को सिद्ध करने के अनुसार इनकी प्रवृत्ति से चार प्रकार का भेद होता है, इसलिए चार स्मृतिप्रस्थान कहे जाते हैं। [25]

चार स्मृतिप्रस्थानों की भावना– काया, वेदना, चित्त और धर्म में उत्पत्ति देखते विहार करना, व्यय देखते विहार करना, उत्पत्ति और व्यय देखते हुए क्लेशों को तपाते हुए विहार करना चार स्मृति प्रस्थानों की भावना है। आर्य–अष्टांगिक मार्ग इसका भावनानुगामी मार्ग है।

भीतर (आध्यात्म) बाहर और भीतर– बाहर काय में कायानुपश्यी, वेदना में वेदनायुपश्यी, चित्त में चित्तानुपश्यी तथा धर्मो में धर्मानुपश्यी होकर विहरने से स्मृतिप्रस्थान की भावना बतलाई गई है। शील पर प्रतिष्ठित होकर जब (साधक) इस प्रकार की भावना करता है तो शील विशुद्ध हो जाता है तथा दृष्टि सीधी हो जाती है। [26]

समुदय एवं निरोध– आहार से काया का समुदय और आहार के निरोध से काया का निरोध लय, स्पर्श से वेदना का समुदय और स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध, नामरूप से चित्त का समुदय और नामरूप के रुक जाने से चित्त का निरोध, मनन करने से धर्मो का समुदय और मनन करने के रुक जाने से धर्मो का निरोध होता है।[27]

भावना के पात्र– चार स्मृति प्रस्थानों की भावना सभी के लिए बतलाई गई है। नए प्रव्रजित भिक्षु के लिए, बतलाया गया है कि वे क्लेशों को तपाते हुए संप्रज्ञ,

एकाग्रचित्त एवं श्रद्धायुक्त चित्त से समाहित हों, जिससे चार स्मृतिप्रस्थानों का यथार्थ ज्ञान हो जाय। शैक्ष्य भिक्षु के द्वारा इनमें विहार करने से धर्मो का यथार्थ ज्ञान हो जाता है। अर्हत्, क्षीणास्रव भिक्षु जिनका ब्रह्मचर्य पूरा हो गया है, कृत्कृत्य हो गया है, जिनका भार उतर गया है, परमार्थ पा लिया है, भवसंयोजन क्षीण हो गया है और परमज्ञान को प्राप्त कर जो विमुक्त हो गए हैं वे चार स्मृतिप्रस्थानों की भावना कर धर्मो में अनासक्त हो जाते हैं। [28]

भावना में आवश्यक बातें– चार स्मृतिप्रस्थानों की भावना के लिए चित्त का समाहित होना आवश्यक है क्योंकि जिसका चित्त समाहित नहीं होता उसके उपक्लेश क्षीण नहीं होते। जिस प्रकार मूर्ख रसोइया अपने इनाम से वंचित रहता है, उसी प्रकार जिसका चित्त समाहित नहीं रहता वह भी अपने फल से वंचित रहता है। [29]

भावना में सावधानी आवश्यक बतलाते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार कोई जनपद कल्याणी तेल भरे पात्र को ले जाय और एक आदमी तलवार लिए खड़ा रहे कि तेल के गिरते ही इसका सिर काट दिया जायगा तो वह व्यक्ति असावधानी नहीं करेगा, चित्त एकाग्र रखेगा, उसी प्रकार भिक्षु को सीखना चाहिए कि वह कायगत स्मृति की भावना करेगा, अभ्यास करेगा, अपना लेगा, सिद्ध कर लेगा, अनुष्ठित कर लेगा, परिचित कर लेगा, आरब्ध कर लेगा।[30] चार स्मृति प्रस्थानों को भिक्षु का सुरक्षित स्थान बतलाया गया है तथा पांच कामगुणों को कुठार बतलाया गया है। जिस प्रकार कोई पक्षी चतुराई के कारण सुरक्षित स्थान छोड़कर चिड़ीमार के हाथ फंस जाता है, उसी प्रकार विचलित भिक्षु का हाल होता है। [31]

महत्त्व– भिक्षुओं के लिए स्मृतिप्रस्थानों की भावना में विचरण करना सबसे उपयुक्त स्थान बतलाया गया है, जहां उसे पछताना नहीं पड़ता है। [32] बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद सद्धर्म के स्थायी होने के लिए चार स्मृतिप्रस्थानों की भावना और अभ्यास आवश्यक हैं। ये सद्धर्म की स्थिति के हेतु प्रत्यय कहे गये हैं। [33] चार स्मृतिप्रस्थानों की उपलब्धियों का विवरण संयुत्तनिकाय के अनुरुद्ध संयुत्त में भी विस्तृत रूप में मिलता है। [34] आनापान स्मृति का महत्त्व भी चार स्मृति प्रस्थानों के समान बतलाया गया है। [35] यह चार स्मृति प्रस्थानों के प्रथम प्रत्यय कायगत स्मृति के अन्तर्गत आती है।आनापान स्मृति इस एक धर्म के भावित और अभ्यस्त होने से चार स्मृति प्रस्थान पूर्ण हो जाते हैं। चार स्मृतिप्रस्थान के भावित और अभ्यस्त होने से सात बोध्यंग पूरे जो जाते हैं तथा सात बोध्यंग के पूरे हो जाने से विद्या और विमुक्ति पूरी हो जाती है।[36]

चार सम्यक् प्रधान :–

चार प्रकार के प्रयत्न करना चार सम्यक् प्रधान है।

1. अनुत्पन्न पापमय अकुशल धर्मो के अनुत्पाद के लिए प्रयत्न करना।

2. उत्पन्न पापमय अकुशल धर्मो के प्रहाण के लिए प्रयत्न करना।
3. अनुत्पन्न कुशल धर्मो के उत्पन्न करने के लिए प्रयत्न करना।
4. उत्पन्न कुशल धर्मो की स्थिति के लिए प्रयत्न करना। [37]

आर्य अष्टांगिक मार्ग के सम्यक् व्यायाम के अन्तर्गत इन्हीं चार प्रत्ययों का समावेश है अर्थात् सम्यक् प्रधान को सम्यक् व्यायाम भी कहते है। विशुद्धि मार्ग में कहा गया है कि सम्यक् प्रधान क्लेशों के कुरूप भाव को छोड़ने से सुन्दर तथा श्रेष्ठ बनाने एवं उत्तम होने के हेतु द्वारा हित सुख को पूर्ण करने से प्रधान है। इसलिए सम्यक् प्रधान कहे जाते हैं। यह वीर्य का नाम है। [38] संयुत्तनिकाय में इनका विस्तृत विवरण 'सम्मप्पधान संयुत्त' में दिया गया है। [39]

चार ऋद्धिपाद :–

ऋद्धियों के सिद्ध करने वाले मार्ग होने से ऋद्धिपाद कहा जाता है। [40] आचार्य बुद्धघोष ने सिद्ध करने के अर्थ से 'ऋद्धि' कहा है। ऋद्धि को आग्रे–आगे चलने के अर्थ में युक्त होने से और पूर्वभाग में हेतु होने से फल बताया है। ऋद्धि का पाद है, इसलिए ऋद्धिपाद तथा चार प्रकार के होने से चार ऋद्धिपाद कहा जाता है।[41]

चार ऋद्धिपाद–

1. छन्द–समाधि–प्रधान–समाधि से युक्त ऋद्धिपाद।
2. वीर्य–समाधि–प्रधान–समाधि से युक्त ऋद्धिपाद।
3. चित्त–समाधि–प्रधान–समाधि से युक्त ऋद्धिपाद।
4. मीमांसा–समाधि–प्रधान–समाधि से युक्त ऋद्धिपाद।

छन्द (इच्छा) के आधार पर समाधि और चित्त की एकाग्रता पाना छन्द समाधि है। वीर्य के आधार पर समाधि और चित्त की एकाग्रता पाना 'वीर्य' समाधि है। चित्त के आधार पर समाधि और चित्त की एकाग्रता पाना यह 'चित्त समाधि' है। मीमांसा के आधार पर चित्त और समाधि की एकाग्रता पाना 'मीमांसा समाधि' है। साधक अनुत्पन्न पापमय अकुशल धर्मो के अनुत्पाद के लिए, उत्पन्न पापमय अकुशल धर्मो के प्रहाण के लिए, अनुत्पन्न कुशल धर्मो के उत्पाद के लिए और उत्पन्न कुशल धर्मो की स्थिति, विशुद्धि, भावना और पूर्णता के लिए कोशिश करता है, उत्साह करता है, मन लगाता है। यह प्रधान संस्कार कहा जाता है। इस प्रकार प्रत्येक के साथ प्रधान संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद कहे जाते हैं। [42]

ऋद्धिपाद भावना– चार ऋद्धिपाद की भावना के सम्बन्ध में कहा गया है कि छन्द, वीर्य, चित्त और मीमांसा समाधि प्रधान संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद की भावना इस प्रकार करता है कि उसका छन्द, वीर्य, चित्त और मीमांसा न कमजोर होगा, न तेज

होगा, न भीतर ही भीतर बन्द रहेगा, न बाहर इधर–उधर फैल जाएगा। पीछे और आगे संज्ञा के साथ विहार करता है– पीछे–आगे, ऊपर–नीचे, दिन और रात में एक समान खुले चित्त में प्रभा के साथ चित्त की भावना करता है।[43] इस प्रकार की भावना से महाफल की प्राप्ति होती है।

छन्द, वीर्य, चित्त और मीमांसा ऋद्धिपादों की भावना में आए शब्दों की भी विस्तृत व्याख्या की गई है। कुसीद भाव (चित्त के हल्केपन) से युक्त चित्त को कमजोर कहा गया है। औद्धत्व से युक्त चित्त को बहुत तेज कहा गया है। भारीपन और आलस्य से युक्त चित्त को अपने भीतर ही भीतर कहा गया है। पांच कामगुणों मे लगे को इधर– उधर बाहर बिखरा कहा गया है। नीचे ऊपर समान व्यवहार के सम्बन्ध में बताया गया है कि भिक्षु तलवे से ऊपर, केश से नीचे, चमड़े से लिपटे हुए शरीर को नाना प्रकार की गन्दगियों से भरा देखकर चिन्तन करता है कि–इस शरीर में केश, नख, दन्त, त्वक्, मांस, धमनिया, हड्डियां, मज्जा, वृक, हृदय, यकृत, क्लोमक, प्लीहा, पप्फास (फेंफड़ा) आंत, बड़ी आंत, उदरस्थ मैला, पित्त, कफ, पीब, लहू, पसीना, चर्बी, आंसू, तेल, थूक, पोंटा, लस्सी, मूत्र हैं। दिन और रात के समान व्यवहार के सम्बन्ध में कहा गया है कि 'आकार', लिंग और निमित्त से दिन और रात में समान ऋद्धिपाद की भावना करता है। खुले चित्त का सम्बन्ध प्रभावाले चित्त से बतलाया गया है। आलोक संज्ञा तथा दिवा संज्ञा, अच्छी तरह गृहीत और अधिष्ठित होने के लिए कहा गया है। कुशील भाव से युक्त वीर्य को बहुत कमजोर कहा गया है।[44]

ऋद्धिपादों की भावना का मार्ग आर्य–अष्टांगिक मार्ग बतलाया गया है।[45] इनका उद्देश्य छन्द, वीर्य, चित्त और मीमांसा के प्रहाण के लिए इनका पालन करना है। यहां पर प्रहाण का तात्पर्य उनकी सफलता (शान्त हो जाना) बतलाया है।[46]

भिक्षुसंघ में मौद्गल्यायन को ऋद्धि धारियों में अग्र बतलाया गया है।[47]

ऋद्धि के सम्बन्ध में कहा गया है कि जो (साधक) अनेक प्रकार की ऋद्धियों को सिद्ध करता है वह एक होकर बहुत हो जाता है, बहुत होकर एक हो जाता है। प्रकट हो जाता है, अन्तर्धान हो जाता है, दीवार के बीच से भी निकल जाता है, प्रकार के बीच से भी निकल जाता है। पर्वत के बीच से भी निकल जाता है। बिना उलझे हुए जाता है जैसे आकाश में जाया जाता है। पृथ्वी के समान जाता है। आकाश में पालकी लगाये पत्ती के समान जाता है। तेजवाले सूरज और चांद को भी स्पर्श करता है। ब्रह्मलोक को अपने वश में कर लेता है।

देवताओं के दूर के शब्दों को सुनता है, पास के शब्दों को सुनता है। दूसरे के चित्त को जान लेता है। विभिन्न प्रकार के चित्त बतलाये गए हैं, जिनको साधक जान लेता है–सराग चित्त, वीतराग–चित्त, द्वेष युक्त चित्त, द्वेष रहित चित्त, मोह युक्त

चित्त, मोहरहित चित्त, दबा हुआ, बिखरा हुआ चित्त, लोकोत्तर चित्त, लौकिक चित्त, साधारण चित्त, असाधारण चित्त, समाहित चित्त, असमाहित चित्त, विमुक्त चित्त तथा अविमुक्त चित्त। पूर्वजन्मों की बातों को जान लेता है– एक जन्म, दो जन्म, पांच, दस, बीस, पचास, सौ, लाख, संर्वतकल्प, विवर्तकल्प, अनेक संवर्त विवर्त कल्प को जान लेता है कि उस समय, इस नाम, गोत्र, इस शक्ल, इस आकार का था तथा इस प्रकार सुख–दुःख का अनुभव करने वाला, इतनी आयु तक जीनेवाला, मरकर कहॉ उत्पन्न हुआ तथा फिर इस नाम गोत्र का हुआ। दिव्य, विशुद्ध और अलौकिक चक्षु से जीव को देखता है–जीवों को मरते, जीते, हीन, प्रणीत, सुन्दर, सुगति, दुर्गति को प्राप्त, कर्म की गति के अनुसार अवस्था प्राप्त, जीवों को शरीर, वचन और मन से दुराचरण करते– सत्पुरुषों की निन्दा करते, मिथ्यादृष्टि वालों को मिथ्यादृष्टि से मरकर नरक में उत्पन्न होते देखता है। मन, वचन और काय से सदाचरण करते देखता है। निन्दा न करने वालों, सम्यक् दृष्टिवालों को मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न होते देखता है। [48]

पॉंच इन्द्रिय और पॉंच बल :–

श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि ओर प्रज्ञा को पॉच इन्द्रियां भी कहा जाता है और पांच बल भी। यद्यपि इन्द्रिय एवं बल दोनों का संयुत्त निकाय में अलग–अलग वर्णन आया है [49] किन्तु दोनों में समानता होने से यहां एक साथ वर्णित किया जा रहा है।

आचार्य बुद्धघोष ने इनके नामकरण के सम्बन्ध में कहा है कि अश्रद्धा, आलस्य, प्रमाद और विद्वेष को पछाड़ने से, पछाड़ना कहलाने वाले अधिपति के अर्थ से इन्द्रिय है तथा श्रद्धा आदि के अविचलित होने के अर्थ से बल हैं। दोनों पांच प्रकार के होते हैं इसलिए पांच इन्द्रिय और पांच बल कहे जाते हैं। [50]

संयुत्तनिकाय में भगवान् से पूछे जाने पर कि क्या कारण है कि पांच इन्द्रियों को पांच बल कहा जाता है। भगवान् ने स्पष्ट किया कि जिस प्रकार नदी की धारा में द्वीप होने से, एक दृष्टिकोण से नदी की धारा एक समझी जाती है और दूसरे दृष्टिकोण से दो धाराएं समझी जाती हैं क्योंकि उत्तर, दक्षिण के जल के आधार पर दो धाराएं हैं तथा पूरब–पश्चिम के आधार पर एक ही है, उसी तरह इन्द्रियां भी बल कहे जाते हैं। [51]

पांच इन्द्रियों में अन्य धर्म भी समाहित हो जाते हैं, इस बात का भी स्पष्टीकरण किया गया है। श्रद्धाइन्द्रिय का तात्पर्य स्रोतापत्ति के चार अंगों से है। वीर्य इन्द्रिय का तात्पर्य चार सम्यक् प्रधानों से है। स्मृति इन्द्रिय का तात्पर्य चार स्मृति प्रस्थानों से हैं। समाधि इन्द्रिय का तात्पर्य चार ध्यानों से है। प्रज्ञा इन्द्रिय का तात्पर्य चार आर्य सत्यों से है। [52]

श्रद्धाइन्द्रिय– जब आर्यश्रावक श्रद्धा करता है कि भगवान् अर्हत, सम्यक्–सम्बुद्ध, विद्याचरणसम्पन्न, लोकविद्, अनुत्तर, पुरुषों को दमन करने में सारथी के समान देवताओं और मनुष्यों के गुरु बुद्ध भगवान् हैं, इस प्रकार वह श्रद्धाइन्द्रिय से युक्त होता है।

वीर्यइन्द्रिय– अकुशल धर्मो के प्रहाण के लिए और कुशल धर्मो को पैदा करने के लिए वीर्यवान् होना, स्थिरता से दृढ़ पराकम करना, कुशल धर्मो में कन्धा नहीं झुकाना वीर्यइन्द्रिय है।

स्मृतिइन्द्रिय– परम स्मृति से युक्त चिर काल के किए और कहे गये धर्मो के स्मरण को स्मृति इन्द्रिय कहा गया है।

समाधिइन्द्रिय– निर्वाण का आलम्बन करके चित्त की एकाग्रता वाली समाधि का लाभ करना समाधि इन्द्रिय है।

प्रज्ञा इन्द्रिय– धर्मो के उदय और अस्त होने के स्वभाव को प्रज्ञा पूर्वक जानना, जिससे बन्धन कट जाते हैं, दुःखों का बिल्कुल क्षय हो जाता है, प्रज्ञा इन्द्रिय है।[53]

सात बोध्यंग :–

बोध्यंग बोधि (ज्ञान) के लिए होते हैं, इसलिए इन्हें बोध्यंग कहा जाता है।[54] इनकी संख्या सात है–स्मृति सम्बोध्यंग, धर्मविचय–सम्बोध्यंग, वीर्य सम्बोध्यंग, प्रीति सम्बोध्यंग, प्रश्रब्धि सम्बोध्यंग, समाधि सम्बोध्यंग तथा उपेक्षा समबोध्यंग।[55] यही सात सम्बोध्यंग धर्म आध्यात्म और बाह्य धर्मो के दृष्टिकोण से 14 भी बतलाये गए हैं।[56]

बोध्यंग धर्मो के अलग–अलग आहार हैं, जिनसे अनुत्पन्न बोध्यंग धर्म उत्पन्न होते हैं तथा उत्पन्न बोध्यंग धर्म भावित और पूर्ण होते हैं।

स्मृति बोध्यंग सिद्ध करने वाले जो धर्म हैं, उनका अच्छी तरह मनन करना, स्मृति सम्बोध्यंग धर्म का आहार है। कुशल और अकुशल, सदोष तथा निर्दोष बुरे और अच्छे तथा कृष्णा और शुक्ल धर्मो का अच्छी तरह मनन करना धर्मविचय सम्बोध्यंग धर्म का आहार है। आरम्भ–धातु, नैष्कम्य–धातु तथा पराकम–धातु का अच्छी तरह मनन करना वीर्य सम्बोध्यंग धर्म का आहार है। प्रीतिसम्बोध्यंग धर्म को सिद्ध करने वाले धर्मो का अच्छी तरह मनन करना प्रीतिसम्बोध्यंग धर्म का आहार है। काय प्रश्रब्धि, चित्त प्रश्रब्धि का अच्छी तरह मनन करना प्रश्रब्धि–सम्बोध्यंग धर्म का आहार है। समथनिमित्त और विपश्यना निमित्त का अच्छी तरह चिन्तन करना सम्बोध्यंग धर्म का आहार है तथा उपेक्षा सिद्ध करने वाले धर्मो का अच्छी तरह मनन करना उपेक्षा–सम्बोध्यंग धर्म का आहार है।[57]

भावना का असमय– पांच कामच्छन्दों की उपस्थिति को सात सम्बोध्यंगों की भावना का असमय कहा गया है। ये चित्त में भीगे ईंधन के समान हैं। जिस प्रकार

भीगे ईंधन से आग नहीं जलायी जा सकती है उसी प्रकार पांच नीवरणों के विद्यमान रहने से चित्त मैला रहता है। मैले चित्त की उपमा गन्दे पानी से दी गई है। जिस प्रकार जल में गन्दगी विद्यमान रहते परछाई दिखाई नहीं देती, उसी प्रकार नीवरणों के विद्यमान रहने से बोध्यंग धर्म उत्पन्न नहीं होते। [58]

कामच्छन्द—चित्त को जल पात्र में हल्दी या मजीठा के समान, व्यापाद—चित्त को जलपात्र के खौलते पानी में भाप निकलने के समान, स्त्यानमिद्ध चित्त को जलपात्र में सेवाल और पंक से गंदे के समान, औद्धत्य—कौकृत्य चित्त को हवा से चंचल जलपात्र के समान तथा विचिकित्सा वाले चित्त को अंधेरे में रखे गंदे जलपात्र के समान बतलाया है। जिस प्रकार जलती हुई अग्नि में सूखे ईंधन डालने से अग्नि शान्त नहीं हो सकती उसी प्रकार नीवरणों के विमान रहने पर चित्त शान्त नहीं किया जा सकता है। नीवरणों के विद्यमान रहने पर किसी प्रकार के मन्त्र नहीं उठते, जो दीर्घकाल तक अभ्यास भी किए गए हैं। [59]

भावना का समय— पांच नीवरणों को छोड़ मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा से युक्त होकर चार दिशाओं में व्याप्त होकर विहरने को सात बोध्यंगों की भावना का उपयुक्त समय कहा गया है। इनके युक्त रहने पर मुक्ति सिद्ध होती है। या साधक चाहता है तो प्रतिकूल में अप्रतिकूल की संज्ञा से विहार करता है, अप्रतिकूल में प्रतिकूल की संज्ञा से विहार करता है, अप्रतिकूल और प्रतिकूल दोनों संज्ञाओं से युक्त होकर विहार करता है। दोनों को छोड़कर उपेक्षा पूर्वक स्मृतिमान् और संप्रज्ञ होकर विहार करता है। शुभ या विमोक्ष को प्राप्त कर विहरता है। आकाशानंचायतन, विज्ञानांनचायतन, आकिंचन्यायतन की संज्ञा को प्राप्त होकर विहार करता है। [60]

आस्थिक संज्ञा, पुलवक संज्ञा, विनीलक संज्ञा, विच्छिद्रक संज्ञा, उद्धुमातक संज्ञा, मैत्री करणा, मुदिता, उपेक्षा तथा आनापान स्मृति के भावित और अभ्यस्त होने से महाफल वाला एवं सात सम्बोध्यंगों की भावना करने वाला बतलाया गया है। इससे मुक्ति सिद्ध होती है। [61]

सात बोध्यंगों के सम्बन्ध में कहा गया है कि इसके एक प्रत्यय की यथार्थ भावना से सभी सात प्रत्यय देखे जा सकते हैं। [62] सम्बोध्यंगों को बुद्ध के रत्न कहा गया है। जिस प्रकार चक्रवर्ती के सात रत्न होते हैं और वह उनमें से जिसका जब उपयोग करना चाहे करें [63], अथवा राजा अपने खजाने में से जिन कपड़ों को चाहे पहनें, उसी प्रकार वे सात रत्न हैं। [64]

सात सम्बोध्यंगों को शिक्षा को अन्य तैथिकों द्वारा भी उसी प्रकार प्रतिपादित करते हुए बतलाया गया है। [65]

आर्य अष्टांगिक मार्ग :—

आर्य अष्टांगिक मार्ग को मध्यम प्रतिपदा भी कहा जाता है, क्योंकि इसकी

शिक्षा के पहले दो अन्तों के त्याग की बात कही है एवं मध्यम मार्ग के रूप में इसका उपदेश दिया है। चार आर्यसत्यों के अन्तर्गत चौथे आर्यसत्य दुःखनिरोध गामिनी प्रतिपदा में इसी आर्य अष्टांगिक मार्ग का प्रतिपादन किया जाता है।

पालि साहित्य एवं अनेक बौद्ध ग्रन्थों में आर्य अष्टांगिक मार्ग की चर्चा की गई है। संयुत्तनिकाय में इनसे सम्बन्धित एक पूरा संयुत्त है, जिसमें 181 सुत्त हैं।[66] इसके अतिरिक्त अन्य सुत्तों में भी विस्तृत परिचय मिलता है।

आर्य अष्टांगिक मार्ग के अष्ट अंग इस प्रकार हैं–

1. सम्यक् दृष्टि, 2. सम्यक् संकल्प, 3. सम्यक् वाणी, 4. सम्यक् कर्म, 5. सम्यक् आजीविका, 6. सम्यक् व्यायाम, 7. सम्यक् स्मृति तथा 8. सम्यक् समाधि।

आर्य मार्ग के प्रत्येक अंग में सम्यक् शब्द जुड़ा हुआ है। जब सम्यक् हटाकर मिथ्या जोड़ दिया जाता है तो यही मार्ग मिथ्या रूप, हानिकर होता है और उसे छोड़ने की सलाह दी गई है।[67]

धर्म विनय में आर्य अष्टांगिक मार्ग को ब्रह्मयान, धर्मयान और अनुत्तर संग्राम विजय कहा गया है, क्योंकि आठ अंगों के चिन्तन और अभ्यास से राग, द्वेष और मोह का अन्त हो जाता है।

शील की साजवाले इस रथ में श्रद्धा(समाधि) और प्रज्ञा जुते रहते हैं। ह्री रथ के फाल के समान हैं। मन रथ की लगाम है। स्मृति सावधान सारथी और ध्यान इसका अक्ष है। वीर्य को पहिया, उपेक्षा तथा समाधि को धुरी एवं अनित्य बुद्धि को इसका ढक्कन कहा है। अव्यापाद, अहिंसा और विवेक को आयुध तथा तितिक्षा धर्म को रक्षार्थ चर्म कहा है। धीर पुरुष इस संसार से निकल जाते हैं, यही इस रथ की परम विजय है।[68]

व्याख्या– अष्ट अंगों की व्याख्या इस प्रकार मिलती है।[69]

सम्यक् दृष्टि– चार आर्य सत्यों का यथार्थ ज्ञान सम्यक् दृष्टि है।

सम्यक् संकल्प– इसके अन्तर्गत नैष्कम्य संकल्प, अव्यापाद संकल्प एवं अविहिंसा संकल्प आते हैं।

सम्यक् वाणी– चार प्रकार की वाणी– असत्य, चुगली, कटुभाषण एवं सम्प्रलाप से विरक्ति त्याग सम्यक् वाणी है।

सम्यक् कर्म– हिंसा, चोरी और कायगत मिथ्याचार– इन तीन प्रकार के मिथ्या आचरणों का त्याग करना सम्यक् कर्म है।

सम्यक् आजीविका– सभी प्रकार की मिथ्या आजीविका को छोड़कर सम्यक् जीविका पूर्वक जीवन निर्वाह करना सम्यक् आजीविका है।

सम्यक् व्यायाम— चार प्रकार के प्रयत्न करना सम्यक् व्यायाम हैं। अनुत्पन्न पापमय अकुशल धर्मो के अनुत्पाद के लिए, उत्पन्न पापमय अकुशल धर्मो के प्रहाण के लिए, अनुत्पन्न कुशल धर्मो के उत्पन्न करने के लिए और उत्पन्न कुशल धर्मो की स्थिति के लिए इच्छा करना, कोशिश करना, उत्साह करना, मन लगाना सम्यक् व्यायाम है।
सम्यक् स्मृति— क्लेशों को तपाते हुए, स्मृतिमान और संप्रज्ञ हो संसार के लोभ और दौर्मनस्य को दबाकर काया में कायानुपश्यी, वेदना में वेदनानुपश्यी चित्त में चित्तानुपश्यी तथा धर्मो में धर्मानुपश्यी होकर विहरना सम्यक् स्मृति कहलाती है।
सम्यक् समाधि— प्रथमध्यान, द्वितीय ध्यान, तृतीयध्यान एवं चतुर्थध्यान इन चार ध्यानों को सम्यक् समाधि कहा गया हैं।

बोधिपाक्षिक धर्मो की विशेषताएं :—

संयुत्तनिकाय में आर्य अष्टांगिक मार्ग, सात सम्बोध्यंग, चार स्मृति प्रस्थान, पांच इन्द्रिय, पांच बल, चार सम्यक् प्रधान, चार ऋद्धिपाद और चार ध्यान का परिचय देने वाले अलग—अलग संयुत्त हैं। इन सभी धर्मो में कुछ समान विशेषताएं पाई जाती हैं। गंगापेयाल वर्ग, अप्पमाद वर्ग, बलकरणीय वर्ग, एसनावर्ग तथा ओध वर्ग—ये पांच वर्ग सभी उपर्युक्त धर्मो से सम्बन्धि संयुत्तों में पेय्याल कहकर वर्णित है। बोज्झंग संयुत्त, इन्द्रिय संयुत्त एवं बल संयुत्त में इन विशेषताओं की पुनरावृत्ति है।

गंगापेयाल वर्ग मे कहा गया है कि जिस प्रकार पांच नदियां पूर्व की ओर बढ़ती हैं, उसी प्रकार इन धर्मो का अभ्यास करने वाला भिक्षु निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।[70]

अप्रमाद वर्ग में कहा है कि अप्रमाद सभी धर्मो में अग्र समझा जाता है। अप्रमत्त भिक्षु से आशा की जाती है कि वह इन धर्मो का अभ्यास और चिन्तन करेगा।[71]

बलकरणीय वर्ग में कहा गया है कि इन सभी धर्मो का पालन शील में प्रतिष्ठित होकर किया जाता है। इन धर्मो के पालन से भिक्षु निर्वाण की ओर झुका होता है। पापमय अकुशल धर्मो को छोड़ देता है। निर्वाण का साक्षात्कार करता है। शेष धर्मो की पूर्णता को प्राप्त होता है। अकुशल धर्मो को दबा देता है। उसके संयोजन नष्ट हो जाते हैं। भिक्षु का गृहस्थ बनना सम्भव नहीं होता। इन धर्मो के अभ्यास से ज्ञानपूर्वक जानने योग्य धर्मो को जान लेता है। त्यागने योग्य धर्मो को त्याग देता है। साक्षात्कार करने योग्य धर्मो का साक्षात्कार करता है तथा अभ्यास करने योग्य धर्मो का अभ्यास करता है।[72]

एसना वर्ग में तीन एषणाएं, तीन अहंकार, तीन आस्रव, तीन दुःख, तीन बाधाएं, तीन मल, तीन वेदनाओं तथा तीन तृष्णाओं का परिचय दिया गया है तथा

इनको जानने के लिए, क्षय करने के लिए, प्रहाण करने के लिए सभी धर्मो (बोधि पाक्षिक) का अभ्यास आवश्यक बतलाया गया है। [73]

ओघ वर्ग में चार बाढ़, चार योग, चार उपादान, चार गाठे, सात अनुशय, पांच कामगुण, पांच नीवरण, पांच उपादान स्कन्ध, पांच निचले संयोजन, एवं पांच ऊपरी संयोजन का विवरण दिया गया है तथा इनको जानने, क्षय करने एवं प्रहाण करने के लिए उपर्युक्त सभी धर्मो के अभ्यास की सलाह दी गई है। [74]

इन वर्गो के अतिरिक्त कुछ और समानताएं बतलाई गई हैं, जो अधिकांश धर्मो में मिलती हैं।

इन धर्मो का ज्ञान अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध के उत्पन्न होने पर ही होता है। [75] बुद्ध विनय के बिना इन धर्मो का ज्ञान भी सम्भव नहीं है। [76] भगवान् ने बुद्धत्व प्राप्ति के पूर्व इन धर्मो का मनन बोधिसत्व अवस्था में किया था।[77] तथा इन धर्मो के ज्ञान हो जाने के बाद अपने को बुद्ध घोषित किया।[78] इन धर्मो के ज्ञान के बाद एक समान उदान वाक्य मिलता है कि पहले कभी न सुने हुए धर्मो का ज्ञान उत्पन्न हुआ, चक्षु प्रज्ञा एवं विद्या उत्पन्न हुई। [79]

ब्रह्मचर्य पालन का उद्देश्य और उसकी सफलता इन धर्मो के पालन में कही गई है। राग को जीतने के लिए, संयोजनों को प्रहाण करने के लिए, अनुशयों को समूल नष्ट करने के लिए, मार्ग का अन्त जानने के लिए, आस्रवों का क्षय करने के लिए, विद्या और विमुक्ति फल का साक्षात्कार करने के लिए, ज्ञान दर्शन के लिए, उपादान से रहित हो निर्वाण पाने के लिए इन धर्मो का पालन करना चाहिए।[80]

इन धर्मो की भावना से सात फल बतलाये गए हैं। देखते–देखते परम ज्ञान का साक्षात्कार करता है अथवा मरने के बाद अवश्य साक्षात्कार करता है। पांच संयोजनों के क्षीण हो जाने से अपने भीतर ही भीतर निर्वाण पा लेता है। अथवा आगे चलकर निर्वाण पा लेता है। पांच नीचे वाले संयोजन क्षीण हो जाने से उर्ध्वस्रोतगामी श्रेष्ठ मार्ग पर जाने वाला होता है।[81]

इन धर्मो के पालन से अमृत की प्राप्ति होती है।[82] शैक्ष्य,[83] अशैक्ष्य,[84] श्रमण, ब्राह्मण,[85] कहलाने का अधिकारी होता है।

स्कन्धत्रय–'शील समाधि और प्रज्ञा'

जिस परम पद की प्राप्ति के लिए भगवान् ने मध्यममार्ग के रूप में आर्य अष्टांगिक मार्ग का प्रतिपादन किया था, उसी परमपद की प्राप्ति के लिए भगवान् ने शील, समाधि और प्रज्ञा का भी प्रतिपादन किया था। विभिन्न प्रसंगों में कहा गया है कि आर्य अष्टांगिक मार्ग में शील, समाधि, प्रज्ञा संग्रहीत हैं और शील समाधी प्रज्ञा में आर्य अष्टांगिक मार्ग संगृहीत हैं।[86]

आचार्य बुद्धघोष ने 'शील समाधि प्रज्ञा' को व्याख्या के रूप में विशुद्धिमार्ग की रचना की है, जिससे इनका महत्व अधिक हो गया है क्योंकि इसमें पूरा बौद्ध धर्म समाहित है।

संयुत्तनिकाय में शील समाधि प्रज्ञा से सम्बन्धित वे प्राचीन एवं ऐतिहासिक गाथाएं वर्णित हैं। जिनके आधार पर आचार्य बुद्धघोष ने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ विशुद्धि मार्ग लिखा था जिसे बौद्ध धर्म का विश्वकोष कहा जा सकता है।

"अन्तो जटा बहि जटा, जटाय जटिता पजा।
तं तं गोतम पुच्छामि, को इमं विजटये जटं ति।
सीले पतिट्ठाय नरो सपञ्ञो, चित्तं पञ्ञं च भावयं।
आतापी निपको भिक्खु, सो इमं विजटये जटं।।" [87]

संयुत्तनिकाय में शील, समाधि, प्रज्ञा से सम्बन्धित कोई स्वतंत्र संयुत्त नहीं है, जिससे अधिक विस्तृत विवेचन मिले, किन्तु विभिन्न प्रसंगों में विभिन्न सुत्तों के आधार पर शील, समाधि और प्रज्ञा पर प्रकाश डाला गया है।

शील :–

शील का प्रतिपादन बौद्ध साहित्य में सर्वाधिक मिलता है। इसकी अनिवार्यता सभी धर्मों के लिए बतलाई गई है तथा धर्मों का प्रारम्भिक स्थल एवं प्रतिष्ठा का घाट बतलाया गया है।

शील के महत्व को देखते हुए आचार्य बुद्धघोष ने इसका विशद विवेचन किया है। शील क्या है? किस अर्थ में है? इसके लक्षण, आकार, प्रत्यय, शील का गुण विशुद्धि आदि क्या हैं? इसका सूक्ष्म विवेचन त्रिपिटक के सन्दर्भो सहित विशुद्धिमार्ग में किया है।

संयुत्तनिकाय में शील से सम्बन्धित प्रसिद्ध एवं ऐतिहासिक गाथा में कहा गया है कि शील पर प्रतिष्ठित होकर प्रज्ञावान् मनुष्य और वीर्यवान् विवेकी भिक्षु चित्त और प्रज्ञा की भावना करते हुए जटा सुलझा सकता है।[88] शील को घाट बतलाते हुए कहा है कि–शील में बैठकर परमज्ञानी धर्मरूपी जलाशय में स्नानकर बिल्कुल परिशुद्ध गात्र वाला हो जाता है।[89] जिस प्रकार बल से किए जाने वाले कर्म पृथ्वी के आधार पर खड़े होकर किए जाते हैं, वनस्पतियां पृथ्वी के आधार पर उगती और बढ़ती हैं, नाग हिमालय पर्वत के आधार पर पलते और पढ़ते हैं, उसी प्रकार धर्मो की स्थिति है कि वे शील के आधार पर पलते और वृद्धि को प्राप्त होते हैं।[90]

स्रोतापन्न होने के लिए बुद्ध, धर्म एवं संघ की शरण स्वीकार करने के साथ ही शील का पालन आवश्यक बताया गया है, जिसमें उसे सात धर्मो का पालन

अनिवार्य कहा है, जो इस प्रकार है– जीव हिंसा से विरति, चोरी से विरति, परस्त्री गमन से विरति, झूठ बोलने से विरति, चुगली करने से विरति, कठोर वचन बोलने से विरति तथा मुधा प्रलाप (गप्प हांकने) से विरति।[91]

आर्य अष्टांगिक मार्ग, सात सम्बोध्यंग, चार स्मृति प्रस्थान, पांच इन्द्रिय, पांच बल, चार सम्यक् प्रधान, चार ऋद्धिपाद एवं चार ध्यान की परिपूर्णता के लिए शील पालन की अनिवार्यता बतलाई गई और शील से युक्त होने पर इन धर्मो की वृद्धि होती है।[92]

श्रद्धा के साथ शील के पालन से विभिन्न लाभ बतलाए गए हैं। श्रेष्ठ और सुन्दर शीलों से युक्त होने पर अखण्ड, अछिद्र, निर्मल, शुद्ध निर्बाध, विज्ञों से प्रशस्त, अमिश्रित समाधि के अनुकूल होता है।[93] साधक को प्रज्ञा की प्राप्ति, वृद्धि एवं विपुलता होती हैं।[94]

समाधि :–

समाधि का प्रयोग आर्य अष्टांगिक मार्ग के आठवें अंग के रूप में तथा स्कन्धत्रय (शील समाधि प्रज्ञा) के अन्तर्गत मिलता है। चित्त की एकाग्रता को समाधि कहा जाता है।[95]

समाधि की शिक्षा देते हुए भगवान् ने कहा था– समाधि का अभ्यास करो, समाधिस्थ भिक्षु चार आर्यसत्यों को यथार्थतः जान लेता है।[96] आश्वासप्रश्वास वाली समाधि को भगवान् ने अधिक महत्व नहीं दिया है। उनका प्रमुख आदेश अनित्यता के सिद्धान्त को पालन करना था। इसका उदाहरण अस्सजि सुत्त में मिलता है। जब अस्सजि को आश्वास और प्रश्वास पर ध्यान लगाने पर समाधि का लाभ नहीं हुआ तो वह अपने लिए समझने लगा कि वह शासन से गिर गया है, लेकिन भगवान् ने कहा– उसे ऐसा नहीं समझना चाहिए। जो श्रमण या ब्राह्मण समाधि को ही मुख्य वस्तु मानते हैं वे भले ही ऐसा समझें।[97]

संयुत्तनिकाय के विभिन्न सुत्तों से समाधि के परिणाम एवं महत्व का ज्ञान होता है। मार के बहकाने से भगवान् को भिक्षा न मिलने पर भगवान् ने समाधिज प्रीति द्वारा ही सन्तुष्ट रहने का निश्चय किया था। इसी प्रकार भगवान् के पैर में चोट लगने पर जब भगवान् उसे धीरता पूर्वक सहन कर रहे थे तब एक देवता ने कहा कि– यह समाधि का परिणाम है कि वे विमुक्त चित्त वाले हैं, उनका चित्त न तो उठा है, न दबा है, न कोशिश करके स्थिर किया गया है अपितु स्वाभाविक है।[98]

असंखत संयुत्त में असकृतगामी मार्ग के रूप में सवितर्क–सविचार युक्त समाधि, अवितर्क अविचार युक्त समाधि, अवितर्क अविचार युक्त समाधि सूञ्ञतासमाधि, अनिमित्त समाधि, तथा अप्रणिहित–समाधि का प्रतिपादन किया गया है। [99]

अनिमित्त–समाधि के सम्बन्ध में कहा गया है कि जब भिक्षु सभी निमित्तों को मन से छोड़कर अनिमित्त–चित्त की समथध को प्राप्त होकर विहरता है तब उसे अनिमित्त–चित्त की समाधि कहा जाता है। [100]

चार ध्यान– आर्य अष्टांगिक मार्ग के आठवे अंग के रूप में सम्यक् समाधि का वर्णन आता है, जिसमें चार ध्यानों को सम्यक् समाधि कहा गया है। [101]

प्रथम ध्यान– काय और अकुशल धर्मो को त्याग कर वितर्क और विचार वाले विवेक से उत्पन्न प्रीतिसुख वाले ध्यान को प्राप्त कर विहरना प्रथम ध्यान है।

द्वितीय ध्यान–वितर्क और विचार के शान्त हो जाने से आध्यात्म प्रसाद वाले, चित्त की एकाग्रता वाले, वितर्क और विचार रहित समाधि से उत्पन्न प्रीति सुख वाले ध्यान को प्राप्त हो कर विहरना द्वितीय ध्यान है। महामोद्गल्यान द्वारा द्दितीय ध्यान को आर्य तूष्णी–भाव कहा गया है। महामौद्गल्यायन ने इसमें विहार कर महा अभिज्ञा प्राप्त की थी। [102]

तृतीय ध्यान– प्रीति से भी विरक्त हो उपेक्षा पूर्वक विहार करना, स्मृतिमान् और संप्रज्ञ हो शरीर में सुख का अनुभव करना, जिसे 'स्मृतिमान्' और उपेक्षापूर्वक सुख से विहार करना कहा जाता है ऐसे ध्यान को प्राप्त कर विहरना चतुर्थ ध्यान है। [103]

इन चार ध्यानों का ऐसा ही वर्णन विभिन्न सुत्तों में आया है। [104] इन चार ध्यानों की भावना से 'निर्वाण' की ओर बढ़ना बताया गया है। [105] ऊपर वाले पांच संयोजन–रूपराग, अरूपराग, मान, औद्धत्य तथा अविद्या को जानने, क्षय करने, प्रहाण करने के लिए इन चार ध्यानों की भावना बताई गई है। [106] इनका महत्व सम्बोध्यंग धर्मो के समान पेय्याल कहकर वर्णित किया गया है। [107]

चार समापत्ति :– चार ध्यानों के साथ ही अधिकांशतया चार आरुप्य समापत्तियों का भी वर्णन आता है–आकाशानंचायतन, विज्ञानानंचायतन, आकिंचन्यायतन, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन। इनको चार आरुप्य समापत्तियों के अतिरिक्त संज्ञाएं भी कहा गया है। [108]

संयुत्तनिकाय के विभिन्न सुत्तों में अपर्युक्त चार समापत्तियों का वर्णन आया है। भगवान् परिनिर्वाण के पहले इन समापत्तियों में लीन हुए थे। [109] सारिपुत्त [110] मौद्गल्यायन [111] एवं महाकाश्यप [112] को भी ध्यानों एवं समापत्तियों में विहरने की बात कही गई है।

ध्यानों एवं समापत्तियों की प्राप्ति से कमशः संस्कारों का निरोध बतलाया गया है। प्रथम ध्यान प्राप्त साधक को वाणी निरुद्ध होती है। द्वितीय ध्यान प्राप्त के वितर्क और विचार निरुद्ध होते हैं। तृतीय ध्यान प्राप्त की प्रीति निरुद्ध होती है। चतुर्थ ध्यान प्राप्त के आश्वास प्रश्वास निरुद्ध होते हैं।

आकाशानंचायतन प्राप्त को रुपसंज्ञा, विज्ञानांचायतन प्राप्त को आकाशानंचायतन संज्ञा, आकिंचन्यायतन प्राप्त को विज्ञानानंचायतन संज्ञा, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन प्राप्त को आकिंचन्यायतन संज्ञा तथा संज्ञावेदयित निरोध प्राप्त साधक की संज्ञा और वेदना निरुद्ध होती है।[113]

ध्यानियों के भेद— संयुत्तनिकाय के ध्यान संयुत्त में ध्यायियों के चार–चार के कुल 55 वर्गो का उल्लेख कर ध्यायियों के भेद प्रभेद कहे गए हैं जो कुल 220 होते हैं। प्रत्येक प्रभेद में चौथे को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। जिस प्रकार गाय से दूध, दूध से दही, दही से मक्खन, मक्खन से घी, तथा घी से मण्ड अच्छा समझा जाता है, उसी प्रकार चौथे प्रकार के ध्यानो को अग्र, श्रेष्ठ, मुख्य, उत्तम, प्रवर कहा गया है।[114]

संयुत्तनिकाय की अट्ठकथा में इन ध्यानियों के ध्यानों को लौकिक ध्यानों के अनुरुप कहा गया है।[115] विभिन्न प्रकार के ध्यानी इस प्रकार बतलाये गए हैं–

1. एक ध्यानी समाधि में समाधिकुशल होता है, समाधि में समापत्तिकुशल नही।
   दूसरा समाधि में समापत्तिकुशल होता है, समाधि में समाधिकुशल नहीं।
   तीसरा न तो समाधि में समाधिकुशल होता है और न समाधि में समापत्तिकुशल।
   चौथा समाधि में समाधिकुशल होता है और समाधि में समापत्तिकुशल भी।

   इस प्रकार का वह चौथा अग्र, श्रेष्ठ, मुख्य, उत्तम और प्रवर है।

2. समाधि में समाधिकुशल होता है स्थितिकुशल नहीं।
   समाधि में स्थितिकुशल होता है, समाधिकुशल नही।
   न समाधि में समाधिकुशल होता है और न स्थितिकुशल।
   समाधि में समाधिकुशल भी होता है और स्थितिकुशल भी।

3. समाधि में समाधिकुशल होता है व्युत्थानकुशल नहीं।
   समाधि में व्युत्थानकुशल होता है, समाधिकुशल नहीं।
   न समाधि में व्युत्थानकुशल होता है और न समाधिकुशल।
   समाधि में समाधिकुशल भी होता है और व्युत्थानकुशल भी होता है।

4. समाधि में समाधिकुशल होता है, कल्यकुशल नहीं।
   समाधि में कल्यकुशल होता है, समाधिकुशल नहीं।
   न समाधि में कल्यकुशल होता है और न समाधिकुशल होता है।
   समाधि में कल्यकुशल भी होता है और समाधिकुशल भी होता है।

5. समाधि में समाधिकुशल होता है,आलम्बनकुशल नहीं।
समाधि में आलम्बनकुशल होता है।, समाधिकुशल नहीं।
न तो समाधि में आलम्बनकुशल होता है और न समाधिकुशल।
समाधि में आलम्बनकुशल भी होता है और समाधिकुशल भी।

6. समाधि में समाधिकुशल होता है, गोचरकुशल नहीं।
समाधि में गोचरकुशल होता है, समाधिकुशल नहीं।
न समाधि में समाधिकुशल होता है, और न गोचरकुशल।
समाधि में समाधिकुशल भी होता है, और गोचरकुशल भी।

7. समाधि में समाधिकुशल होता है, अभिनींहारकुशल नहीं।
समाधि में अभिनीहारकुशल होता है समाधिकुशल नहीं।
न तो अभिनीहारकुशल होता है और न समाधिकुशल।
अभिनीहारकुशल भी होता है और समाधिकुशल भी।

8. समाधि में समाधिकुशल होता है, सक्कच्चकारी नहीं।
सक्कच्चकारी होता है, समाधिकुशल नहीं।
न सक्कच्चकारी होता है और न समाधिकुशल।
समाधिकुशल भी होता है और सक्कच्चकारी भी।

9. समाधि में समाधिकुशल होता है, सातच्चकारी नहीं।
सातच्चकारी होता है, समाधिकुशल नहीं।
न समाधिकुशल होता है और न सातच्चकारी।
समाधिकुशल भी होता है और सातच्चकारी भी।

10. समाधि में समाधिकुशल होता है, सप्राप्यकारी नहीं।
सप्राप्यकारी होता है, समाधिकुशल नहीं।
न सप्राप्यकारी होता है और न समाधिकुशल।
सप्राप्यकारी भी होता है और समाधिकुशल भी।

11. समाधि में समापत्तिकुशल होता है, स्थितिकुशल नहीं।
स्थितिकुशल होता है, समापत्तिकुशल नहीं।

न समापत्तिकुशल होता है और न स्थितिकुशल।
समापत्तिकुशल भी होता है और स्थितिकुशल भी।

12. समाधि में समापत्तिकुशल होता है, व्युत्थानकुशल नहीं।
व्युत्थानकुशल होता है, समापत्तिकुशल नहीं।
न व्युत्थानकुशल होता है और न समापत्तिकुशल।
व्युत्थानकुशल भी होता है और समापत्तिकुशल भी।

13. समाधि में समापत्तिकुशल होता है, कल्यकुशल नहीं।
कल्यकुशल होता है, समापत्तिकुशल नहीं।
न कल्यकुशल होता है और न समापत्तिकुशल।
कल्यकुशल भी होता है और समापत्तिकुशल भी।

14. समाधि में समापत्तिकुशल होता है, आलम्बनकुशल नहीं।
आलम्बनकुशल होता है, समापत्तिकुशल नहीं।
न आलम्बनकुशल होता है, और न समापत्तिकुशल
आलम्बनकुशल भी होता है, और समापत्तिकुशल नहीं।

15. समाधि में समापत्तिकुशल होता है, गोचरकुशल नहीं।
गोचरकुशल होता है, समापत्तिकुशल नहीं।
न गोचरकुशल होता है और न समापत्तिकुशल।
गोचरकुशल भी होता है और समापत्तिकुशल भी।

16. समाधि में समापत्तिकुशल होता है, अभिनीहारकुशल नहीं।
अभिनीहारकुशल होता है, समापत्तिकुशल नहीं।
न अभिनीहारकुशल होता है और न समापत्तिकुशल।
अभिनीहारकुशल भी होता है और समापत्तिकुशल भी।

17. समाधि में समापत्तिकुशल होता है, सक्कच्चकारी नहीं।
सक्कच्चकारी होता है, समापत्तिकुशल नहीं।
न सक्कच्चकारी होता है और न समापत्तिकुशल।
सक्कच्चकारीकुशल भी होता है और समापत्तिकुशल भी।

18. समाधि में समापत्तिकुशल होता है, सातच्चकारी नहीं।
सातच्चकारी होता है, समापत्तिकुशल नहीं।
न सातच्चकारी होता है और न समापत्तिकुशल।
सातच्चकारी भी होता है और समापत्तिकुशल भी।

19. समाधि में समापत्तिकुशल होता है, सप्राप्यकारी नहीं।
सप्राप्यकारी होता है, समापत्तिकुशल नहीं।
न सप्राप्यकारी होता है और न समापत्तिकुशल।
सप्राप्यकारी भी होता है और समापत्तिकुशल भी होता है।

20. समाधि में स्थितिकुशल होता है, व्युत्थानकुशल नहीं।
व्युत्थानकुशल होता है, स्थितिकुशल नहीं।
न व्युत्थानकुशल होता है और न स्थितिकुशल।
व्युत्थानकुशल भी होता है और स्थितिकुशल भी।

21. समाधि में स्थितिकुशल होता है, कल्यकुशल नहीं।
कल्यकुशल होता है, स्थितिकुशल नहीं।
न कल्यकुशल होता है और न स्थितिकुशल।
कल्यकुशल भी होता है और स्थितिकुशल भी।

22. समाधि में स्थितिकुशल होता है, आलम्बनकुशल नहीं।
आलम्बनकुशल होता है, स्थितिकुशल नहीं।
न समाधि में स्थितिकुशल होता है और न आलम्बनकुशल
समाधि में आलम्बनकुशल भी होता है और स्थितिकुशल भी।

23. समाधि में स्थितिकुशल होता है, गोचरकुशल नहीं।
गोचरकुशल होता है, स्थितिकुशल नहीं।
न समाधि में स्थितिकुशल होता है, और न गोचरकुशल।
समाधि में स्थितिकुशल भी होता है, और गोचरकुशल भी।

24. समाधि में स्थितिकुशल होता है, अभिनीहारकुशल नहीं।
अभिनीहारकुशल होता है, स्थितिकुशल नहीं।

न स्थितिकुशल होता है और न अभिनीहारकुशल।
स्थितिकुशल भी होता है और अभिनीहारकुशल भी।

25. समाधि में स्थितिकुशल होता है, सक्कच्चकारी नहीं।
सक्कच्चकारी होता है, स्थितिकुशल नहीं।
न स्थितिकुशल होता है और न सक्कच्चकारी।
स्थितिकुशल भी होता है और सक्कच्चकारी भी।

26. समाधि में स्थितिकुशल होता है, सातच्चकारी नहीं।
सातच्चकारी होता है, स्थितिकुशल नहीं।
न समाधि में स्थितिकुशल होता है, और न सातच्चकारी।
समाधि में स्थितिकुशल भी होता है, सातच्चकारी भी।

27. समाधि में स्थितिकुशल होता है, सप्राप्यकारी नहीं।
सप्राप्यकारी होता है, स्थितिकुशल नहीं।
न समाधि में स्थितिकुशल होता है, और न सप्राप्यकारी।
समाधि में स्थितिकुशल भी होता है, और सप्राप्यकारी भी।

28. समाधि में व्युत्थानकुशल होता है, कल्यकुशल नहीं।
कल्यकुशल होता है व्यत्थानकुशल नहीं।
न समाधि में व्युत्थानकुशल होता है, न कल्यकुशल।
समाधि में व्युत्थानकुशल भी होता है, कल्यकुशल भी।

29. समाधि में व्युत्थानकुशल होता है, आलम्बनकुशल नहीं।
आलम्बनकुशल होता है, व्युत्थानकुशल नहीं।
न समाधि में व्युत्थानकुशल होता है, न आलम्बनकुशल।
समाधि में व्युत्थानकुशल भी होता है, और आलम्बनकुशल भी।

30. समाधि में व्युत्थानकुशल होता है, गोचरकुशल नहीं।
गोचरकुशल होता है, व्युत्थानकुशल नहीं।
न समाधि में व्युत्थानकुशल होता है, न गोचरकुशल।
समाधि में व्युत्थानकुशल भी होता है, और गोचरकुशल भी।

31. समाधि में व्युत्थानकुशल होता है, अभिनीहारकुशल नहीं।
अभिनीहारकुशल होता है, व्युत्थानकुशल नहीं।
न समाधि में व्युत्थानकुशल होता है, न अभिनीहारकुशल।
समाधि में व्युत्थानकुशल भी होता है, और अभिनीहारकुशल भी।

32. समाधि में व्युत्थानकुशल होता है, सक्कच्चकारी नहीं।
सक्कच्चकारी होता है, व्युत्थानकुशल नहीं।
न समाधि में व्युत्थानकुशल होता है, न सक्कच्चकारी।
समाधि में व्युत्थानकुशल भी होता है, सक्कच्चकारी भी।

33. समाधि में व्युत्थानकुशल होता है, सातच्चकारी नहीं।
सातच्चकारी होता है, व्युत्थानकुशल नहीं।
न समाधि में व्युत्थानकुशल होता है, न सातच्चकारी।
समाधि में व्युत्थानकुशल भी होता है, सातच्चकारी भी।

34. समाधि में व्युत्थानकुशल होता है, सप्राप्यकारी नहीं।
सप्राप्यकारी होता है, व्युत्थानकुशल नहीं।
न समाधि में व्युत्थानकुशल होता है, न सप्राप्यकारी।
समाधि में व्युत्थानकुशल भी होता है, सप्राप्यकारी भी।

35. समाधि में कल्यकुशल होता है, आलम्बनकुशल नहीं।
आलम्बनकुशल होता है, कल्यकुशल नहीं।
न कल्यकुशल होता है और न आलम्बनकुशल।
कल्यकुशल भी होता है और आलम्बनकुशल भी।

36. समाधि में कल्यकुशल होता है, गोचरकुशल नहीं।
गोचरकुशल होता है, कल्यकुशल नहीं।
न कल्यकुशल होता है, न गोचरकुशल।
कल्यकुशल भी होता है गोचरकुशल भी।

37. समाधि में कल्यकुशल होता है, अभिनीहारकुशल नहीं।
अभिनीहारकुशल होता है, कल्यकुशल नहीं।

न कल्यकुशल और न अभिनीहारकुशल।
कल्यकुशल भी होता है और अभिनीहारकुशल भी।

38. समाधि में कल्यकुशल होता है, सक्कच्चकारी नहीं।
सक्कच्चकारी होता है, कल्यकुशल नहीं।
न कल्यकुशल होता है और न सक्कच्चकारी।
कल्यकुशल भी होता है और सक्कच्चकारी भी।

39. समाधि में कल्यकुशल होता है, सातच्चकारी नहीं।
सातच्चकारी होता है कल्यकुशल नहीं।
न कल्यकुशल होता है और न सातच्चकारी।
कल्यकुशल भी होता है और सातच्चकारी भी।

40. समाधि में कल्यकुशल होता है, सप्राप्यकारी नहीं।
सप्राप्यकारी होता है, कल्यकुशल नहीं।
न कल्यकुशल होता है और न सप्राप्यकारी।
कल्यकुशल भी होता है और सप्राप्यकारी भी।

41. समाधि में आलम्बनकुशल होता है, गोचरकुशल नहीं।
गोचरकुशल होता है, आलम्बनकुशल नहीं।
न आलम्बनकुशल होता है और न गोचरकुशल।
आलम्बनकुशल भी होता है और गोचरकुशल भी।

42. समाधि में आलम्बनकुशल होता है, अभिनीहारकुशल नहीं।
अभिनीहारकुशल होता है, आलम्बनकुशल नहीं।
न अभिनीहारकुशल होता है और न आलम्बनकुशल।
अभिनीहारकुशल भी होता है और आलम्बनकुशल भी।

43. समाधि में आलम्बनकुशल होता है, सक्कच्चकारी नहीं।
सक्कच्चकारी होता है, आलम्बनकुशल नहीं।
न आलम्बनकुशल होता है और न सक्कच्चकारी।
आलम्बनकुशल भी होता है और सक्कच्चकारी।

44. समाधि में आलम्बनकुशल होता है, सातच्चकारी नहीं।
सातच्चकारी होता है, आलम्बनकुशल नहीं।
न आलम्बनकुशल होता है और न सातच्चकारी।
आलम्बनकुशल भी होता है और सातच्चकारी भी।

45. समाधि में आलम्बनकुशल होता है, सप्राप्यकारी नहीं।
सप्राप्यकारी होता हे, आलम्बनकुशल नहीं।
न सप्राप्यकारी होता है और न आलम्बनकुशल।
सप्राप्यकारी भी होता है और आलम्बनकुशल भी।

46. समाधि में गोचरकुशल होता है, अभिनीहारकुशल नहीं।
अभिनीहारकुशल होता है, गोचरकुशल नहीं।
न गोचरकुशल होता है और न अभिनीहारकुशल।
गोचरकुशल भी होता है और अभिनीहारकुशल भी।

47. समाधि में गोचरकुशल होता है, सक्कच्चकारी नहीं।
सक्कच्चकारी होता है, गोचरकुशल नहीं।
न सक्कच्चकारी होता है और न गोचरकुशल।
सक्कच्चकारी भी होता है और गोचरकुशल भी।

48. समाधि में गोचरकुशल होता है, सातच्चकारी नहीं।
सातच्चकारी होता है, गोचरकुशल नहीं।
न सातच्चकारी होता है और न गोचरकुशल।
सातच्चकारी भी होता है और गोचरकुशल भी।

49. समाधि में गोचरकुशल होता है, सप्राप्यकारी नहीं।
सप्रापयकारी होता है, गोचरकुशल नहीं।
न गोचरकुशल होता है और न सप्राप्यकारी।
गोचरकुशल भी होता है और सप्राप्यकारी भी।

50. समाधि में अभिनीहारकुशल होता है, सक्कच्चकारी नहीं।
सक्कच्चकारी होता है, अभिनीहारकुशल नहीं।

न अभिनीहारकुशल होता है न सक्कच्चकारी।
अभिनीहारकुशल भी होता है और सक्कच्चकारी भी।

51. समाधि में अभिनीहारकुशल होता है, सातच्चकारी नहीं।
सातच्चकारी होता है अभिनीहारकुशल नहीं।
न अभिनीहारकुशल होता है और न सातच्चकारी।
अभिनीहारकुशल भी होता है और सातच्चकारी भी।

52. समाधि में अभिनीहारकुशल होता है, सप्राप्यकारी नहीं।
सप्राप्यकारी होता है अभिनीहारकुशल नहीं।
न अभिनीहारकुशल होता है न सप्राप्यकारी।
अभिनीहारकुशल भी होता है और सप्राप्यकारी भी।

53. समाधि में सक्कच्चकारी होता है, सातच्चकारी नहीं।
सातच्चकारी होता है सक्कच्चकारी नहीं।
न सक्कच्चकारी होता है और न सातच्चकारी।
सक्कच्चकारी भी होता है और न सातच्चकारी भी।

54. समाधि में सक्कच्चकारी होता है, सप्राप्यकानरी नहीं।
सप्राप्यकारी होता है सक्कच्चकारी नहीं।
न सक्कच्चकारी होता है और न सप्राप्यकारी।
सक्कच्चकारी भी होता है और सप्राप्यकारी भी।

55. समाधि में सातच्चकारी होता है सप्राप्यकारी नहीं।
सप्राप्यकारी होता है सातच्चकारी नहीं।
न सातच्चकारी होता है और न सप्राप्यकारी।
सातच्चकारी भी होता है और सप्राप्यकारी भी।

इस प्रकार ध्यानियों के 55 प्रकार से चार–चार भेद कुल 220 भेद होते हैं। ये भेद समाधि में कुशलताओं के आधार पर वर्णित किए गए हैं। एक कुशलता का दूसरी कुशलता से चार प्रकार का सम्बन्ध बतलाया गया है। इस प्रकार कुल कुशलताएं ग्यारह हैं जिनको 220 प्रकार से वर्णित किया गया है।

1.	1–10	समाधिकुशल	1–10	10x4 = 40
2.	11–19	समापत्तिकुशल	2–11	9x4 = 36

3.	20–27	स्थितिकुशल	3–11	8x4 = 32
4.	28–34	व्युत्थानकुशल	4–11	7x4 = 28
5.	35–40	कल्यकुशल	5–11	6x4 = 24
6.	41–45	आलम्बनकुशल	6–11	5x4 = 20
7.	46–49	गोचरकुशल	7–11	4x4 = 16
8.	50–52	अभिनीहारकुशल	8–11	3x4 = 12
9.	53–54	सक्कच्चकारीकुशल	9–11	2x4 = 8
10.	55	सातच्चकारीकुशल	10–11	1x4 = 4
11.	–	सप्राप्यकारीकुशल	–	– = –
				कुल =220

प्रज्ञा :–

यथार्थज्ञान और विपश्यना ज्ञान को प्रज्ञा कहा जाता है। [116] संयुत्तनिकाय में निर्वेद वैराग्य आदि को धर्म स्वरूप देखना यथार्थज्ञान बतलाया गया है। अत साधक भूतमिदं–यह बीत गया इसको, आहार के हेतु और निरोध को सम्यक् प्रज्ञा से देखता है तो वह यथार्थ ज्ञान कहलाता है। [117]

प्रज्ञा की प्राप्ति, वृद्धि एवं विपुलता स्रोतापन्न होने से बतलाई गई है। [118] आलवकसुत्त में कहा गया है कि अर्हत् और धर्म में श्रद्धा रखने एवं उनको सुश्रूषा करने से अप्रमत्त और विचक्षण पुरुष निर्वाण की प्राप्ति के लिए प्रज्ञा का लाभ करता है। [119]

स्रोतापत्ति सुयंत्त में स्रोतापन्न से प्रज्ञा की प्राप्ति बतलाते हुए प्रज्ञा के विभिन्न प्रकार भी बतलाये गए हैं, जो इस प्रकार हैं– महाप्रज्ञा, पृथुलप्रज्ञा, विपुलप्रज्ञा, गम्भीरप्रज्ञा, अप्रमत्तप्रज्ञा, भूरिप्रज्ञा, प्रज्ञा बाहुल्य, शीघ्रप्रज्ञा, लघुप्रज्ञा, प्रसन्नप्रज्ञा, तीव्रप्रज्ञा, तीक्ष्णप्रज्ञा, निर्वेधिकप्रज्ञा। [120] प्रज्ञा का महत्व बतलाते हुए इसे मनुष्यों का रत्न बतलाया गया है। [121] और कहा है कि प्रज्ञा के समान कोई प्रकाश नहीं है। [122] बहुत पहले लोगों ने निर्वाण की प्राप्ति प्रज्ञा के बल पर की थी। [123]

धर्म का महत्त्व :–

बौद्ध धार्मिक परम्परा में 'त्रिशरण' को महत्त्व दिया जाता है। इसमें द्वितीय शरण के रूप में 'धर्म' को शरण स्वीकार करनी होती है। एक भिक्षु द्वारा भगवान् के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हुए भगवान् के अदर्शन से शोक बतलाया तो भगवान् ने कहा– इस गन्दे शरीर के दर्शन से क्या? जो धर्म को देखता है वह भगवान् को देखता है।[124]

बुद्धत्व प्राप्ति के पश्चात् भगवान् ने जब विचरने के लिए किसी के प्रति गौरव मानकर विहरना आवश्यक समझा। गौरव के भाव से अपने से श्रेष्ठ किसी को

न पाकर 'धर्म' के प्रति गौरव कर विचरने का निश्चय किया। जिसका समर्थन सहम्मपति ब्रह्मा ने किया और बताया कि पूर्व के सभी बुद्ध भी इसी प्रकार 'धर्म' के प्रति गौरवशाली होकर विहरते थे।[125]

भगवान् ने कहा था कि अपना आधार आप बनो, किसी दूसरे का शरणागत मत बनो, धर्म ही तुम्हारा आधार है, शरण है, दूसरा नहीं।[126]

ब्रह्मयाचना सुत्त में भगवान् को बोधि के समय प्राप्त हुए धर्म का गम्भीर, दुर्दर्शनीय, दुरनुबोध, शान्त, प्रर्णीत, अतर्कावचर, निपुण एवं पण्डितों के जानने योग्य कहा गया है।[127] दूसरे प्रसंग में 'धर्म' का आदिकल्याणकारी, मध्यमकल्याणकारी, अन्त में कल्याणकारी, श्रेष्ठ, पूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्म को प्रकाशित करने वाला कहा है।[128] जरामरण सुत्त में सज्जनों के धर्म को अजर, अमर[129] एवं सोसुपचाला सुत्त में भगवान् बुद्ध के धर्म को सम्प्रदाय के बाहर की चीज बतलाई है।[130]

धर्म के सम्बन्ध में प्रसिद्ध 'कीर्तिशब्द' में कहा गया है कि –भगवान् का ध र्म स्वाक्ख्यात– अच्छी तरह कहा गया, सांदृष्टिक–देखते ही देखते फल देने वाला अकालिक–बिना देरी के सफल होने वाल, एहिपस्सिक–यहीं देखा–अजमाया जा सकता है, ओपनयिक–परम पद तक ले जाने वाला, विञ्ञूहि वेदितब्बो– विज्ञों द्वारा अनुभव किए जा सकने वाला है।[131]

संदर्भ–विवरण

1. "सच्चं वे अमता वाचा, एस धम्मो सनन्तनो।" संयुत्त 1, पृ. 189
2. "सच्चं धम्मो संयमो ब्रह्मचरियं, मज्झे सिता ब्राह्मण ब्रह्पत्ति।
   स तुज्जुभूतेसु नमो करोहि, तमहं नरं धम्मसारी ति ब्रूमि" ति।। संयुत्त. 1, पृ. 169
3. वही, 5, पृ. 291
4. "तीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु दिट्ठेव धम्मे सुखसोमनस्सबहुलो विहरति, योनि चस्स अनद्धा होति आसवानं ख्याय। कतमेहि तीति 9 इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो होति, भोजने मत्तंञूनजागरियं अनुयुत्तो।
   वही, 4, पृ. 159
5. वही, 5, पृ. 300
6. "अप्पमादो खो, महाराज, एको धम्मों, यो उभो अत्थे समधिगयह तिट्ठति–दिट्ठधम्मिकं चेव अत्थं सम्परायिकं चा ति। वही, 1, पृ. 85
7. "नामं सब्बं अद्धभवि, नामा भिय्यो न विज्जति।
   नामस्स एकधम्मस्स, सब्बेव वसमन्वगू" ति।। संयुत्त. 1, पृ. 36
8. वही, पृ. 37
9. वही, पृ. 39
10. "यस्सेते चतुरो धम्मा, सद्धस्स घरमेसिनो।
    सच्चं धम्मो धिति चागो, स वे पेच्च न सोचति।। वही, 1, पृ. 216
11. "वाचं मनं च पणिधाय सम्मा,

कायेन पापानि अकुब्बमानो।
बव्हन्नपानं थरभावन्तो,
सद्धो मुदू संविभागी वदंजू।
एतेसु धम्मेसु ठितो चतूसु,
धम्मे ठितो परलोकं न भाये''ति।। संयुत्त. 1, पृ. 40

12. वही, 3, पृ. 412

13. वही, पृ. 32

14. द्वेमे, भिक्खवे, अन्ता पब्बजितेन न सेवितब्बा। कतमे द्वे? यो चायं कामेसु कामसुखल्लिकानुयोगो हीनो गम्मो पोथुज्जनिको अनरियो अनत्थसंहितो, यो चायं अत्तकिलमथानुयोगो दुक्खो अनरियो अनत्थसंहितो। एते खो, भिक्खवे, उभो अन्ते अनुपगम्म मज्झिमा पटिपदा तथागतेन अभिसम्बुद्धा चक्खुकरणी ञाणकरणी उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय संवुत्तति।
संयुत्त. 5, पृ. 360

15. ''मुत्तो वतम्हि ताय दुक्करकारिकाय। साधु मुत्तो वतम्हि ताय अनत्थसंहिताय दुक्करकारिकाय। साधु वतम्हि मुत्तो बोधिं समज्झगं'' ति। वही, 1, पृ. 103

16. ''सारत्ता कामभोगेसु, गिद्धा कामेसु मुच्छिता।
अतिसारं न बुज्झन्ति, मिगा कूटं व ओड्डितं।
पच्छासं कटुकं होति, विपाको हिस्स पापको''ति। संयुत्त. 1, पृ. 73

17. वही, 4, पृ. 291–299

18. संयुत्त. 1, पृ. 3

19. ''चिरस्सं वत पस्सामि, ब्राह्मणं परिनिब्बुतं।
अप्पतिट्ठं अनायूहं, तिण्णं लोके विसत्तिकं''ति।। वही, पृ 3

20. विशुद्धिमार्ग (हिन्दी) भाग 2, पृ. 267

21. ''बुद्धसेव असम्भिन्ना होन्तेते बोधिपक्खिया।
कोट्ठासतो सत्तविधा सत्ततिंस पभेदतो।।
सकिच्च निष्फादनतो सरूपेन च वुत्तितो।
सब्बे व अरियमग्गस्स सम्भवे सम्भवन्ति ते।। वही, पृ. 269

22. मज्झिम. 3, पृ. 38

23. दीघ. 2, पृ. 94

24. ''विचयसो देसितो, भिक्खवे, मया धम्मो, विचयसो देसिता चत्तारो सतिपट्ठाना, विचयसो देसिता चत्तारो सम्मप्पधाना, विचयसो देसितानि पंच बलानि, विचयसो देसिता चत्तबोज्झंगा, विचयसो देसितो अरियो अट्ठगिको मग्गो। एवं विचयसो देसितो, भिक्खवे, मया धम्मो।
संयुत्त. 3, पृ. 320

25. वही, 5, पृ. 158

26. संयुत्त. 5, पृ. 123

27. वही, पृ. 159

28. वही, पृ. 124

29. वही, पृ. 128

30. संयुत्त. 5, पृ. 145

31. वही, पृ. 126

32. वही, पृ. 132
33. वही पृ. 147
34. वही, पृ. 251–261
35. संयुत्त. 5, पृ. 265–290
36. वही, पृ. 284
37. वही, 5, पृ. 211
38. विशुद्धि मार्ग (हिन्दी)भाग–2, पृ. 267
39 संयुत्त. 5, पृ. 211–213
40. यो सो, भिक्खवे, मग्गो या पटिपदा इद्धिलाभाय इद्धिपटिलाभाय संवत्तति अयं वुच्चति, भिक्खवे, इद्धिपादो। संयुत्त. 5, पृ. 236
41. विशुद्धिमार्ग (हिन्दी) भाग 2, पृ. 267
42. संयुत्त. 5, पृ. 229
43. वही, 5, पृ. 225–230
44. संयुत्त. 5, पृ. 237–240
45. वही, 2, पृ. 132
46. वही, 5, पृ. 232
47. वही, 2, पृ.
48. संयुत्त. 5, पृ. 225–228
49. वही, 5, पृ. 167, 214
50. विशुद्धिमार्ग (हिन्दी) भाग–2, पृ. 268
51. संयुत्त. 5, पृ. 190
52. वही, पृ. 169
53. संयुत्त. 5, पृ. 170
54. "बोधाय संवत्तन्तन्ति खो, भिक्खू, तस्मा 'बोज्झंगा' ति वुच्चन्ति।" वही, 5, पृ. 68
55. वही, पृ. 78
56. वही, पृ. 96
57. संयुत्त. 5, पृ. 61
58. वही, पृ. 100
59. संयुत्त. 5, पृ. 107
60. वही, पृ. 103–107
61. वही, पृ. 113–116
62. वही, पृ. 111
63. संयुत्त. 5, पृ. 90
64. वही, पृ. 67
65. वही, पृ. 95–103
66. वही, पृ. 3–60
67. संयुत्त. 5, पृ. 3
68. "यस्स सद्धा च पञ्ञा च, धम्मा युत्ता सदा धुरं।
हिरी ईसा मनो योत्तं, सति आरक्खसारथिं।।

"रथो सीलपरिक्खारो, झानक्खो चक्कवीरियो।
उपेक्खा धुरसमाधि, अनिच्छा परिवारणं।।
अब्यापादो अविहिंसा, विवेको यस्स आवुधं।
तितिक्खा चम्मसन्नाहो, योगक्खेमाय वत्तति।।
"एतदत्तनि सम्भूतं, ब्रह्मयानं अनुत्तरं।
नियन्ति धीरा लोकम्हा, अ दत्थु जयं जयं" ति।। वही, पृ 7

69. वही, पृ. 9—11
70. संयुत्त 5, पृ 22
71. वही, पृ. 41—44
72. वही, पृ. 44—53
73. सयुंत्त. 5, पृ. 53—57
74. वही, पृ. 57—60
75. वही, पृ. 14, 72, 203
76. वही, पृ. 14, 72, 204
77. वही, पृ. 235
78. वही, पृ. 167, 178
79. वही, पृ. 362
80. संयुत्त. 5, पृ. 24
81. वही, पृ. 66
82. वही, पृ. 9
83. वही, पृ. 14
84. वही, पृ. 150
85. वही, पृ. 22, 178
86. अभिधर्म देशना, पृ. 75
87. संयुत्त. 1, पृ. 14, 165
88. संयुत्त. 1, पृ. 14, 165
89. "धम्मो रहदो ब्राह्मण सीलतित्थो, अनाविलो सब्भि सतं पसत्थो।
यत्थ हवे वंदगुनो सिनाता, अनल्लगत्ता व तरन्ति पारं" ति।। वही, 1, पृ. 183
90. संयुत्त. 5, पृ. 26
91. वही, पृ. 300—303
92. संयुत्त. 5, पृ. 44—53
93. वही, पृ. 291
94. वही, पृ. 352
95. सच्च—संगहो, पृ. 100
96. संयुत्त. 5, पृ. 355
97. संयुत्त 3, पृ 344
98. वही, पृ 27
99. वही, 5 पृ. 312, 13, 15
100. 'इध भिक्खु सब्बनिमित्तानं अमनसिकारा अनिमित्तं चेतोसमाधिं उपसम्पज्ज विहरति। अयं

वुच्चति अनिमित्तो चेतो समाधी'ति। वही, 4, पृ. 240

101. संयुत्त. 5, पृ. 10–11
102. वही, 2, पृ. 227
103. वही, पृ. 10–11
104. वही, पृ. 262, भाग 4, पृ. 235–240, भाग 2, पृ. 176
105. वही, 5, पृ. 262
106. संयुत्त. 5, पृ. 262
107. वही, पृ. 262–264
108. वही, 4, पृ. 193
109. वही, 1, पृ. 158
110. वही, 3, पृ. 452
111. वही, पृ. 89
112. वही, 2, पृ. 176–180
113. संयुत्त. 4, पृ. 193
114. वही, 3, पृ. 478–488
115. सारत्थपकासिनी, भाग 2, पृ. 353
116. द्रष्टव्य– वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता सूत्र (लालमणि जोशी) (भूमिका) पृ. 6–10
117. संयुत्त. 2, पृ. 41
118. वही, पृ. 352
119. सद्दहानो अरहतं, धम्मं निब्बानपत्तिया।
सुस्सूसं लभते पञ्ञं, अप्पमत्तो विचक्खणो।। वही, 1, पृ. 216
120. वही 5, पृ. 352
121. 'पञ्ञानरानं रतनं'– वही 1, पृ. 34
122. 'नत्थि पञ्ञासमा आभा'– वही, पृ. 8
123. 'पुब्बे च हि पुब्बतरे च सन्तो, निब्बानमेवज्झगमुंसपञ्ञा ति।' वही, पृ. 21
124. "अलं, वक्कलि, किं ते इमिना पूतिकायेन दिट्ठेन? यो खो, वक्कलि,
धम्मं पस्सति सो मं पस्सति, यो मं पस्सति सो धम्मं पस्सति।
धम्मं हि, वक्कलि, पस्सन्तो मं पस्सति, मं पस्सन्तो धम्मं पस्सति। संयुत्त. 3, पृ. 341
125. वही, 1, पृ. 139
126. "अत्तदीपानं, भिक्खवे, विहरथ अत्तसरणा अनञ्ञसरणा, धम्मदीपा धम्मसरणा अनञ्ञसरणा।"
वही, 3, पृ. 274
127. अधिगतो खो म्यायं धम्मो गम्भीरो दुद्दसो दुरनुबोधो सन्तो पणीतो अतक्कावचरो निपुणो पण्डितवेदनीयो। संयुत्त. 1, पृ. 137
128. समणो दायी धम्मं देसेति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं,
सात्थं सब्यंजनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेती'ति। वही, 4, पृ. 111
129. जीरन्ति वे राजरथा सुचित्ता, अथो सरीरं पि जरं उपेति।
सतं च धम्मो न जरं उपेति, सन्तो हवे सब्भि पवेदयन्ती'ति।। वही, 1, पृ. 70
130. वही, पृ. 134
131. स्वाक्खातो भगवता धम्मो सन्दिट्ठिको अकालिको एहिपस्सिको ओपनेयियको पच्चत्तं वेदितब्बो तिञ्ञही'ति। वही, 5, पृ. 291

चतुर्थ परिच्छेद

दर्शन

वर्तमान में दर्शन विकास की उच्च भूमिका पर पहुंच गया है। तर्क, प्रमाण आदि से प्रत्येक विषय या तत्त्व का खण्डन–मण्डन की पद्धति से विवेचन होता है। भगवान् बुद्ध के अनुयायियों ने भी विविध प्रकार से उनके सिद्धांतों को प्रस्तुत किया है।

संयुक्तनिकाय में भगवान् बुद्ध का दर्शन अतीव सुलझे रूप में प्रतिपादित है, जिसे एक सामान्य जिज्ञासु भी सरलता से समझ सकता है, उसे उच्चकोटि का तार्किक या पंडित होना आवश्यक नहीं है। भगवान् ने अपनी प्रस्थापनाएं पाण्डित्य से ऊँचे उठकर मध्यम मार्ग अपना कर की हैं।

भगवान् ने धर्म और दर्शन दोनों को मध्यम मार्ग के रूप में उचित बतलाया है। आचरण के क्षेत्र में दो अन्तों–कामसुख एवं कठोर तपस्या के साथ आर्य अष्टांगिक मार्ग के रूप में मध्यम मार्ग के सेवन की शिक्षा दी है। विचार के क्षेत्र में दो दृष्टियों–शाश्वतवाद एवं उच्छेदवाद के त्याग के साथ प्रतीत्यसमुत्पाद के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया।

भगवान् बुद्ध का दर्शन सम्यक्दृष्टि मूलक था। यहां सम्यक्दृष्टि से तात्पर्य यथार्थ ज्ञान से है, इसमें हम भगवान् बुद्ध के दर्शन को पाते हैं। यह उनका यथार्थज्ञान चार आर्यसत्यों के रूप में था, जिसमें धर्म–दर्शन सभी प्रत्ययों का समावेश हो जाता है।

इस परिच्छेद में सामान्यतया विचार क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जा रहा है।

सम्यक्दृष्टि

सम्यक्दृष्टि का क्षेत्र विस्तृत है। बुद्ध शिक्षा को यथार्थ धारण करना सम्यक् दृष्टि है। इसकी व्याख्या भदन्त आनन्द कौशल्यायन ने इस प्रकार की है– दुराचरण को दुराचरण समझना। सदाचरण को सदाचरण समझना। लोभ, मोह, द्वेष का दुराचरण का मूल कारण समझना। अलोभ, अमोह, अद्वेष को सदाचरण का मूल कारण समझना। चार आर्य सत्यों को समझना। दस संयोजनों से मुक्त होने का प्रयास करना। आत्मा को लेकर किसी दृष्टि में नहीं लगना। किसी भी दृष्टि से नहीं चिपटना। प्रतीत्यसमुत्पाद को यथार्थ रूप में समझना सम्यक् दृष्टि है।[1]

संयुत्तनिकाय में चार आर्यसत्यों के ज्ञान [2] , प्रतीत्यसमुत्पाद के ज्ञान [3] , को सम्यक् दृष्टि कहा गया है। चक्षु, श्रोत, घ्राण, जिह्वा, काय और मन को अनित्य देखने से तथा रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श और धर्म को भी अनित्य देखने से[4] सम्यक्दृष्टि

वाला बतलाया गया है।

संसार के सम्बन्ध में अस्तित्व एवं नास्तित्व की अविद्या को दो अन्त कहा गया है। संसार के समुदय का यथार्थ ज्ञान करने से, लोक की नास्तित्व और अस्तित्व बुद्धि मिट जाती है। यह संसार आसक्ति और ममत्व के मोह में है। जब उसकी तृष्णा, आसक्ति, ममत्व, मोह समाप्त हो जाता है, वह समझ लेता है कि दुःख ही उत्पन्न होता, निरुद्ध होता है, उसे किसी प्रकार का संशय नहीं रहता, भीतर वास्तव में ज्ञान हो जाता है तब सम्यक्दृष्टि कहा जाता है। [5]

चार आर्यसत्य :-

भगवान् बुद्ध की शिक्षा में चार आर्यसत्यों का प्रमुख स्थान है। भगवान् ने अपने प्रथम उपदेश में इनका उपदेश दिया था।

संयुत्तनिकाय में चार आर्य सत्यों से सम्बन्धित विस्तृत विवरण मिलता है। सच्चसंयुत्त में 137 सुत्त हैं, जो आर्यसत्यों से सम्बन्धित सूक्ष्म जानकारी देते हैं। [6]

चार आर्यसत्यों में चार सिद्धांतों का प्रतिपादन किया जाता है- दुःख आर्यसत्य, दुःख समुदाय आर्य सत्य, दुःख निरोध आर्य सत्य तथा दुःखनिरोधगामी मार्ग आर्य सत्य। इनके नामकरण पर प्रकाश डालते हुए भगवान् ने बतलाया था कि ये चार आर्यसत्य तथ्य हैं, अवितथ हैं, हूबहू वैसे ही है, इसलिए आर्यसत्य कहे जाते हैं। [7] दूसरे सुत्त में बतलाया गया है कि-देव, मार, ब्रह्मा सहित इस लोक में, श्रमण ब्राह्मणों सहित प्रजा में, देव तथा मनुष्यों में तथागत ही आर्य (श्रेष्ठ) हैं, इसलिए उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत आर्यसत्य कहे जाते हैं। [8] तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध के उत्पन्न होने से ही चार आर्यसत्यों की चर्चा, शिक्षा, सिद्धि होने लगती है। [9] जिस प्रकार चांद या सूरज के उगने के बिना अंधकार दूर नहीं होता है एवं प्रकाश नहीं आता है, उसी प्रकार तथागत के बिना चार आर्यसत्यों को शिक्षा नहीं होती, तथागत के होने से ही होती है।

भगवान् बुद्ध ने अपने अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध कहे जाने के कारण इन्हीं चार आर्यसत्यों का यथार्थ ज्ञान बतलाया है तथा अतीतकाल के बुद्धों एवं अनागत के बुद्धों को भी चार आर्यसत्यों के अवबोध से अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध बतलाया है। [10]

पूर्वजन्मों में चार आर्यसत्यों के ज्ञान न होने से भगवान् को अपनी पूर्वावस्था एवं इस जन्म में पड़े रहना पड़ा। चार आर्यसत्यों के ज्ञान के बाद भगवान् कहते हैं कि- अब उनकी तृष्णा नष्ट कर दी गई है। दुःखों की जड़ कट गई है। अब पुनर्जन्म नहीं होगा। [11]

चार आर्यसत्यों की व्याख्या भगवान् ने धर्मचकप्रवर्तन सुत्त में की थी, जिसका वर्णन महावग्ग (विनयपिटक) के समान ही संयुत्तनिकाय में मिलता है। इसमें चार आर्यसत्यों को तिहरा अर्थात् बारह प्रकार से साक्षात्कार किया बताया गया है।[12]

दुःख आर्यसत्य – जाति, जरा, व्याधि, मरण, अप्रियों का संयोग एवं प्रियों का विप्रयोग दुःख है, इच्छित वस्तु का न मिलना भी दुःख है। संक्षेप में कहा जाय तो पांच उपादन स्कन्ध दुःख आर्य सत्य हैं।

दुःखसमुदय आर्यसत्य– पुनः–पुनः जन्म होने वाली, उन–उन विषयों में अभिनन्दन करने वाली नन्दीराग सहगत तृष्णा–कामतृष्णा, भवतृष्णा, विभवतृष्णा, दुःखसमुदय आर्यसत्य है।

दुःखनिरोध आर्यसत्य– तृष्णा का पूर्णतया विराग, निरोध, त्याग, प्रतिनिःसर्ग, मुक्ति अनालय होना दुःखनिरोध आर्यसत्य है।

दुःखनिरोधगामि मार्ग आर्यसत्य– आर्य अष्टांगिक मार्ग– सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्म, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति एवं सम्यक् समाधि दुःख निरोधगामि मार्ग आर्य सत्य है।

इन चार आर्यसत्यों को तिहरे प्रकार से वर्णित करने के कारण बारह प्रकार का बतलाया गया है।

1. (क) यह दुःख आर्यसत्य है, (ख) यह दुःख आर्यसत्य परिज्ञेय है, (ग) यह भगवान् के द्वारा परिज्ञात कर लिया गया है।
2. (क) यह दुःखसमुदय आर्यसत्य है, (ख) यह प्रहातव्य है, (ग) भगवान् के द्वारा प्रहाण कर दिया गया है।
3. (क) यह दुःख निरोध आर्यसत्य है, (ख) यह साक्षात्कार करने योग्य है, (ग) भगवान् के द्वारा साक्षात्कार कर लिया गया है।
4. (क) यह निरोधगामी मार्ग आर्यसत्य है, (ख) यह भावना करने योग्य है, (ग) भगवान् के द्वारा भावित हो गया है।

इस प्रकार भगवान् को चार आर्यसत्यों का तिहरा ज्ञान हुआ। पहले न सुने गए धर्मो में चक्षु उत्पन्न हुआ, ज्ञान उत्पन्न हुआ, प्रज्ञा उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ बतलाया है। बारह प्रकार के ज्ञान के बाद भगवान् ने अपने लिए अनुत्तर सम्यक् सम्बुद्ध घोषित किया कि– उनका चित्त विमुक्त हो गया है, यह अन्तिम जन्म है, अब पुनर्जन्म नहीं होगा।[13] चार आर्यसत्यों को यथार्थ धारण करने की शिक्षा देते समय प्रथम को प्रथम, द्वितीय को द्वितीय, तृतीय को तृतीय एवं चतुर्थ को चतुर्थ धारण करने की सलाह दी है एवं उसे यथार्थ धारण करना बतलाया है।[14] भगवान् ने आर्यसत्यों को ज्ञान के लिए सम्यक्दृष्टि को उसका पूर्वलक्षण उसी प्रकार बतलाया था जिस प्रकार सूर्योदय के पहले से पूर्व लालिमा होती है।[15] इसके यथार्थज्ञान के लिए समाधि के अभ्यास[16] एवं आत्म चिन्तन[17] की सलाह दी थी। चेलसुत्त में कहा गया है कि– चार आर्यसत्यों के जानने के लिए छन्द, व्यायाम, उत्साह, तत्परता और स्मृति बनाये रखना चाहिए।[18]

भगवान् ने चार आर्यसत्यों के अज्ञान को सबसे बड़ा अन्धकार [19] एवं सबसे बड़ा प्रपात [20] बतलाया था, जिससे मुक्त होना सम्भव नहीं होता। दुःख की विशालता बतलाते हुए कहा था कि लिच्छिवियों द्वारा छेदे जाने वाले बाण से भी सौ भाग छोटा छिद्र छोड़ना आसान है, लेकिन दुःख का भेदना आसान नहीं है। [21] इसके अतिरिक्त दुःख की विशालता दर्शाने वाले अनेक सुत्त हैं। [22]

भगवान् ने कहा था कि चार आर्यसत्यों के ज्ञान के बदले यदि सौ भालों से भी छिदना पड़े तो उसे ज्ञान के बदले में स्वीकार कर लेना चाहिए। [23] काम, व्यापाद, विहिंसा, वितर्को, पापमय अकुशल वितर्को, विग्रह की बातों एवं तिरश्चीन कथाओं के त्याग की बात कही थी। क्योंकि ये अर्थ सिद्ध करने, ब्रह्मचर्य, निर्वेद, विराग, उपशम सम्बोधि एवं निर्वाण के लिए नहीं है।[24]

चार आर्यसत्यों की विशेषता बतलाते हुए कहा गया है कि जो एक आर्यसत्य को धारण करता है वह सभी आर्यसत्यों को धारण करता है। [25]

चार आर्यसत्यों के देखने और जानने से आस्रवों का क्षय [26] अपाय से मुक्ति [27] एवं दुःख का क्षय होता है। [28] इनके ज्ञान से लोहे के खम्भे के समान स्थिरता आती है। [29] चार आर्यसत्यों के यथार्थ जानने से ही श्रमण ब्राह्मण कहलाने के अधिकारी होते हैं। [30] तथा इनके ज्ञान के बाद चर्चा करने में समर्थ होते हैं। [31] भगवान् ने एवं अतीत के बुद्धों ने अपने अर्हत् सम्यक् सम्बुद्धत्व का दावा चार आर्यसत्यों के ज्ञान के बाद किया तथा सभी अनागत के बुद्धों के लिए चार आर्यसत्यों का ज्ञान अनिवार्य बतलाया गया है। [32]

भगवान् ने प्राणियों को विभिन्न प्रकार से चार आर्यसत्यों की शिक्षा दी थी तथा कहा था कि अपने मित्रों को भी आर्यसत्यों की शिक्षा देनी चाहिए। [33]

प्रतीत्यसमुत्पाद :–

भगवान् बुद्ध ने अपने यथार्थ दर्शन के रूप में प्रतीत्यसमुत्पाद का प्रतिपादन किया था। भगवान् ने अनुभव किया था कि यह प्रजा तृष्णा के कारण संसार में भ्रमित हो रही है और दुःखी है। इसके कारणभूत तृष्णा को रोक दिया जाय तो यह चक्कर रुक सकता है। इस बात का ज्ञान प्रजा को नहीं है। इसे भगवान् ने अविद्या कहा।

अविद्या के कारण ही प्रजा भ्रमित हो रही है, उसके सारे दुःख समूह उठ खड़े होते हैं, यदि इसको जान लिया जाय तो सारे दुःख समूहों को जाना जा सकता है। इसलिए भगवान् ने अपने दर्शन में दो बातों की प्रमुखता दी–दुःख का कारण एवं उसका निरोध।

दुःख के सम्बन्ध में भगवान् से विभिन्न प्रकार से प्रश्न पूछे जाते थे। क्या दुःख स्वयं अपना किया होता है? दूसरे का किया होता है? क्या स्वयं और दूसरे का

किया होता है? क्या अकारण होता है? भगवान् ने इन सभी प्रश्नों को गलत बतलाया एवं पूछे जाने पर कि क्या दुःख है ही नहीं? भगवान् ने कहा– दुःख है, लेकिन भगवान् दो अन्तों को छोड़ मध्यम प्रकार से बतलाते हैं। उन्होंने कहा कि अविद्या से संस्कार–विज्ञान– नामरूप–षडायतन–स्पर्श–वेदना–तृष्णा–उपादान–भव–जाति–जरामरण शोक परिदेव दुःख दौर्मनस्य उत्पन्न होते हैं। अविद्या के मिट जाने से सारे दुःख समूह रुक जाते हैं। [34]

इस प्रकार भगवान् ने अपने को एवं अपने दर्शन को विभिन्न प्रश्नों में न उलझा कर अपने परम उद्देश्य दुःख समूह के रोकने में लगाया। इसके लिए उन्होंने दुःख को प्रतीत्यसमुत्पन्न बतलाया [35] एवं प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। जो अंग हेतु है वह प्रतीत्यसमुत्पाद है तथा जो अंग फल है, वह प्रतीत्यमुत्पन्न है। [36] इन दोनों में कोई विशेष अन्तर नहीं है क्योंकि सभी धर्म प्रतीत्यसमुत्पाद और प्रतीत्यसमुत्पन्न हैं। [37]

संयुत्तनिकाय में प्रतीत्यमुत्पाद का विस्तृत विरण मिलता है इसके निदान वग्ग में प्रतीत्यमुत्पाद के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया गया है। त्रिपिटक के दीघनिकाय के महानिदान सुत्त, मज्झिमनिकाय के महातण्हासंखय सुत्त, चूलसिंहनाद सुत्त एवं महाहत्तिथपदापम सुत्त में उदान के बोधिवग्ग में एवं पट्ठान में उसकी विस्तृत रूप से जानकारी मिलती है। साथ ही मिलिन्द प्रश्न एवं आचार्य बुद्धघोष के विसुद्धिमग्ग में भी इसका विवेचन किया गया है। त्रिपिटक में संयुत्तनिकाय का महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि प्राचीन माने जाने वाले ग्रन्थों में प्रतीत्यसमुत्पाद का सबसे अधिक विस्तृत परिचय इसी में मिलता है।

अर्थ– प्रतीत्यसमुत्पाद एक निश्चित सिद्धान्त को प्रतिपादित करने वाला शब्द है, जिसमें 12 प्रत्ययों का अनुलोम एवं प्रतिलोम की पद्धति से वर्णन समाहित है।

प्रतीत्यसमुत्पाद की व्याख्या या अर्थ करना कितना दुष्कर है, इसका आभास आचार्य बुद्धघोष को भी हुआ था और उन्होंने कहा था कि– इसका अर्थ करना अत्यन्त दुष्कर है, क्योंकि सूत्रों की अवहेलना हो सकती है। [38]

प्रतीत्यसमुत्पाद में दो शब्द हैं– प्रतीत्य एवं समुत्पाद। प्रतीत्य (प्रति इण् गतौ ल्यप्) का अर्थ है प्राप्त कर एवं समुत्पाद में पद धातु सत्तार्थक है। सम्+उत् उपसर्ग पूर्वक इसका अर्थ प्रादुर्भाव है, जिसका भाव–उत्पन्न करता है। अर्थात् एक वस्तु के होने पर दूसरे को उत्पन्न करना। एक दूसरे के प्रत्यय से उत्पत्ति का सिद्धान्त। [39]

विसुद्धिमग्ग में कहा गया है कि यह हेतु समूह इससे प्रतिमुख है, इसलिए प्रतीत्य कहा गया है एवं साथ में रहने वाले धर्मो को उत्पन्न करता है, इसलिए यह समुत्पाद कहलाता है। [40] संयुत्तनिकाय में भी प्रतीत्यसमुत्पाद का अर्थ 'हेतु' से है। न

यह स्वयं का बनाया हुआ है न दूसरे का। बल्कि एक दूसरे के प्रत्यय से होता है। जैसे दो नलकलाप एक दूसरे पर टिके रहते हैं उसी प्रकार इसके प्रत्यय एक दूसरे के हेतुओं के कारण से हैं।[41]

व्याख्या– भगवान् ने प्रतीत्यसमुत्पाद की व्याख्या करते हुए इसमें बारह अंगों का प्रतिपादन किया था। जिसमें दुःख समुदय एवं दुःखनिरोध की व्याख्या की थी,[42] जिसे अनुलोम एवं प्रतिलोम के नाम से जाना जाता है। संयुत्तनिकाय में अनुलोम को मिथ्यामार्ग एवं प्रतिलोम को सत्यमार्ग कहा गया है।[43]

द्वादश प्रत्यय– अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नामरूप, षडायतन, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भव, जाति और जरामरण हैं।

अविद्या–चार आर्यसत्यों का अज्ञान है। इसी अविद्या के कारण सारा दुःख समूह होता है और इस के निरोध से दुःख समूह रुक जाता है।

संस्कार– तीन प्रकार के हैं– काय संस्कार, वाक् संस्कार तथा चित्त संस्कार।

विज्ञान– छः प्रकार के हैं– चक्षु विज्ञान, श्रोतविज्ञान, घ्राणविज्ञान, जिह्वा विज्ञान, काय विज्ञान और मनोविज्ञान।

नामरूप–वेदना, संज्ञा, चेतना, स्पर्श और मन में कुछ लाना इसे नाम कहा गया है एवं चार महाभूतों से जो रूप होते हैं उन्हें रूप कहा गया है।

षडायतन–इसमें छः आयतन वर्णित हैं– चक्षुआयतन, श्रोत आयतन, घ्राण आयतन, जिह्वा आयतन, काय आयतन और मन आयतन।

स्पर्श–छः प्रकार के स्पर्श हैं– चक्षु संस्पर्श, श्रोत संस्पर्श, घ्राण संस्पर्श, जिह्वा संस्पर्श, काय संस्पर्श और मन संस्पर्श।

वेदना– छः प्रकार की वेदनाएं हैं– चक्षु के संस्पर्श से होने वाली वेदना, श्रोत, घ्राण, जिह्वा, काय एवं मन के संस्पर्श से होने वाली वेदना।

तृष्णा– तृष्णा छः प्रकार की है– रूपतृष्णा, शब्द तृष्णा, गन्धतृष्णा, रसतृष्णा, स्पर्श तृष्णा एवं धर्म तृष्णा।

उपादान–चार प्रकार के उपादान हैं– काम उपादान, दृष्टि उपादान, शीलव्रत उपादान एवं आत्मवाद उपादान।

भव– भव के तीन प्रकार हैं– काम भव, रूप भव और अरूप भव।

जाति–जीवों का योनियों में जन्म लेना, पैदा होना, आना, प्रकट होना, स्कन्धों का प्रादुर्भाव, आयतनों का प्रतिलाभ करना जाति है।

जरामरण–जीवों का योनियों में बूढ़ा हो जाना, पुराना हो जाना, दांतों का टूट जाना, बाल सफेद हो जाना, झुर्रियां पड़ जाना, उम्र का समाप्त होना, इन्द्रियों का शिथिल हो जाना 'जरा' है एवं जीवों का योनियों से खिसकना, टपकना, कटजाना, अन्तर्धान

हो जाना, मृत्यु होना, स्कन्धों का छिन्न–भिन्न हो जाना, शरीर को छोड़ देना मरण बतलाया है। इस प्रकार जरामरण होता है। [44]

भगवान् ने इन द्वादश निदानों की पूर्व कोटियों सहित विस्तृत व्याख्या की है। अविद्या की पूर्व कोटि का वर्णन नहीं है। [45] अविद्या क्यों होती है इसका कारण बतलाया गया है कि चार आर्यसत्यों के अज्ञान से अविद्या होती है। चार आर्यसत्यों के ज्ञान से अविद्या हट जाती है। शेष ग्यारह प्रत्ययों का वर्णन चार कोटियों में किया है एवं इन्हें (11x4=) 44 प्रकार से ज्ञान का विषय बतलाया है। ग्यारहों में से प्रत्येक का अलग–अलग ज्ञान, उनके समुदय का ज्ञान, निरोध का ज्ञान, एवं निरोधगामी मार्ग का ज्ञान। इस प्रकार कुल 44 ज्ञान के विषय बतलाये हैं। [46]

दूसरे सुत्त में इन ग्यारहों को 7 प्रकार से वर्णित कर 77 भेद भी बतलाए हैं। जिसमें बतलाया गया है कि–

1. जाति आदि एक प्रत्यय से दूसरे प्रत्यय का ज्ञान होता है।
2. जाति आदि एक प्रत्यय के नहीं होने पर दूसरा प्रत्यय नहीं होता।
3. अतीत काल में भी जाति आदि एक प्रत्यय से दूसरे का ज्ञान हुआ था।
4. अतीत काल में ऐसा ज्ञान कि एक प्रत्यय से दूसरे का निरोध।
5. अनागत काल में प्रत्ययों के समुदयों का ऐसा ही ज्ञान होगा।
6. अनागत काल में प्रत्ययों के निरोध का ज्ञान होगा।
7. ऐसा ज्ञान कि जिन धर्मो की स्थिति है वे क्षय होने वाले, व्यय होने वाले, छूटने वाले और रुक जाने वाले हैं।

इस प्रकार अविद्या को छोड़कर शेष 11 प्रत्ययों में ऐसा ज्ञान बतलाया गया है जिसे 77 प्रकार से 'ज्ञानवस्तु' कहा है। [47]

संयुत्तनिकाय में जब बारह प्रत्ययों के नाम गिनाए जाते हैं तब पहले अविद्या प्रथम प्रत्यय से 12 वें प्रत्यय जरामरण तक के नाम गिनाए गए हैं। [48] लेकिन अधिकांशतया व्याख्या 12 वें प्रत्यय से पहले प्रत्यय तक की ही की गई है। [49] शिक्षा देते समय विज्ञान प्रत्यय से शिक्षा आरम्भ की गई है कि विज्ञान के होने से सारा दुःख समूह खड़ा हो जाता है। तृष्णा को मूल कारण बतलाते हुए इसे त्यागने की सलाह दी गई है। [50] तृष्णा से दुःख समूह का प्रारम्भ बतलाया गया है। इसके हटाने से शेष प्रत्ययों का निरोध बतलाया गया है। [51] इस प्रकार इन बारह प्रत्ययों में कहीं से भी एक प्रत्यय का निरोध कर दिया जाय तो शेष प्रत्ययों का समुदय रुक जाता है। 12 प्रत्ययों की यह एक ऐसी माला है जिसे कहीं से भी तोड़ा जा सकता है और कहीं से भी जोड़ा जा सकता है।

भगवान् ने प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धान्त की व्याख्या मध्यममार्ग के रूप में की थी, इसलिए जब भी कोई पूछता था कि जरामरण क्या है? किसको होता है? क्या

जरामरण दूसरी ही चीज है और दूसरे को ही होता है? भगवान् इस प्रकार के प्रश्नों को दो अन्तों के समान बतलाते हैं, जिस प्रकार यह पूछना कि– जो जीव हैं वही शरीर है या जीव दूसरा है शरीर दूसरा। भगवान् ने कहा था कि– वे इन दो अन्तों को छोड़कर मध्यम प्रकार से बतलाते हैं कि भव के प्रत्यय से जाति, जाति से जरामरण आदि प्रत्यय होते हैं। उपर्युक्त ढंग से प्रश्न करना गलत है। प्रश्न का सही प्रकार यह होना चाहिए कि किसके प्रत्यय से दूसरा प्रत्यय होता है और किसके प्रत्यय से दूसरा प्रत्यय रुक जाता है। प्रथम प्रकार से पूछने पर ब्रह्मचर्य–वास सफल नहीं होता। दूसरे प्रकार से ब्रह्मचर्य वास सफल होता है।[52] इसी प्रकार आहार आदि के सम्बन्ध में कहा गया है।[53]

भगवान् ने सच्चे मार्ग पर आरुढ़ होने के लिए शिक्षा दी है कि– जरामरण आदि प्रत्ययों के निदान, उत्पत्ति को जानना चाहिए एवं उसका मनन करना चाहिए कि एक के प्रत्यय से दूसरे प्रत्यय का समुदय एवं एक के विरोध से दूसरे प्रत्यय का निरोध होता है।[54] इन प्रत्ययों के यथार्थ ज्ञान के लिए सलाह दी गई है कि– बुद्ध की खोज करनी चाहिए, शिक्षा लेनी चाहिए, योग करना चाहिए, उत्साह करना चाहिए, पीछे न लौटना चाहिए, उद्योग करना चाहिए, वीर्य करना चाहिए, सतत परिश्रम करना चाहिए, संप्रज्ञ रहना चाहिए और अप्रमादी रहना चाहिए।[55]

कोसम्बिसुत्त से पता चलता है कि प्रतीत्यसमुत्पाद के ज्ञान की सफलता के लिए आर्य अष्टांगिक मार्ग का पालन करना अनिवार्य है। कहा गया है कि नारद भिक्षु प्रतीत्यसमुत्पाद के ज्ञान के बाद भी क्षीणास्रव अर्हत् नहीं हैं। जिस प्रकार कोई थका व्यक्ति मार्ग में कुआ पा जाए, लेकिन बाल्टी एवं डोर के अभाव में प्यास नहीं बुझाई जा सकती, उसी प्रकार की स्थिति नारद भिक्षु की बतलाई गई है कि वे यथार्थज्ञान को जानते हुए भी क्षीणास्रव नहीं थे।

इस सुत्त में प्रतीत्यसमुत्पाद का यथार्थ ज्ञान श्रद्धा, रुचि, अनुश्रव, आकार, परिवितर्क, दृष्टि, ध्यान, क्षान्ति के बिना भी बतलाया है।[56]

विशेषताएं–भगवान् से पूछने पर कि प्रतीत्यसमुत्पाद क्या है? भगवान् ने अविद्या के प्रत्यय से संस्कार आदि बतलाते हुए इसमें तथता, अवतिथता, अनञ्ञथता, इदप्पच्चयता बतलाई थी।[57] इसकी व्याख्या करते हुए आचार्य बुद्धघोष ने बताया है कि– प्रतीत्यसमुत्पाद के सिद्धान्त में उन–उन न्यूनाधिक प्रत्ययों से ही उस–उसधर्म के होने से, कम या अधिक की सम्भावना नहीं है इसलिए तथता, समग्र हुए प्रत्ययों में मुहूर्त भर भी उससे उत्पन्न हुए धर्मो के असम्भव होने के अभाव से अवितथता अर्थात् प्रत्यय सामग्री उत्पन्न होने पर उत्पन्न होने वाले धर्म भी अवश्य रूप से उत्पन्न होते हैं। अन्य पदार्थो या रूप प्रत्ययों से किसी अन्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती, इसलिए अनञ्ञथता तथा कहे गए जरामरण आदि पदार्थ प्रत्ययों या प्रत्ययसमूहों के द्वारा ही

उत्पन्न होते हैं, इसलिए इदप्पच्चयता कहा जाता है।[58]

भगवान् ने अपने को इस सिद्धान्त का जानने वाला तथा स्पष्ट कर उपदेश देने वाला बतलाया था, लेकिन इस सिद्धान्त को अटल बतलाया था कि बुद्ध उत्पन्न हो या नहीं, प्राणी जन्म लेने पर बूढ़ा और मृत्यु को प्राप्त होता है। यह प्रकृति का नियम है कि एक धर्म के होने से दूसरा होता है।[59]

भगवान् ने इसे अपने सहित पूर्व बुद्धों, को भी साक्षात्कृत प्राचीन बुद्धमार्ग बतलाया था।[60]

महत्व– भगवान् ने बुद्धत्व प्राप्ति के पहले प्रजा के जरामरण के कष्टों का अनुभव किया था और इसी के दुःख के उपाय जानने के लिए दृढ़ संकल्प किया था।[61] भगवान् को जब दुःख के समुदय और निरोध का ज्ञान हो गया तब भगवान ने अपने को अनुत्तर–सम्यक् सम्बुद्ध घोषित किया था।

प्रतीत्यसमुत्पाद की जटिलता समझते हुए भगवान् ने उपदेश देने के विचार के समय भी पहले उपेक्षा भाव दिखा कि– जनता काम सुख में रमण करने वाली है, इसलिए वह उनके कठिनता से जानने वाले प्रत्यय समूहों के प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धान्त को नहीं समझेगी।[62]

एक बार आनन्द द्वारा कहे जाने पर कि उन्होंने आनन्द के इस गूढ़ सिद्धान्त को साफ–साफ कर लिया है, भगवान् ने कहा– ऐसा मत कहो। यह प्रतीत्यसमुत्पाद बड़ा गम्भीर है, गूढ़ है। इसी धर्म को न जानने के कारण यह प्रजा उलझी हुई है। उलझी हुई धागे की गुण्डी अथवा गांठ और बन्धनों वाली मूंग की झाड़ी के समान है।[63]

सारिपुत्त द्वारा सिंहनाद किए जाने पर कि उनका ब्रह्मचर्य–वास पूरा हो गया है, जो करना था कर लिया। भगवान् ने बुलाकर पूछा तथा सारिपुत्त द्वारा जाति आदि के निदान का वर्णन करने पर भगवान् ने उनका समर्थन किया।[64]

भगवान् ने कहा था कि प्रतीत्यसमुत्पाद के ज्ञान को 'आर्यज्ञान' कहा जा सकता है, अच्छी तरह देखा जाना कहा जा सकता है।[65] इसके ज्ञान के बाद आर्यश्रावक को दृष्टि सम्पन्न, दर्शन सम्पन्न, सद्धर्म को प्राप्त, शैक्ष्य, ज्ञानों से युक्त, धर्म के स्रोत में आ गया, निर्वेधिक प्रज्ञ, अमृत के द्वार पर खड़ा हुआ, कहा जा सकता है।[66] वह श्रमण और ब्राह्मण कहलाने का अधिकारी होता है।[67]

मिथ्यादृष्टि

भगवान् बुद्ध के दर्शन को जानने के साथ ही मिथ्यादृष्टियों को भी जानना आवश्यक है, क्योंकि भगवान् किसी मत की समीक्षा करते समय ऐसी बातों को अपने धर्म विरुद्ध बतलाते थे जो मिथ्यादृष्टि शाश्वतवाद या उच्छेदवाद के अन्तर्गत आती थी।

यदि कोई बात शाश्वतवाद या उच्छेदवाद के अन्तर्गत आती है तो वह धर्म के विरुद्ध मानी जाती थी, उसमें और कोई बुराई का कारण नहीं दिया जाता था, क्योंकि सभी बुराइयों के जड़ रूप यही विचार शाश्वतवाद और उच्छेदवाद थे। यद्यपि मिथ्यादृष्टि ऐसे शब्द का स्पष्ट उल्लेख नहीं आता किन्तु ये दृष्टियां ही मिथ्या हैं, ऐसा माना जाता है क्योंकि एक सुत्त में कहा गया है कि दृष्टि मानने वाले धर्म नहीं होते।[68]

परवर्ती बौद्ध साहित्य में मिथ्यादृष्टि का प्रयोग हुआ और दृष्टियों के अन्तर्गत मतों की समीक्षा मिथ्यादृष्टि के नाम से प्रचलित हो गई। [69]

मिथ्यादृष्टियों का विस्तृत विवरण संयुत्तनिकाय के दृष्टिसंयुत्त में मिलता है। वत्सगोत्र संयुत्त में मिथ्यादृष्टियों के मूल कारण पर विचार किया गया है। इसके अतिरिक्त यत्र–तत्र विविध प्रसंगों में भी चर्चाएं हैं।

दीघनिकाय के ब्रह्मजाल सुत्त में भगवान् ने 62 मिथ्यादृष्टियां बतलाई हैं, [70] जिसमें भगवान् ने दावा किया है कि उस सुत्त में उन्होंने उसी प्रकार सभी मिथ्या विचारों को और उनके कारणों को बांध दिया है जिस प्रकार कोई दक्ष लड़का छोटे–छोटे छेदवाले जल से पूरे जलाशय की मछलियों को फंसा लेता है। भगवान् ने अपने इस उपदेश को, जिसमें मिथ्यादृष्टियों का वर्णन किया था, विभिन्न नाम देते हुए कहा था कि इसके कोई अर्थजाल, धर्मजाल, ब्रह्मजाल, दृष्टिजाल या अलौकिक संग्राम विजय भी कह सकता है। [71]

दीघनिकाय में इन मिथ्यादृष्टियों को पूर्वान्तकल्पिक एवं अपरान्त कल्पिक नाम से विभाजित किया है, जिसमें एक में पूर्वजन्म से सम्बन्धित तथा दूसरे में भविष्य में होने वाले जन्म से सम्बन्धित दृष्टियां हैं। संयुत्तनिकाय में ब्रह्मजालसुत्त के नाम सहित 62 मिथ्यादृष्टियों का उल्लेख है। [72] एक सुत्त में मिथ्यादृष्टियों की संख्या 60 बतलाई है। [73]

विभिन्न ग्रन्थों में अव्याकृत के नाम से आने वाली बातें भी संयुत्तनिकाय में दृष्टि के रूप में गिनाई गई हैं। साथ ही कुछ अन्य तैथिकों के मतों को उसमें शामिल किया गया है।

सत्कायदृष्टि :–

आत्मा के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार से विचार करने को ही सत्काय दृष्टि कहा जाता है। [74] आत्मा रूपवान् होता है, अरूपवान् होता है, रूपवान् एवं अरूपवान् होता है, आत्मा एकान्तु सुखी होता है, दुःखी होता है, सुख दुःख से रहित होता है, [75] अरोग होता है। [76] सत्काय दृष्टि को सभी मिथ्यादृष्टियों का मूलकारण कहा गया है तथा सलाह दी गई है कि स्मृतिमान् रहते सत्कायदृष्टि का प्रहाण करना चाहिए। [77] रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान को आत्मा समझने से सत्काय दृष्टि उत्पन्न होती है। [78]

शाश्वतवाद– विचार करना कि हवा नहीं बहती, नदियां प्रवाहित नहीं होती, गर्भिणी बच्चा नहीं जनती, चांद सूरज न उगते हैं न डूबते हैं अपितु बिल्कुल दृढ़ अचल हैं। [79]

यह मेरा है, यह मैं हूं, यह मेरा आत्मा है– ऐसा विचार करना। [80] जो आत्मा है सो लोक है।[81] न मैं होता, न मेरा होवे, न मैं होऊंगा न मेरा होगा। [82] इस प्रकार विचार करना शाश्वतवाद है।

उच्छेदवाद :–

विचार करना कि दान, यज्ञ, होम नहीं हैं, अच्छे बुरे कर्म के फल नहीं होते। यह लोक नहीं है, परलोक नहीं है, माता, पिता नहीं हैं। औपपातिक सत्व लोक में श्रमण ब्राह्मण नहीं है। प्राणी चार महाभूतों से मिलकर बना है, मृत्युपरान्त उसी में लीन हो जाता है। दिया हुआ दान बिल्कुल झूठ है। जो आस्तिकवाद प्रतिपादित करने वाले हैं वे मूर्ख और पण्डित सभी उच्छिन्न हो जाते हैं। मरने के बाद कुछ भी शेष नहीं रहता।[83]

भगवान् ने शाश्वतवाद एवं उच्छेदवाद इन दो अन्तों को प्रतिपादित करते हुए विभिन्न प्रसंगों में इनको इंगित किया है। सभी कुछ विद्यमान है, यह एक अन्त है। सभी कुछ शून्य है, यह दूसरा अन्त है। [84] दुःख स्वयं किया होता है, दूसरे का किया होता है ये दोनो अन्त हैं। [85] जो वेदना है वही अनुभूति करानेवाल है। अनुभूति कराने वाला दूसरा है यह दूसरा अन्त है। [86] जो करता है, वही भेगता है, एक अन्त है : दूसरा भोगता है यह दूसरा अन्त है। [87] भव एवं विभव को भी दो दृष्टि कहा गया है। [88]

अक्रियावाद :–

ऐसा विचार करना कि करते, कराते, काटते, कटवाते, मारते, मरवाते, विचार करते, विचार करवाते हुए, थकते, थकाते हुए, बझते, बझवाते हुए, हिंसा, चोरी, सेंध, डाका डालते, घर लूटते, राहजनी करते, पर स्त्री गमन करते, झूठ बोलते कोई पाप नहीं लगता। सभी प्राणियों के मारने से भी कोई पाप नहीं लगता, गंगा के किनारें में भी हिंसा करते हुए पाप नहीं लगता। दान, दम, संयम, सत्यवादिता में कोई पुण्य नहीं है। यह अकियावाद है। यह विचार पूरणकाश्यप का माना जाता था। [89]

देववाद :–

ऐसा विचार करना कि सत्वों के संक्लेश और विशुद्धि के कोई हेतु प्रत्यय नहीं है। बिना हेतु प्रत्यय के प्राणी संक्लिष्ट और विशुद्ध होते हैं। बल, वीर्य, पौरुष, पराकम, कुछ भी नहीं है। सभी प्राणी अवश, अबल, अवीर्य भाग्य के अधीन संयोग के

अधीन स्वभाव के अधीन, छः अभिजातियों में सुख–दुःख का अनुभव करते हैं। यह देववाद है।[90]

अकृततावाद : –

ऐसा विचार करना कि सात काया– पृथ्वी, जल, तेज, वायु, सुख, दुःख और जीव अकृत, अकारित, अनिर्मित, अनिर्यावित, वन्ध्या, कूटस्थ, अचल हैं। न हिलते डुलते न विपरिणत होते हैं, न अन्योन्य प्रभावित हैं। एक दूसरे को न सुख दे सकते हैं, न दुःख। जो तेज हथियार से सिर काटता है, वह किसी को जान से नहीं मारता, केवल सात कायों के बीच एक छेद करता है। मानता है कि योनियों में जन्म लेते हुए दुःख का अन्त करेगा। मानता है कि सुख–दुःख नपे हुए हैं, उनकी निश्चित अवधि होती है, जिसे भुगतना पड़ता है। उसे न कम किया जा सकता है, न अधिक। सूत की गोली की तरह सुख–दुःख आते रहते हैं।[91]

पूर्वान्त, अपरान्त और वर्तमान की दृष्टि :–

भगवान् ने तीन प्रकार से मिथ्यादृष्टि का वर्णन करते हुए कहा था कि पूर्वान्त के सम्बन्ध में विचार करना कि मैं भूत काल में था, नहीं था? क्या था? कैसा था? क्या होकर क्या हो गया था? अपरान्त के सम्बन्ध में विचार करना कि भविष्य में होऊंगा, नहीं होऊंगा? भविष्य में क्या होऊंगा? कैसा होऊंगा? क्या होकर क्या होऊंगा? वर्तमान में संशय करता है कि मैं हूँ, नहीं हूँ? क्या हूँ? कैसा हूँ? मेरा जीव कहां से आया है? कहा जाएगा? इत्यादि कमशः पूर्वान्त, अपरान्त और वर्तमान की ये तीन मिथ्यादृष्टियां है।[92]

अव्याकृत :–

अव्याकृत दस हैं।

1. क्या लोक नित्य हैं?
2. क्या लोक अनित्य है?
3. क्या लोक अन्तवान् है?
4. क्या लोक अनन्त (बिना अन्त वाला) है?
5. क्या जो जीव है वही शरीर है?
6. क्या जीव अन्य है और शरीर अन्य है?
7. क्या मरने के बाद तथागत होते हैं?
9. क्या मरने के बाद तथागत होते भी हैं, नहीं भी होते हैं?
10. क्या मरने के बाद तथागत न होते हैं? न नहीं होते हैं?93

संयुत्तनिकाय में इन दस अव्याकृत को दृष्टियों के समान ही वर्णित किया है।[94] भगवान् के समय ही चर्चा होती रहती थी के ये अव्याकृत क्यों कहे गये? उसमें भी तथागत के सम्बन्ध में चार प्रत्ययों की ही अधिक चर्चा होती थी।[95] अव्याकृत

कथन का कारण बतलाते हुए भगवान् ने कहा था कि अत रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान नहीं है तो तथागत की सत्यतः उपलब्धि ही नहीं है तब कैसे कहा जा सकता है कि तथागत मरने के बाद कहते हैं, नहीं रहते हैं? रहते भी हैं और नहीं रहते हैं, न रहते हैं न नहीं रहते हैं? इसलिए भगवान् बुद्ध इनका उत्तर नहीं देते हैं। [96]

राजा प्रसेनजित द्वारा पूछने पर कि भगवान् ने तथागत के सम्बन्ध में चार प्रश्नों को अव्याकृत क्यों बतलाया है? खेमा भिक्षुणी उत्तर देती है कि जिस प्रकार गंगा के बालु गणों को संख्या में नहीं गिना जा सकता है एवं समुद्र के जल को तौला नहीं जा सकता क्योंकि वे अथाह हैं, उसी प्रकार तथागत के रूपादि के विषय में है। तथागत इस रूप और उस रूप कं विषय से विमुक्त होते हैं। वे भी समुद्र के समान गम्भीर, अप्रमेय एवं उथाह हैं। इसलिए उन्हें अव्याकृत कहा गया है। यही प्रश्न भगवान् से पूछे जाने पर भगवान् ने भी ऐसा ही उत्तर दिया था। [97]

सारिपुत्त से पूछने पर सारिपुत्त ने भी यही उत्तर दिया कि– यह कहना कि तथागत मरने के बाद रहते हैं, नहीं रहते हैं? उत्तर रूपादि के विषय में होगा। चूंकि तथागत रूपादि नहीं है इसलिए भगवान् ने इसे अव्याकृत बतलाया है। [98]

अव्याकृत क्यों कहा गया है? इसका सबसे अच्छा उत्तर भगवान् ने मज्झिम निकाय में दिया है, जिसमें कहा गया है कि अगर बाण से घायल व्यक्ति इलाज न करवा कर पहले मारने वाले का नाम पूछेगा और इलाज न करायेगा तो वह मर जायेगा, वह जान ही नहीं पायेगा कि किसने मारा? उसी प्रकार अव्याकृत क्यों कहा गया लोग जान ही नहीं पायेंगे और ब्रह्मचर्यवास पूरा हो जायेगा। [99]

संयुत्तनिकाय में अव्याकृत प्रश्नों के उत्तर में कहा है कि यह कहना सार्थक नहीं हे, भिक्षुचर्या के लिए उपयोगी नहीं है। निर्वेद, निरोध परमज्ञान, निर्वाण के लिए आवश्यक नहीं है। इसलिए उत्तर नहीं दिया गया है। [100]

अनित्य दुःख अनात्म

भगवान् बुद्ध के दर्शन का सारांश अनित्य दुःख अनात्म में समाहित है। यह सिद्धान्त उपनिषद् के वाक्य सच्चिदानन्द–सत्, चित और आनन्द का ठीक उल्टा है। भगवान् ने सभी उपादान स्कन्धों एवं आयतनों को नष्टवान् होने से अनित्य बतलाया तथा अनित्यता के स्वभाव के कारण उन्हें दुः,ख एवं दुःख के कारण अनात्म कहा है। [101]

लोक की अनित्यता का प्रतिपादन करते हुए भगवान् ने लोक संज्ञा का अर्थ 'लुज्जिल' होने से बतलाया था। चक्षु, रूप, चक्षुविज्ञान, चक्षु, संस्पर्श, चक्षु वेदना एवं श्रोतादि लज्जित होते हैं। [102] आर्य विनय में इस 'प्रलोकधर्मा' नाशवान् होने से लोक ऐसा कहा जाता है। [103] लोक को शून्य कहा है। यह आत्मा या आत्मीय से शून्य है।

संसार के प्राणी नामरूप से जाने जाते हैं। यह नाम संज्ञा भी कहलाने मात्र

के लिए है।[104] जिस प्रकार रथ नाम की वास्तविक चीज कोई नहीं होती है, अपितु उसके विभिन्न हिस्सों को मिलाकर रथ यह नाम दिया जाता है उसी प्रकार पांच स्कन्धों से उत्पन्न छःइन्द्रियधारी प्राणी को 'सत्व' संज्ञा से अभिहित किया जाता है।[105]

छः आयतनों से लोक (प्राणी) की उत्पत्ति एवं स्थिति होती है तथा उपादान से दुःख भोगता है।[106] इन छः प्रत्ययों में भी मन को अग्रगामी कहा है, जो प्राणी को वश में रखता है।[107] इसमें एकमात्र धर्म तृष्णा है, जिससे लोक नियंत्रित होता है एवं उसके वश में चला जाता है। एक गाथा में कहा गया है कि तृष्णा मनुष्य को पैदा करती है, चित्त उसका दौड़ता रहता है, प्राणी आवागमन के चक्कर में पड़ता है, दुःख उसका सबसे बड़ा भय है।[108] दुःख से छुटकारा नहीं। कर्म ही उसका आश्रय है।[109]

लोक के सम्बन्ध में भगवान् से पूछे जाने पर कि क्या चल कर लोक का अन्त जाना या देखा जा सकता है? जहां कोई न जन्मता है, न मरता है? शरीर को छोड़कर फिर उत्पन्न नहीं, होता? भगवान् ने कहा– वे उक्त प्रकार से नहीं बतलाते। अपितु ऐसा बतलाते हैं कि लोक के अन्त को पाये बिना दुःखों का अन्त करना सम्भव नहीं है, किन्तु इस व्योम भर संज्ञा धारण करने वाले शरीर में लोक की उत्पत्ति निरोध एवं निरोधगामी मार्ग विद्यमान है।

रोहितस्स नामक देवपुत्र ने उक्त बात का समर्थन करते हुए बतलाया कि– बहुत पहले जब वह रोहितस्स नामक भोजपुत्र ऋषि था, आकाश में विचरण करने वाला था, उसकी गति सिखाये हुए तीरंदाज के समान थी, उसके पैर रखने की दूरी पूरब से पश्चिम तक की थी, उसने सोचा कि वह चलकर लोक के अन्त को पायेगा। इस गति वह चलता हुआ, खाना–पीना, पाखाना–पेशाब, सोना आराम छोड़ 100 वर्ष की आयु तक चलता रहा और लोक के बिना अन्त को पाए मर गया।

देवपुत्त कहता है कि भगवान् का यह कहना उचित है कि –चलकर लोक को जाना नहीं जा सकता तथा लोक को बिना जाने पर भी दुःख से छुटकारा नहीं है। अतः बुद्धिमान को लोक को पहचानना चाहिए। ब्रह्मचर्य धारण करने वाला, लोक के अन्त को पाने वाला, ठीक से जान, इस लोक और पारलोक की आशा नहीं करता।[110]

भगवान् ने लोक को इस व्याम भरे शरीर में बताया था तथा विभिन्न प्रकार से षडायतन, पंचस्कन्ध, धातु भी वेदना के अन्तर्गत वर्णित किया है। सतट्ठानसुत्त में पंचस्कन्धों के सात प्रत्ययों को जानने से सुप्रतिपन्न कहा गया है। तथा तीन स्थानों से परीक्षा करने वाला बताया गया है– धातु से परीक्षा करने वाला, आयतन से परीक्षा करने वाला, प्रतीत्य समुत्पाद से परीक्षा करने वाला। जो सात स्थानों में कुशल एवं इस 'धर्मविनय' में सफल ब्रह्मचर्यवाला एवं उत्तम पुरुष कहा जाता है।[111]

पांच उपादान स्कन्ध :–

भगवान् बुद्ध ने जीव या आत्मा– इस प्रकार की कोई सत्ता नहीं मानी थी, अपितु प्राणी की व्याख्या पंचस्कन्ध के रूप में की थी। पांच संख्या होने से (रूप, वेदना, सज्ञा, संस्कार और विज्ञान) पंच ऐसा कहा जाता है। स्कन्ध के सम्बन्ध में भगवान् ने बतलाया था कि रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान–अतीत, अनागत, वर्तमान, अध्यात्म, बाह्य, स्थूल, हीन, प्रणीत, दूर और निकट के कारण स्कन्ध कहे जाते हैं। [112] स्कन्धों में छन्द राग होने से उपादान ऐसा कहा जाता है। [113] पांच उपादान स्कन्धों को 'सत्काय' भी कहा गया है। [114]

पांच उपादान स्कन्ध इस प्रकार हैं– रूप–उपादान–स्कन्ध, वेदना–उपादान–स्कन्ध, संज्ञा–उपादान–स्कन्ध, संस्कार–उपादान–स्कन्ध और विज्ञान–उपादान–स्कन्ध। इस प्रकार पांच उपादान–स्कन्ध हैं। इनके पांच नाम–रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान क्यों कहे जाते हैं? इसका विवेचन निम्न प्रकार है। [115]

रूप–प्रभावित होने से रूप कहा जाता है। शीत, उष्णा, भूख, प्यास, सांप, बिच्छू, हवा, अग्नि आदि के स्पर्श से प्रभावित होता है।

वेदना– अनुभव करने से वेदना कही जाती है। सुख–वेदना, दु:ख–वेदना, अदु:ख सुख–वेदना का अनुभव करने से ऐसा कहा जाता है।

संज्ञा–जानने वाला होने से संज्ञा ऐसा कहा जाता है। नीले, पीले, लोहित, सफेदी आदि को जानता है।

संस्कार–संस्कृत का अभिसंस्करण करने से संस्कार कहा जाता है। रूपत्व के लिए संस्कृत रूपत्व का, वेदनात्व के लिए संस्कृत वेदना का, संज्ञात्व के लिए संस्कृत संज्ञा का, संस्कारत्व के लिए संस्कृत संस्कारों का और विज्ञान के लिए संस्कृत विज्ञान का अभिसंस्करण करता है।

विज्ञान– पहचानता है इसलिए विज्ञान कहा जाता है। कषैले, तीते, कडुए, मीठे, खट्ठे, नमकीन आदि को पहचानता है।

पांच उपादान स्कन्धों की व्याख्या चार प्रकार से की गई है– प्रत्यय, समुदय, निरोध और निरोधगामी मार्ग। [116]

प्रत्यय– रूप उपादान स्कन्ध–चार महाभूत और उससे उत्पन्न होने वाला रूप, रूप–उपादान–स्कन्ध कहा जाता है।

वेदना उपादान स्कन्ध– वेदनाएं छः हैं– चक्षु, संस्पर्श–वेदना, श्रोत–संस्पर्श–वेदना, घ्राण–संस्पर्श–वेदना, जिह्वा–संस्पर्श–वेदना, काय–संस्पर्श–वेदना, मनो–संस्पर्श–वेदना।

संज्ञा उपादान स्कन्ध– संज्ञाएं छः हैं– रूप–संज्ञा, शब्द–संज्ञा, गन्ध–संज्ञा, रस–संज्ञा, स्पर्श–संज्ञा और धर्म–संज्ञा।

संस्कार उपादन स्कन्ध– संस्कार छः हैं– रूप संचेतना, शब्द संचेतना, गन्ध संचेतना,

रस संचेतना, स्पर्श संचेतना और धर्म संचेतना।

विज्ञान उपादान स्कन्ध– विज्ञान काय छः हैं। चक्षु–विज्ञान, श्रोत–विज्ञान, घ्राण–विज्ञान, जिह्वा–विज्ञान, काय–विज्ञान एवं मनो–विज्ञान।

समुदय एवं निरोध– आहार के समुदय से रूप उपादान–स्कन्ध का समुदय एवं आहार के निरोध से उसका निरोध होता है। स्पर्श के समुदय से वेदना, संज्ञा एवं संस्कार–उपादान–स्कन्ध का समुदय एवं स्पर्श के निरोध से इन तीनों का निरोध होता है। नाम एवं रूप के समुदय को विज्ञान उपादान–स्कन्ध का समुदय एवं नामरूप के निरोध से विज्ञान का निरोध होता है।

निरोधगामी मार्ग–निरोधगामी मार्ग के रूप में आर्य–अष्टांगिक मार्ग का विवेचन किया गया है।

दूसरे सुत्त में इसके सात स्थानों का वर्णन किया गया है– प्रत्यय, समुदय, निरोध, निरोधगामी मार्ग, आस्वाद, आदीनव एवं निस्सारण। प्रथम चार की व्याख्या ऊपर की जा चुकी है। शेष तीन इस प्रकार हैं–

आस्वाद–रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान का उनके प्रत्ययों से जो सुख और सौमनस्य होता है, वह उनका आस्वाद है।

आदीनव (दोष)– रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार विज्ञान का जो अनित्य दुःख विपरिणाम धर्मा होना हे, यह उनका आदीनव (दोष) है।

निस्सरण (मुक्ति)– रूपादि से जो छन्दराग का प्रहीण हो जाना है, यह उनका निस्सरण (मुक्ति) है।

भगवान् ब1द्ध ने पंचस्कन्धों के सम्बन्ध में निम्न तीन बातें सदैव सत्य बतलाई थीं–

1. जो रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार विज्ञान अतीत, निरूद्ध विपरिणत हो गया, ऐसा जाना जाता है।
2. जो अभी है –वह है' ऐसा जाना जाता है तथा
3. 'होगा' ऐसा जाना जाता है।

इनको भगवान् ने निरुक्त पथ, अधिवचन पथ, प्रज्ञप्त पथ बतलाया था जो कभी बदले नहीं जा सकते हैं, पहिले भी कभी नहीं बदले एवं भविष्य में भी कभी नहीं बदलेगे। बतलाया गया है कि उत्कलवासी वस्स और भंज अहेतुवादी, अकियावादी, नास्तिकवादी भी इनको मानते थे एवं अनित्य समझते थे।[117]

भगवान् ने पांच उपादान स्कन्धों को अनित्य बतलाते हुए उपमाओं से उनके स्वभाव का स्पष्टीकरण किया था।

रूप– इसको नदी के फेन पिण्ड के समान बतलाया है, जिस प्रकार आंख वाले (बुद्धिमान) मनुष्य द्वारा ठीक से देखने एवं परीक्षा करने पर फेन पिण्ड रिक्त तुच्छ

असार पाया जाता है, उसी प्रकार रूप के सम्बन्ध में अतीत, वर्तमान और अनागत के में परीक्षा करने पर रिक्त, तुच्छ और असार पाया जाता है।

वेदना– शरद काल में फुही पड़ जाने पर जिस प्रकार जल के बुलबुले होते हैं उसी प्रकार यह वेदना है। इसकी परीक्षा करने, अच्छी तरह देखने से रिक्तता, तुच्छता ही मिलती है।

संज्ञा– यह ग्रीष्म की दोपहरी की 'मरीचिका' के समान है।

संस्कार– यह केले के पेड़ की तरह 'निःसार' है।

विज्ञान– यह जादूगर के खेल के समान है। जिसमें परीक्षा करने पर कुछ नहीं मिलता। [118]

षड़ायतन :–

छः आयतनों का विस्तृत विवरण 'संयुत्तनिकाय' के षड़ायतन संयुत्त में मिलता है, इसमें 248 सुत्त हैं। [119] यहां पर षड़ायतनों की संख्या, विस्तृत व्याख्या, समुदय, निरोध, निरोधगामी मार्ग, इसकी विशेषताएं, महत्व तथा इनके प्रति भगवान् की शिक्षा का सूक्ष्म विवेचन मिलता है। विभिन्न सुत्तों में पुनरुक्ति होते हुए भी वर्णन का उद्देश्य विषय को स्पष्ट करना है। वर्णन का प्रमुख उद्देश्य अनित्यता सिद्ध करना है।

छः आयतनों को 'षडायतन' कहा गया है। यह छः संख्या आध्यात्मिक और बाहरी आदि प्रभेदों से अधिक भी हो जाती है।

आयतनों का तात्पर्य इन्द्रियों से है, इसमें वर्णित छः आयतनों को इन्द्रियों में भी गिना जाता है। लेकिन अधिकांशतया इनको आयतन ही कहा जाता है। आयतन का अर्थ इन्द्रिय, क्षेत्र या स्थिति किया जाता है। [120] ये तीनों अर्थ यहां पर घटित होते हैं। इन्द्रियों के रूप में स्वीकृत चक्षु, श्रोत, घ्राण, जिह्वा, काय और मन को यहां आयतन कहा गया है। उपर्युक्त छः इन्द्रियों के विषय का क्षेत्र होने से आयतन क्षेत्र है। तथा इनमें संसार की स्थिति या स्पर्शादि की स्थिति होने से आयतन स्थिति रूप है। आयतन शब्द का प्रयोग विभिन्न स्थलों में प्रारम्भिक उपनिषद ग्रन्थों में भी आया है। वहां इसका अर्थ क्षेत्र अथवा स्थान के रूप में किया गया है।[121] षड़ायतन प्रतीत्यसमुत्पाद का पांचवां प्रत्यय है। इसकी उत्पत्ति नाम–रूप के होने से होती है तथा इसके होने से स्पर्श होता है और जन्ममरण का चक्कर चलता रहता है।

चक्षु–आयतन, श्रोत–आयतन, घ्राण–आयतन, जिह्वा–आयतन, काय–आयतन तथा मन–आयतन– इन छः को षड़ायतन कहा जाता है। ये छः आध्यात्मिक आयतन भी कहे जाते हैं। इनके विषयों– रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श और धर्म को बाह्य आयतन कहा जाता है। [122]

आध्यात्मिक और बाह्य– दोनों आयतनों के संयोग से विज्ञान उत्पन्न होता

है। चक्षु और रूप के संस्पर्श से चक्षुविज्ञान, श्रोत और शब्द के संस्पर्श से श्रोत–विज्ञान, जिह्वा और रस के संस्पर्श से जिह्वा–विज्ञान, घ्राण और गन्ध के संस्पर्श से घ्राण–विज्ञान, काय और स्पर्श के संस्पर्श से काय–विज्ञान तथा मन और धर्म के संस्पर्श से मनोविज्ञान उत्पन्न होते हैं। [123] इस प्रकार इनकी कुल संख्या 18 हो जाती है।

षड़ायतनों का आस्वाद, आदीनव और निस्सरण इस प्रकार है–

आस्वाद–चक्षु आदि के प्रत्ययों से जो सुख सोमनस्य उत्पन्न होता है वह षड़ायतन का आस्वाद है।

आदीनव–चक्षु आदि की जो अनित्यता दुःखता और परिवर्तनशीलता है वह षड़ायतन का आदीनव (दोष) है।

निस्सरण–चक्षु आदि के प्रति छन्दराग का प्रहीण हो जाना षड़ायतन का निस्सरण या मुक्ति है। [124]

धातु :–

पंचस्कन्धों एवं षड़ायतनों के समान ही धातुओं के आधार पर कार्य–कारण की सिद्धि एवं प्राणी का विश्लेषण किया जाता है।

संयुत्तनिकाय में धातुओं का विस्तृत विवरण मिलता है। धातुओं की विविधता बतलाते हुए अनेक प्रकारों से उनकी संख्या गिनाई गई है।

धातुओं के चार प्रकार–पृथ्वी–धातु, जल–धातु, अग्नि–धातु एवं वायु–धातु।[125]

अठारह प्रकार–चक्षु–धातु, रूप–धातु, चक्षु–विज्ञान–धातु, श्रोत–धातु, शब्द–धातु, श्रोत–विज्ञान धातु, घ्राण धातु, गन्ध धातु, घ्राण विज्ञान–धातु, जिह्वा–धातु, रस–धातु, जिह्वा–विज्ञान धातु, काय–धातु, स्पर्श धातु, कायविज्ञान–धातु, मन–धातु, धर्म–धातु, मनोविज्ञान धातु। [126]

सात प्रकार–आभा–धातु, शुभ–धातु, आकाशानंचायतन–धातु, विज्ञानानंचायतन–धातु, आकिंचन्यायतन–धातु, नैवसंज्ञानासंज्ञानंचायतन–धातु एवं संज्ञावेदयित निरोध–धातु।[127]

धातुओं के प्रत्यय से कार्यकारण की सिद्धि की गई है एवं बतलाया गया है कि धातुओं से ही प्रत्ययों की उत्पत्ति होती है। धातुओं के निरोध से प्रत्ययों का निरोध होता है। हीनाधिमुक्तिक सुत्त में धातुओं के कारण संज्ञा, दृष्टि तथा वितर्को की उत्पत्ति बतलाई गई है।[128] तथा धातुओं के ही कारण मेलजोल बतलाया गया है। [129] धातुओं की विविधता के कारण स्पर्श की विविधता[130] एवं वेदना की विविधता[131] बतलाई गई है।

अविधा धातु को सबसे बड़ी धातु बतलाया गया है। [132] धातुओं की विरक्ति से दुःख की विरक्ति एवं धातुओं के निरोध से दुःख का निरोध [133] तथा जरामरण से मुक्ति बतलाई गई है। [134]

पृथ्वी आदि धातु में जो सुख और सौमनस्य होता है वह उसका आस्वाद है। पृथ्वी आदि धातुओं मे जो अनित्य, दुःख और विपरिणाम धर्म है वह उसका आदीनव (दोष) एवं पृथ्वी आदि धातुओं के प्रति छन्दराग छटा देने को उसकी निस्सरण (मुक्ति) कहा है।[135]

धातुओं की पहचान– आत्मा धातु अन्धकार के प्रत्यय से, शुभ–धातु अशुभ के प्रत्यय से, आकाशानंचायतन–धातु रूप के प्रत्यय से, विज्ञानानंचायतन–धातु आकाशानंचायतन के प्रत्यय से, नैवसंज्ञानासंज्ञानंचायतन–धातु आकिंचन्यायतन के प्रत्यय से तथा संज्ञावेदयित धातु निरोध के प्रत्यय से जानी जाती है।[136]

प्राप्ति के उपाय–आभा–धातु, शुभ–धातु, आकाशानंचायतन धातु, विज्ञानानंचायतन–धातु और आकिंचन्यायतन–धातु की प्राप्ति संज्ञा से होती है। नैवसंज्ञानासंज्ञानंचायतन–धातु की प्राप्ति संस्कार के अवशिष्ट होने से तथा संज्ञावेदयित–धातु की प्राप्ति निरोध के होने से होती है।[137]

काम धातु, व्यापाद धातु एवं विहिंसा धातु से कमशः कामसंज्ञा, व्यापाद–संज्ञा एवं विहिंसा–संज्ञा उत्पन्न होती है। बताया गया है कि काम धातु से काम–संज्ञा, संज्ञा से संकल्प, संकल्य के प्रत्यय से छन्द, छन्द के प्रत्यय से लगन एवं लगन पैदा होने से शरीर, वचन और मन से यत्न होता है। इसी प्रकार नैष्कम्य–धातु, अव्यापाद–धातु एवं अविहिंसा–धातु से ततृतत् संज्ञा एवं संकल्प, छन्द, लगन तथा यत्न होता है। जिस प्रकार जलती हुई घास–फूस से प्राणी दुःख में पड़ जाता है, उसी प्रकार काम, व्यापार एवं विहिंसा इन बुरी धातुओं के कारण प्राणी दुःखपूर्वक विहार करता है एवं दुर्गति में पड़ता है तथा इनको छोड़ देने से सुखपूर्वक विहार करता है एवं अच्छी गति प्राप्त करता है।[138]

धातुओं के अनुसार सत्वों में परस्पर मेल होता है, जैसे दुध का दूध के साथ, तेल का तेल के साथ, घी का घी के साथ, मधु का मधु के साथ तथा गुड़ का गुड़ के साथ मेल होता है। मैले मैले के साथ, मूत्र मूत्र के साथ थूक थूक के साथ, जीव जीव के साथ, लहू लहू के साथ आता और मिलता है, उसी प्रकार हीन प्रवृत्ति वाले हीन प्रवृत्ति वालों के साथ चलते और मिलते हैं। मध्यमधातु के प्रत्यय से मध्यम एवं उत्तम धातु के प्रत्यय से उत्तम संज्ञा बतलाई गई है। अतीत, अनागत, वर्तमान इन तीनों कालों में यह नियम समान रूप से चलता रहता है– श्रद्धारहित श्रद्धारहितों के साथ, निर्लज्ज, बेसमझ, मूर्ख, निकम्मा, मूढ़, स्मृतिवाला, दुष्प्रज्ञ, हिंसक, चोर, छिनाल, झुठे, नशाखोर, परहेज रखने वाले अपने समान स्वभाव वालों के साथ चलते और मिलते हैं। इसी प्रकार पांच शिक्षापद, सात कर्मपथ, दस कर्मपथ, आठ मिथ्यामार्ग, दस अंगों वाले अपने स्वभाव के अनुरूप वालों के साथ चलते हैं।[139]

धातुओं में आस्वाद होने से प्राणियों की उसमें आसक्ति होती है एवं दोष

होने से विरक्ति। इनके यथार्थ ज्ञान से मुक्ति, दुःख का क्षय होता है।[140] इनके यथार्थ जानने वालों एवं आचरण करने वालों को ही श्रमण ब्राह्मण कहलाने का अधिकारी बताया गया है।[141] भगवान् ने अपने सम्बन्ध में कहा है कि उन्होंने जब इनका आचरण कर यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर लिया, तब अपने लिए विमुक्त होने का दावा किया।[142]

वेदना :–

वेदना को प्रतीत्यमुत्पाद के छठे प्रत्यय पंचस्कन्ध के अन्तर्गत दूसरे स्कन्ध एवं चार स्मृतिप्रस्थान के द्वितीय प्रत्यय वेदनानुपश्यना के रूप में गिना जाता है।

वेदना का तात्पर्य अनुभूति से है जो स्पर्श के प्रत्यय से होती है। इसके चार प्रत्ययों, आस्वाद दोष एवं मुक्ति का वर्णन मिलता है। उपर्युक्त के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार से इनकी विवेचना भी मिलती है, जिसमें वेदना के विविध पहलुओं पर विचार किया गया है। संयुत्तनिकाय में इसकी जानकारी देनेवाला वेदना संयुत्त है।[143]

वेदनाएं तीन बतलाई गई हैं– सुख वेदना, दुःख वेदना एवं अदुःख–सुख वेदना। स्पर्श एवं काया को वेदना का समुदय एवं इनके निरोध को निरोध का प्रत्यय बतलाया गया है। निरोधगामी मार्ग के रूप में आर्यअष्टांगिक मार्ग का प्रतिपादन किया गया है।[144]

आस्वाद– प्रत्ययों में सुख, दृःख, अदुःख–सुख वेदनीय सोमनस्य वेदना का आस्वाद है।

दोष– वेदना की अनत्यिता, दुःखता, परिवर्तनशीलता इसका दोष है।[145]

मुक्ति– वेदना में छन्दराग के प्रहाण को इसकी मुक्ति कहा गया है।

वेदनाओं को अनित्य, संस्कृत, प्रतीत्यमुत्पन्न, क्षयस्वभाव, व्यय स्वभाव, वैराग्य एवं निरोध धर्म वाला कहा गया है।[146] इसी स्वभाव के कारण इन सब वेदनाओं को दुःख[147] एवं अनित्य[148] कहा गया है।

वेदनाओं की संख्या– भगवान् ने तीन वेदनाओं का प्रतिपादन किया था– सुखवेदना, दुःख वेदना एवं अदुःख सुख वेदना। एक बार एक भिक्षु विवाद करने लगा कि भगवान् ने दो ही वेदनाओं का प्रतिपादन किया है, तीन का नहीं? क्योंकि तीसरी अदुःख सुख वेदना को शान्त और प्रणीत होने से सुख ही कहा है, इसलिए सुख और दुःख दो ही वेदनाएं होती हैं।[149] अट्ठकथा में भी वेदयित सुख और अवेदयित सुख को सुख ही कहा है।[150]

जब यह विवाद भगवान् के पास पहुँचा तो भगवान् ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा कि उन्होंने वेदनाओं का प्रतिपादन दृष्टिकोण के भेद से किया है। वेदनाएं दो, तीन, पांच, छः, अठारहण, छत्तीस और एक सौ आठ भी होती हैं, प्राणी दृष्टिकोण के भेदों को नहीं समझने से विवाद, लड़ाई, गालीगलौज करते हैं। और जो दृष्टिकोण से किए गए उपदेश को समझने वाले हैं वे उपदेश का अभिनन्दन और अनुमोदन करते

हैं तथा आपस में दूध पानी की तरह एक होकर रहते हैं।[151] भगवान् ने कहा कि दूसरे मतावलम्बी साधुओं का यह कहना कि वे सुखवेदना के ख्याल से सुख को नहीं बतलाते, ठीक नहीं है, भगवान् सुख को सुख ही बतलाते हैं।[152]

दो वेदनाएं– शारीरिक और मानसिक वेदना।

तीन वेदनाएं– सुख–वेदना, दुःख–वेदना, अदुःख–सुख–वेदना।

पांच वेदनाएं– सुखइन्द्रिय वेदना, दुःख–इन्द्रिय–वेदना, सौमनस्य–इन्द्रिय–वेदना, दौर्मनस्य–इन्द्रिय–वेदना, उपेक्षा–इन्द्रिय–वेदना।

छः वेदनाएं– चक्षु–संस्पर्श–वेदना, श्रोत–संस्पर्श–वेदना, घ्राण–संस्पर्श–वेदना, जिह्वासंस्पर्श वेदना, काय–संस्पर्श–वेदना और मन–संस्पर्श–वेदना।

अठारह वेदनाएं– उपर्युक्त छः वेदनाएं सौमनस्य, दौर्मनस्य एवं उपेक्षा के विचार से अठारह होती हैं।

छत्तीस वेदनाएं– उपर्युक्त 18 वेदनाएं गृहसम्बन्धी एवं नैष्कम्य सम्बन्धी वेदनाओं के भेद से छत्तीस हो जाती हैं।

एक सौ आठ– उपर्युक्त छत्तीस वेदनाएं अतीत, वर्तमान और अनागत के भेद से 108 होती है।[153]

सकाम वेदना और निष्काम वेदना बतलाते हुए भगवान् ने वेदनाओं की विभिन्नता धर्मशाला में विभिन्न दिशाओं से आये हुए अतिथियों के समान बतलायी है।[154] एक अन्य उपमा के माध्यम से कहा है कि जिस प्रकार आकाश में अनेक प्रकार की वायु बहती है–पूरब, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण दिशा को तथा गर्म, ठण्डी, धूलभरी, धीमी एवं तेज, उसी प्रकार शरीर में अनेक प्रकार की वेदनाएं होती हैं।[155]

भगवान् से पूछे जाने पर कि कुछ श्रमण ब्राह्मण वेदनाओं के अनुभव का कारण अपने लिये कर्मो को मानते हैं। भगवान् ने वेदनाएं होने के वास्तविक कारण बतलाये कि– कुछ वेदनाएं पित्त के प्रकोप से, कुछ कफ, वायु, सन्निपात, ऋतु के प्रकोप से, कुछ विपरीत खा लेने से, कुछ उपकम से, एवं कुछ वेदनाएं कर्म विपाक से होती हैं। इस बात की पुष्टि में भगवान् ने कहा कि इसे संसार भी जानता है।[156]

वेदना को दुःख बतलाने का कारण संस्कारों की अनित्यता कहा है। संस्कारों के क्षय, व्यय, वैराग्य, निरोध और विपरिणाम स्वभाव के कारण अनित्य कहा है। संज्ञावेदयित निरोध वाले व्यक्ति को संज्ञा एवं वेदना विरुद्ध होती है एवं क्षीणास्रवी का राग द्वेष मोह निरुद्ध होता है। इसी से संस्कारों का व्युपशम भी होता है। निरोध समापन्न को संज्ञा एवं वेदना प्रश्रब्ध होती है एवं क्षीणास्रव भिक्षु का राग, द्वेष एवं मोह प्रश्रब्ध होता है।[157]

स्मृतिमान् और संप्रज्ञ रहते हुए वेदनाओं और उनके प्रत्ययों को जानने से सुखवेदना में राग, दुःख वेदना में खिन्नता एवं अदुःख सुख वेदना में अविद्या प्रहीण

हो जाती है। इस प्रकार प्राणी वेदनाओं को अनित्य जानता एवं अनुभव करता है। अनासक्त होने से शरीर भर की एवं जीवन पर्यन्त की वेदनाओं का अनुभव करते हुए वह जानता है कि मरने के बाद वेदनाएं उसी प्रकार ठंडी होकर रह जायेंगी जिस प्रकार तैल और बत्ती के नहीं होने से दीपक बुझ जाता है। [158]

भगवान् ने कहा था कि सुख वेदना को दुःख के रूप में, दुःख–वेदना को घाव के रूप में एवं अदुःख–सुख–वेदना को अनित्य के रूप में जानना चाहिए। [159] साधारण पुरुष सुख दुःख और अविद्या में पड़कर पृथक् जनों की वेदनाओं में लगा हुआ राम अनुसप, प्रतिध–अनुशप तथा अविद्या अनुशप में फंसा कहा गया है। [160] यदि वह कामसुख को पाना नहीं चाहता, दुःख वेदना में पीड़ित नहीं होता तथा वेदना के समुदय अस्त दोष एवं मोक्ष को जानता है तो वह आर्यश्रवक कहलाता है [161] कहा गया है कि जो शारीरिक वेदनाएं होते हुए मानसिक वेदनाओं में नहीं पड़ता है वह प्रज्ञावान् वेदना से पीड़ित नहीं होता।[162] वेदनाओं के ज्ञान के बाद श्रमण–ब्राह्मण कहलाने का अधिकारी बताया गया है। [163] भगवान् ने भी इसके यथार्थ ज्ञान के बाद अपने को अनुश्रुत धर्मो में ज्ञान उत्पन्न हुआ घोषित किया था। [164]

निर्वाण

स्थविरवादी परम्परा के अनुसार भिक्षुओं की प्रव्रज्या एवं ब्रह्मचर्य पालन का परम उद्‌देश्य निर्वाण था। [165]

निर्वाण या मोक्ष भारतीय दर्शन का केन्द्र–बिन्दु है। यह भारतीयों के लिए एकमात्र सार और एकमात्र लक्ष्य है। भारतीय दर्शन की उत्पत्ति विकास जीवन के सबसे कठोर सत्य दुःख से होती है। जीवन के दुःखों को दूर करना दर्शन का लक्ष्य है। मोक्ष और मुक्ति शब्द कमशः मोक्ष और मुत्त् धातु से व्युत्पन्न होते हैं, जिनका अर्थ स्वतंत्र होना या छुटकारा पाना है। इस प्रकार भारतीय दर्शन में मोक्ष का अर्थ जीवन–मरण के चक अर्थात् सभी प्रकार के संसारिक दुःखों से छुटकारा पाना है। [166]

बौद्ध परम्परा में इसी परम–लक्ष्य मोक्ष को निर्वाण कहा गया है। निर्वाण का शाब्दिक अर्थ वाण से बाहर निकलना है। [167] 'वाण' तृष्णा या तन्द्रा को कहते हैं। निर्वाण एक ऐसी स्थिति है, जिसमें सभी तृष्णाओं का अन्त हो जाता है। तृष्णा के निरोध से परम पद निर्वाण की प्राप्ति होती है। [168] निर्वाण या मुक्ति के सम्बन्ध में भारतीय दार्शनिकों में वैमत्य है।[169] बौद्ध परम्परा में भी अनेक विचारधाराएं विकसित हुई हैं। [170] संयुत्तनिकाय के असंखत संयुत्त में निर्वाण को रागक्षय, द्वेषक्षय एवं मोहक्षय बतलाते हुए असंस्कृत, अन्त, अनास्रव, सत्य, पार, निपुण, सुदुर्दर्श, अजर्जर, ध्रुव, अपलोकित, अनिदर्शन, निष्प्रपंच, शान्त, अमृत, प्रणीत, शिव, क्षेम, तृष्णाक्षय, आश्चर्य, अदभृत, निर्दुःख, निर्दुःख धर्म, निर्वाण, निर्द्वेष, विराग, शुद्धि, मुक्ति, अनालय, द्वीप, लेण, त्राण, शरण कहा है। [171]

आपणसुत्त में सभी व्याधियों से मुक्ति, तृष्णाक्षय, एवं निरोध को निर्वाण कहा है और बतलाया है कि इस संसार का अग्र जाना नहीं जा सकता, पूर्वकोटि मालूम नहीं होती। अविद्या में पड़े तृष्णा के बन्धन से बंधे, आवागमन में संसरण करते जीवों के अविद्या के निरोध से सभी संस्कार दब जाते हैं, सभी उपाधियों से मुक्ति हो जाती है। इस प्रकार मुक्ति– तृष्णाक्षय–विराग–निरोध निर्वाण सिद्ध होता है।[172]

निमोक्खसुत्त में निर्वाण को प्राणियों का निमोक्ख, पमोक्ख, विवेक कहा गया है। इस स्थिति में तृष्णामूलक बन्धनों का बिल्कुल क्षय, संज्ञा और विज्ञान का मिटना, वेदनाओं का निरोध और शान्त स्थिति बतलाई गई है।[173]

निर्वाण को रागक्षय, द्वेषक्षय, मोहक्षय, भव का निरोध,[174] प्राणियों का निमोक्ख, पमोक्ख, विवेक[175] एवं अनास्रव कहा है।[176]

निर्वाण की स्थिति के सम्बन्ध में कहा गया है कि निर्वाण भय से शून्य है।[177] निर्वाण में जल, पृथ्वी, अग्नि और वायु प्रतिष्ठित नहीं होते, धारा रुक जाती है, भंवर चक्कर नहीं काटता तथा नाम और रूप दोनों विरुद्ध हो जाते हैं।[178] ब्रह्मयाचना सुत्त में कहा गया है कि सभी संस्कारों का शमन, सभी उपाधियों से मुक्ति, तृष्णाक्षय, विराग, निरोध वाला 'निर्वाण' है।[179]

निर्वाण के साक्षात्कार के सम्बन्ध में कहा गया है कि चेतन और संकल्प से मुक्ति प्राप्त होती है तथा दुःख समूह रुक जाता है। चेतना और संकल्प से किसी काम में लगने की प्रवृत्ति होती है और लग जाता है। लग जाने से विज्ञान की स्थिति का आलम्बन होता है। विज्ञान के बने रहने, बढ़ते रहने से भविष्य में बार–बार जन्म होता है। भविष्य में जन्म से जरामरण, शोक परिदेवदुःख दौर्मनस्य उत्पन्न होता है। इसके विपरीत जो चेतना और संकल्प नहीं करता वह किसी काम में नहीं लगता, उसका सारा दुःख समूह रुक जाता है।[180]

सम्यक् दृष्टि को निर्वाण की ओर ले जाने वाला कहा गया है।[181] बुद्ध धर्म एवं संघ में श्रद्धा तथा शील पालन को निर्वाण के लिए उदयगामी मार्ग कहा है।[182] अनित्यता को समझने से निर्वाण की प्राप्ति बतलाई गई है।[183] असंखत संयुत्त में आर्य अष्टांगिक मार्ग, सात सम्बोध्यंग, चार स्मृति प्रस्थान, पांच इन्द्रिय, पांच बल, चार सम्यक् प्रधान, चार ऋद्धिपाद, कायगत स्मृति, सपथ विपश्यना, समाधि एवं ध्यान को निर्वाण गामी मार्ग बताया गया है।[184]

संदर्भ–विवरण

1. बौद्ध धर्मः एक बुद्धिवादी अध्ययन–आनन्द कौशल्यायन, पृ. 96
2. दुक्खे ञाणं, दुक्खसमुदये ञाणं, दुक्खनिरोधे ञाणं, दुक्खनिरोधगामिनिया

पटिपदाय ञाणं– अयं वुच्चति, भिक्खवे, सम्मादिट्ठि। संयुत्त. 5, पृ. 9

3. वही, पृ. 16

4. वही 4, पृ. 129

5. संयुत्त. 2, पृ. 17

6. वही, 5, पृ. 355–407

7. 'इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि अरियसच्चानि तथानि अवितथानि अनञ्ञथानि, तस्मा 'अरियसच्चानी' ति वुच्चन्ति। वही 5, पृ. 373

8. 'सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय तथागतो अरियो, तस्मा' अरियसच्चानी' ति वुच्चन्ति। वही 5, पृ. 373

9. वही, पृ. 379

10. संयुत्त. 5, पृ. 371

11. ''चतुन्नं अरियसच्चानं, यथाभूतं अदस्सना।
संसितं दीघमद्धानं, तासु तास्वेव जातिसु।।
तानि एतानि दिट्ठानि, भवनेत्ति समूहता।
उच्छिन्नं मूलं दुक्खस्स, नत्थिदानि पुनब्भवो''ति।। वही, पृ. 370

12. वही पृ. 360 एवं महावग्ग, पृ. 13–16

13. ''इमेसु चतूसु अरियसच्चेसु एवं त्रिपरिवट्ठं द्वादसाकारं यथाभूतं ञाणदस्सनं सुविसुद्धं अहांसि, अथाहं, भिक्खवे, सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय 'अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो' ति पच्चञ्ञासिं। ञाणं च पन मे दस्सनं उदपादि– 'अकुप्पा में विमुत्ति, अयमन्तिमा जाति, नत्थिदानि पुनब्भवो''ति। संयुत्त. 5, पृ. 362

14. वही, पृ. 366, 367

15. वही 5, पृ. 378

16. वही, पृ. 355

17. वही, पृ. 355

18. वही, पृ. 377

19. वही, पृ. 388

20. वही, पृ. 383

21. वही, पृ. 387

22. वही, पृ. 396–407

23. संयुत्त. 5 पृ. 377

24. वही, पृ. 358–59

25. वही, पृ. 374

26. वही, पृ. 372

27. वही, पृ. 378

28. वही, पृ. 375

29. वही, पृ. 379

30. वही, पृ. 370

31. वही, पृ. 374

32. वही, पृ. 360, 374
33. वही, पृ. 372
34. संयुत्त. 2, पृ. 22
35. वही, पृ. 27–29
36. 'हेतुरत्र समुत्पादः समुत्पन्नं फलं मतम।' अभि. को. भा 3/28 पृ. 136
37. 'त्रैध्विका सर्वे संस्कृता धर्माः प्रतीत्य समुत्पादः।
अतएव च प्रतीत्यसमुत्पन्नः इति न कश्चिद्विशेषः।।' अभि. को. 3/27 पृ. 444
अभिधर्म देशना, पृ. 125 से उद्धृत
38. विसुद्धि. 3, पृ. 1192
39. माध्यमिक वृत्ति, पृ. 9
मध्यमक शास्त्र, पृ. 2
दृष्टव्य– बौद्ध दर्शन मीमांसा, पृ. 126
40. पटिमुख मितो ति वुत्तो हेतु समूहो अयं पटिच्चोति।
सहिते उप्पादेति च इति वुत्तो सो समुप्पादो।।' विसुद्धि. 3, पृ. 1183
41. संयुत्त. 2, पृ. 96
42. वही, 2, पृ. 4
43. वही, पृ. 6
44. संयुत्त. 2, पृ. 4
45. विसुद्धि. 3, पृ. 1201
46. वही, 2, पृ. 48
47. संयुत्त. 2, पृ. 11
48. वही, पृ. 3
49. वही, पृ. 6–11
50. वही, पृ. 56,57,61
51. वही, पृ. 74–75
52. संयुत्त. 2, पृ. 52
53. वही, पृ. 14
54. वही, पृ. 92
55. वही, पृ. 112–13
56. संयुत्त. 2, पृ. 98–101
57. विसुद्धि. 3, पृ. 1174–1175
58. विशुद्धिमार्ग (हिन्दी) भाग 2, पृ. 130
59. 'उत्पादा वा तथागतानं अनुप्पादा वा तथागतानं, ठिता व सा धातु धम्मट्ठितता धम्मनियामता इदप्पच्चयता। तं तथागतो अभिसम्बुज्झति अभिसमेति। संयुत्त 2, पृ. 24
60. वही, 2, पृ. 6, 89
61. वही, 2, पृ. 11
62. वही, 1, पृ. 137
63. वही, 2, पृ. 79

64. संयुत्त. 2, पृ. 43

65. वही, पृ. 58

66. वही, पृ. 38

67. वही, पृ. 39, 40

68. "इतो वहिद्धा पासण्डा, दिट्ठसु पसीदन्ति ते।
न तेसं धम्मं रोचेमि, तं धम्मस्स अकोविदा।। संयुत्त. 1, पृ. 134

69. द्रष्टव्य–
'फल हेत्वयवादी यः सा मिथ्यादृष्टि रुच्यते। अभि. दी. का, पृ. 270
'हेतुं वा फलं वा कियां वा सद्वा वस्तु नाशयतः या दृष्टिः।
मंतिरित्येवमादि स मिथ्यादृष्टिरित्युच्यते।। अभि. वृ., पृ. 164
'शुभे चाशुभे च कर्मणि या नास्तीति दृष्टिः सा मिथ्यादृष्टिः। तद्यथा नास्ति दत्तं नास्तीष्टं नास्ति हुतं नास्ति सुचरितं नास्ति दुश्चरितनित्येवमादि यावन्न सन्ति लोकेऽर्हन्त इति। सैषा साकल्येन कर्मफलायार्सवादिका मिथ्यादृष्टिर्भवति।
अभि. को. भा., पृ. 247
'सति दुःखादि सत्ये नास्तीति दृष्टिर्मिथ्यादृष्टिः। सर्वेव हि विपरीतस्वभाव प्रवृत्ता दृष्टिर्मिथ्या दृष्टिः। वही, पृ. 282
'यथा मुच्च गहणा भावेन मिच्छा पस्सतीति मिच्छादिट्ठि। अट्ठ. 3/156 पृ. 83
'मिच्छा विपरीत तो पस्सतीति मिच्छादिट्ठि। विभा., पृ. 132
–अभिधर्मदेशना पृ. 295 से उद्धत

70. दीघ. 1, पृ. 12–40

71. "इमं धम्मपरियायं अत्थजालं ति पिनं धारेहि, धम्मजालं
ति पि नं धारेहि, ब्रह्मजालं ति पि नं धारेहि, दिटिठजालं ति"
"पि नं धारेहि, अनुत्तरो संगामविजयो ति पि नं धारेहि" ति।। वही, पृ. 40

72. संयुत्त. 4, पृ. 255

73. 'अथ सट्ठिनिसिता सवितक्का, पृथूजनताय अधम्मा निविट्ठा।' वही, 1, पृ. 186

74. संयुत्त. 4, पृ. 255

75. वही, 3, पृ. 431–53

76. वही, 3, पृ. 435

77. 'सत्तिया विय ओमट्ठो, डय्हमानो व मत्थके।
कामरागप्पहानाय, सतो भिक्खु परिब्बजे" ति।। वही, 1, पृ. 14

78. वही, 4, पृ. 255

79. वही, 3, पृ. 414

80. वही, पृ. 416

81. वही, पृ. 416, 17

82. वही, पृ. 417–18

83. संयुत्त. 3, पृ. 418, 19

84. संयुत्त. 2, पृ. 17

85. वही, पृ. 18

86. वही, पृ. 21

87. वही, पृ. 64–65
88. वही, 3, पृ. 318
89. संयुत्त. 3, पृ. 420
90. वही, पृ. 422
91. वही, पृ. 423
92. संयुत्त. 3, पृ. 335
93. वही, 2, पृ. 425, 429
94. संयुत्त. 3, पृ. 414–438
95. वही, पृ. 335
96. वही, पृ. 326
97. वही, 3, पृ. 326
98. वही, 4, पृ. 321–326
99. मज्झिम निकाय (हिन्दी) पृ. 254
100. संयुत्त. 5, पृ. 358–59
101. "यदनिच्चं तं दुक्खं. यं दुक्खं तदनत्ता. यदनत्ता तं 'नेतं मम. नेसोहमस्मि. न मेसो अत्ता' ति।1
संयुत्त 3, पृ. 276
102. संयुत्त. 4, पृ. 49
103. वही, पृ. 50
104. वही, 1, पृ. 36
105. वही, पृ. 135
106. "छसु लोको समुप्पन्नो, छसु कुब्बति सन्थवं।
छन्नमेव उपादाय, छसु लोको विहञ्ञती"ति।। सयुत्त. 1, पृ. 38
107. "चित्तेन नीयति लोका, चित्तेन परिकस्सति।
चित्तस्स एकधम्मस्स, सब्बेव वसमन्वगू"ति।। वही, पृ. 37
तुलनीय–
मनोपुब्बंगमा धम्मा, मनोसेट्ठा मनोमया।
मनसा च पदुट्ठेन, भासति वा करोति वा।
ततो नं दुक्खमन्वेति, चक्कं व वहतो पदं।। खुददक. 1, पृ. 17
108. संयुत्त. 1, पृ. 27
109. वही, पृ. 35
110. संयुत्त. 1, पृ. 59–60
111. वही, 3, पृ. 291
112. वही, 3, पृ. 324
113. अपि च यो तत्थ छन्दरागो तं तत्थ उपादानं'ति। वही, पृ. 324
114. वही, 4, पृ. 231
115. संयुत्त. 3, पृ. 312
116. वही, 3, पृ. 288
117. संयुत्त. 3, पृ. 299
118. संयुत्त. 3, पृ. 358

119. वही, 4, पृ. 3 से 182
120. पालि हिन्दी कोश, पृ. 51
121. छान्दोग्य, 1/5, बृहदारण्यक, 3/9–10
भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग 1, पृ. 95 पादटिप्पण से उद्धृत
122. संयुत्त. 4, पृ. 3
123. वही, पृ. 25
124. संयुत्त. 4, पृ. 7
125. वही, 2, पृ. 143
126. वही, पृ. 121
127. संयुत्त. 2, पृ. 130
128. वही, पृ. 131
129. वही, पृ. 131
130. वही, पृ. 121
131. वही, पृ. 122
132. वही, पृ. 130
133. वही, पृ. 147
134. वही, पृ. 148
135. वही, पृ. 144
136. संयुत्त. 2, पृ. 128
137. वही, पृ. 128
138. वही, 2, पृ. 128–30
139. संयुत्त. 2, पृ. 140–143, 147
140. वही, पृ. 147
141. वही, पृ. 148
142. वही, पृ. 145
143. वही, 4, पृ. 183–211
144. संयुत्त. 4, पृ. 191–193, 188
145. वही, पृ. 195–196
146. वही, पृ. 191
147. वही, पृ. 193
148. वही, पृ. 188
149. वही, पृ. 198
150. संयुत्त निकाय (हिन्दी) भाग–2 पृ. 545 पादटिप्पण
151. संयुत्त. 4, पृ. 203
152. वही, पृ. 198–202
153. संयुत्त. 4 पृ. 205
154. वही, पृ. 195
155. वही, पृ. 194
156. "पित्तं सेम्हं च वातो च, सन्निपाता उतूनि च।

विसमं ओपक्कमिकं च, कम्मविपाकेन अट्ठमो'ति।। वही, पृ. 205

157. संयुत्त. 4, पृ. 193

158. वही, पृ. 188–190

159. वही, पृ. 185

160. वही, पृ. 183

161. वही, पृ. 185

162. संयुत्त. 4, पृ. 185–190

163. वही, पृ. 202

164. वही, पृ. 207

165. 'निब्बान गधं हि राध, ब्रह्मचरियं वुस्सति, निब्बान परायनं निब्बान परियोसान' ति। संयुत्त. 3, पृ. 403

166. मोक्ष चिन्तन, पृ. 2 (भूमिका)

167. पा. इ. डि., पृ. 362–365

168. संयुत्त. 1, पृ. 121

169. द्रष्टव्य– भारतीय दर्शन में मोक्ष चिन्तन : एक अध्ययन

170. द्रष्टव्य– दि कान्सेप्सन आव बुद्धिस्ट निर्वाण

171. 'असंखतं अनतं अनासवं, सच्चं च पारं निपुर्ण सुदृद्दसं।
अजज्जरं धुवं अपलोकितं, अनिदस्सनं निप्पपंच सन्तं।।
अमतं प्रणीतं च सिवं च खेमं, तण्हाक्खयो अच्छरियं च अब्भुतं।
अनीतिकं अनीतिकधम्मं, निब्बानमेतं सुगतेन देसितं।।
अव्यापज्जो विरागो च, सुद्धि मुत्ति अनालयो।
दीपो लेणं च ताणं च, सरणं च परायनं ति।। सयुत्त. 4, पृ. 320

172. वही 5, पृ. 195–97

173. संयुत्त. 1, पृ. 4

174. वही, 5, पृ. 98

175. वही, 1, पृ. 4

176. परिनिब्बन्ति अनासवा ति।। वही, 4, पृ. 116

177. अभया नाम सा दिसा। वही, 1, पृ. 31

178. यथ आपो च पठवी, तेजो वायो न गाधति।
अतो सरा निवत्तन्ति, एत्थ वहं न वत्तति।
एत्थ नामं च रूपं च, असेसं उपरुज्झाति ति।। वही, 1, पृ. 16

179. इदं पि खो ठानं दुद्दसं यदिदं सब्बसंखरसमथो सब्बूपधिपटिनिस्सग्गो तण्हाक्खयो विरागो निरोधो निब्बानं। वही, 1, पृ. 137

180. संयुत्त. 2, पृ. 56–58

181. सम्मादिट्ठि निब्बानपोणा निब्बानपब्भारा ति। वही, 4, पृ. 162

182. वही, 5, पृ. 307

183. वही, 4, पृ. 66–70

184. वही, 4, पृ. 312–14

पंचम परिच्छेद

संघ

संघ के नियमों से सम्बन्धित विवरण देने वाला मूल ग्रन्थ विनयपिटक है। संयुत्तनिकाय के विभिन्न सुत्तों में भी परोक्षरूप से संघ से सम्बन्धित संक्षिप्त विवरण मिलते हैं। इन सुतों में भगवान् बुद्ध, प्रमुख भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका, ब्रह्मा, मार, यक्ष, देवता, शक आदि के द्वारा संघ के महत्त्व एवं स्थिति का वर्णन किया गया है।

संघ का स्वरूप :—

संघ के अन्तर्गत भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक एवं उपासिका चतुर्विध संघ का उल्लेख मिलता है,[1] किन्तु वास्तव में बौद्ध—धर्म में द्विविध (भिक्षु एवं भिक्षुणी) संघ ही मान्य है।[2] संयुत्तनिकाय में संघ के रूप में मात्र भिक्षुसंघ का ही उल्लेख है तथा भिक्षुणियों की सामान्य रूप में चर्चा की गई है। भिक्षुणी संघ के रूप में कोई उल्लेख नहीं है।

संघ का विकास :—

भगवान् बुद्ध ने बोधगया में बोध प्राप्त करने के बाद ब्रह्मा की याचना पर प्रथम उपदेश के लिए ऋषिपतन की ओर विहार किया। मार्ग में भगवान् को भेंट तपस्सु और भल्लिक से हुई। ये दोनों भगवान् से प्रभावित हुए और प्रथम उपासक बने। इन्होंने भगवान् तथा धर्म की शरण स्वीकार करते हुए उपासकत्व स्वीकार किया।[3]

पंचवर्गीय भिक्षु जब प्रव्रजित होने लगे तब उन्होंने बिना शरण स्वीकार किए ही प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा की याचना की और भगवान् के **'स्वाक्खातो धम्मो, चरथ ब्रह्मचरियं सम्मा दुक्खस्स अन्तकिरियाया'** ति इस वचन से उनकी उपसम्पदा हुई। महावग्ग के धर्मचकप्रवर्तनसुत में इसका उल्लेख है।[4] संयुत्तनिकाय के धर्मचकप्रवर्तनसुत्त में यह अंश नहीं है।[5]

यश के पिता तीन शरणों से उपासकत्व ग्रहण करने वाले प्रथम उपासक हुए, उन्होंने भगवान्, धर्म तथा भिक्षुसंघ की शरण स्वीकार की।[6]

भगवान् ने भिक्षुओं को 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' विचरने एवं धर्मोपदेश करने का आदेश दिया।[7] चारों तरफ से लोग भगवान् के निकट प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा के लिए पहुंचने लगे। भगवान् ने प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा का एक नियम बना दिया और इसके लिए ज्येष्ठ भिक्षुओं को अधिकृत कर दिया कि वे प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा दें।[8] प्रव्रज्या से तात्पर्य श्रामणेर होने के संन्यास एवं उपसम्पदा से तात्पर्य

भिक्षु होने के सन्यास से है।[9]

प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा विधि :–

महावग्ग में बतलाया गया है कि जब भगवान् ने भिक्षुओं को अलग–अलग दिशाओं में भगमण करने का आदेश दिया तब नाना दिशाओं से प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा के इच्छुक व्यक्ति भगवान् के पास आने लगे। उसी समय एकान्त में विचार करते हुए भगवान् ने वितर्क किया कि क्यों न भिक्षुओं को आदेश दे दिया जाय कि वे भी प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा दें। भगवानृ ने अपने इस विचार को भिक्षुसंघ के समक्ष कहा और आदेश दिया कि भिक्षु प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा दें। भगवान् ने प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा का नियम बतलाया कि प्रव्रज्या के लिए पहले सिर दाढ़ी का मुण्डन करवाकर काषाय वस्त्र पहन, उसे कन्धे पर रखकर भिक्षुओं की पादवन्दना करनी चाहिए तथा अंजलिबद्ध उकडूं बैठकर प्रणाम करते हुए तीन बार कहना चाहिए कि 'बुद्धं सरणं गच्छामि, धम्मं सरणं गच्छामि, संघं सरणं गच्छामि [10]

शरण स्वीकार करने की विधि के सम्बन्ध में संयुत्तनिकाय में 'भगवन्तं सरणं गच्छामि, धम्मं सरणं गच्छामि, भिक्खुसंघं सरणं गच्छामि' कहा गया है।[11] महावग्ग के प्रारम्भिक अंशों में भी ऐसा ही है,[12] किन्तु भगवान् द्वारा भिक्षुओं को प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा का अधिकार देने के बाद ही परिवर्तन है। भगवन्तं सरणं की जगह बुद्ध–सरणं तथा भिक्षुसंघ की जगह सिर्फ संघ–सरणं हो गया। जबकि भगवान् का यह प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा का नियम संघ के प्रारम्भिक समय का है।

संयुत्तनिकाय के सभी सुत्तों में भगवान् धर्म एवं भिक्षुसंघ की शरण का ही उल्लेख है जिससे यह परिलक्षित होता है कि संघ में पहले भिक्षुसंघ ही पूजनीय माना जाता था।

भिक्षुओं में अनुशासन बना रहे इसलिए भगवान् ने उपाध्याय मनोनीत किये तथा उपाध्याय एवं शिष्य के कर्तव्य भी निर्धारित किये।[13]

उपसम्पदा के लिए ज्ञप्ति, अनुश्रावण एवं धारणा निश्चित की।

ज्ञप्ति– मे उपसम्पदा के इच्छुक व्यक्ति को संघ से कहना पड़ता था कि भन्ते। संघ मुझे सुने, अमुक नामक अमुक नामक आयुष्मान् का उपसंपदापेक्षी है। यदि संघ उचित समझे तो संघ अमुक नाम को अमुक नामक के उपाध्यायत्व में उपसम्पन्न करें।

अनुश्रावण– भन्ते ! संघ मुझे सुने, अमुक नामक, अमुक नाम के आयुष्मान का उपसंपदापेक्षी है। संघ अमुक नामक को अमुक नामक के उपाध्यायत्व में उप–सम्पन्न करता है। जिस आयुष्मान् को अमुक नामक की उपसंपदा अमुक नामक के उपाध्यायत्व में स्वीकार है, वह मौन रहे, जिसको स्वीकार न हो वह बोले। यह बात संघ के समक्ष तीन बार कही जाती थी।

धारणा– संघ को स्वीकर है, इसलिए मौन है ऐसा समझता हूँ। इसके पहले भिक्षु को तीन बार उपसम्पदा की याचना करनी होती थी।[14]

उपसम्पदा देते समय यह भी बतलाया जाने लगा था कि उसे चार निश्चयों का पालन करना होगा।[15] प्रव्रज्या के पूर्व माता–पिता की अनुमति लेना अनिवार्य हो गया। उपसम्पदा पाने वाले की आयु कम से कम बीस वर्ष आवश्यक मानी गई। पुनः उपसम्पदा के नियमों में वृद्धि होती गई। इसका विस्तृत विवरण विनयपिटक के महावग्ग में मिलता है।

अन्य सम्प्रदाय से आनेवालों के लिए चार मास का 'परिवास' अनिवार्य था। इसमें शाक्यजातीय और जटिल साधुओं को छूट दी गई थी, क्योंकि वे कर्मवादी और कियावादी होते थे।[16] संयुत्तनिकाय के अचेलकस्सप सुत्त में भी कहा गया है कि अन्यमतावलम्बियों को प्रव्रज्या के पूर्व चार मास का परिवास लेना अनिवार्य है। अचेलकाश्यप को भगवान् ने इस परिवास से उसकी योग्यता के आधार पर छूट दी थी।[17] परिवास की अवधि में प्रव्रज्या प्रार्थी को सेवा करते हुए भिक्षुओं के साथ रहना पड़ता था। जब उसकी दृढ़ता, आचरण, व्यवहार आदि से भिक्षु सन्तुष्ट हो जाते थे तो उसे प्रव्रजित करते थे।[18]

संघ नियम :–

संयुत्तनिकाय में संघ के विनय सम्बन्धी नियमों का प्रारम्भ से लेकर अन्त तक का रूप दृष्टिगोचर होता है। एक सुत्त में भगवान् कहते हैं कि भिक्षु–संघ ऐसा प्रतिपन्न है कि उसमें अनुशासन आवश्यक ही नहीं है।[19] जैसे–जैसे भिक्षुओं की संख्या बढ़ती गई एवं भिक्षुओं में शिथिलता आती गई, वैसे–वैसे नियमों की संख्या बढ़ती गयी।

सहम्पतिरूपकसुत्त में कहा गया है कि प्रारम्भ में शिक्षापद कम थे, फिर भी बहुत भिक्षु अर्हत् पद प्राप्त कर लेते थे। एक समय ऐसा आया जब (भगवान् के समय ही) नियमों की संख्या बढ़ गई लेकिन अर्हत् अवस्था प्राप्त करने वालों की संख्या कम होने लगी। महाकश्यप ने भगवान् से इसका कारण पूछा। भगवान् ने सद्धर्म के लोप होने के पांच कारण बतलाये हैं एवं ठहरने के भी पांच कारण बतलाये हैं जिससे सद्धर्म के लोप एवं स्थिति का ज्ञान होता है। भिक्षु–भिक्षुणियों एवं उपासक–उपासिकाओं के द्वारा बुद्ध, धर्म, संघ, शिक्षा और समाधि के प्रति गौरव और ख्याल न रखने से सद्धर्म नष्ट और लुप्त हो जाता है। इनके प्रति गौरव और ख्याल करने से सद्धर्म स्थित रहता है, क्षीण और लुप्त नहीं होता।[20]

प्रत्ययों का विधान :–

भगवान् प्रत्ययों के पालन में विशेष सतर्कता रखते थे। ज्येष्ठ भिक्षु भी प्रत्ययों के पालन के प्रति सावधान रहते थे। प्रत्ययों के सेवन एवं पालन में संघ में

महाकाश्यप एवं उनके शिष्य आदर्श थे।

भगवान् ने भिक्षुओं को उपदेश देते हुए कहा था कि जिस प्रकार काश्यप चीवर, पिण्डपात, शयनासन, ग्लानप्रत्ययभैषज्य परिस्कार से सन्तुष्ट रहते हैं, सन्तुष्ट रहने की प्रशंसा करते हैं, चीवर आदि के अनुचित अन्वेषण में नहीं लगे रहते, प्राप्त न होने पर खिन्न नहीं होते, मिलने पर ललचाते नहीं, प्रसन्न नहीं होते, लोभ नहीं करते, उसके दोष को देखते हुए मुक्ति की प्रज्ञा के साथ चीवर आदि का उपयोग करते हैं, उसी प्रकार भिक्षुओं को रहना चाहिए।[21]

महाकाश्यप के वृद्ध हो जाने पर भगवान् ने महाकाश्यप से आग्रह किया था कि वे अब बूढ़े हो गए हैं, पांसुकूल को छोड़ गृहस्थ के चीवर को एवं निमन्त्रण के भोजन को स्वीकार करें, लेकिन महाकाश्यप ने चार प्रत्ययों में ही अपनी सन्तुष्टि बतलाई और इसका लाभ बतलाया कि उनका उद्देश्य इस जन्म में सुखपूर्वक विहार तथा भविष्य में जनता के अनुकम्पार्थ है, जिससे कोई भ्रम में न पड़े कि बुद्ध के श्रावक चार प्रत्ययों का सेवन नहीं करते थे। [22]

महाकाश्यप प्रत्ययों के पालन का नियम संघ में कठोरता से लागू करना चाहते थे। भगवान् के कहने पर कि वे भिक्षु–संघ को उपदेश करें, महाकाश्यप ने इन्कार कर दिया कि इस समय भिक्षु उपदेश ग्रहण करने के योग्य नहीं हैं। महाकाश्यप ने बतलाया कि पहले भिक्षु स्वयं आरण्यक होते थे तथा आरण्यक के प्रशंसक भी। इसी प्रकार स्वयं पिण्डपातिक होते थे और पिण्डपातिकों के प्रशंसक, पांसुकूलिक होते थे और पांसुकूलिक होने के प्रशंसक, तेचीवरधारी होते थे और तेचीवर होने के प्रशंसक, अल्पेच्छ होते थे और अल्पेच्छ होने के प्रशंसक, सन्तुष्ट रहते थे और सन्तुष्टों के प्रशंसक, प्रविवेकी होते थे और अप्रविवेक होने के प्रशंसक, आरब्ध ावीर्य होते थे और आरब्धवीर्य होने के प्रशंसक, जिससे उनको सम्मान दिया जाता था, आसन दिया जाता था, जिसे देखकर नए भिक्षु भी ऐसा बनने की शिक्षा लेते थे और अपने हित–सुख के लिए वैसा आचरण करते थे। महाकाश्यप ने आगे कहा कि अब स्थिति बदल कर ऐसी हो गई कि उपर्युक्त प्रत्ययों के पालन के बिना यशस्वी भिक्षुओं को सम्मान दिया जाता है। यह भिक्षु–संघ के लिए हित और सुख के लिए नहीं है। ब्रह्मचारी उपद्रव में पड़ गए हैं। इस प्रकार महाकाश्यप ने अपनी बात भगवान् से कही। [23]

पिण्डपात– भगवान् ने भिक्षा मांगने को भिक्षुओं का पुरुषार्थ कहा था। अपवादस्वरूप संघभोज, उद्दिष्ट भोजन, निमन्त्रण, श्लाका भोजन और पाक्षिक भोजन भी विहित बतलाया था। [24]

ज्येष्ठ भिक्षु कलेवा करते थे। कभी–कभी छोटे भिक्षु भी ज्येष्ठ भिक्षुओं की नकलकर कलेवा करते थे तथा कलेवा करके गृहस्थ कुलों में रहा करते थे। भिक्षुओं

द्वारा रोके जाने पर नए भिक्षु अपने को ज्येष्ठ भिक्षुओं का अनुगामी बतलाते थे। भगवान् को जब इस पात का पता चला तो उन्होंने नए भिक्षुओं से कहा कि उनके द्वारा ज्येष्ठ भिक्षुओं की नकल करना उचित नहीं है। क्योंकि ज्येष्ठ भिक्षुओं द्वारा कलेवा कर कुलों में रुकने पर वे गृहस्थों को उपदेश देते हैं, जिससे गृहस्थों की उन पर श्रद्धा होती है तथा वे भिक्षा लोभरहित, आदीनव और निःसरण का ख़्याल कर लेते हैं।

भगवान् ने उपमा द्वारा स्पष्ट किया है कि जिस प्रकार सरोवर का कमलनाल बड़े हाथियों के लिए वर्ण और बल के लिए होता है, उससे उनकी मृत्यु नहीं होती, क्योंकि ये उसे अच्छी तरह धोकर कीचड़ हटाकर खाते हैं, लेकिन अनुकरण प्रिय छोटे हाथी उसे कीचड़ लगे ही निगल जाएं तो उसमें सर्प आदि के होने से उनकी मृत्यु हो जाती है। उसी प्रकार ज्येष्ठ भिक्षुओं का अनुकरण कर जो नए भिक्षु कलेवा कर कस्बे में बैठते हैं, उसका वे ललचाकर भोग करते हैं, उसके आदीनव और निःसरण का विचार नहीं करते हैं, अतः वह उनके दुःख का कारण होता है, इसलिए बिना ललचाये, आदीनव और निःसरण का विचार कर भिक्षा मांगनी चाहिए।[25]

भगवान् भिक्षुओं को शिक्षा देते थे कि भिक्षान्न के लिए जाते समय सतर्कता रखनी चाहिए।[26] चांद की तरह कुलों में जाना चाहिए। अपने शरीर को समेटे, सदा नए अनजान, अप्रगल्भ की तरह। उस पुरुष की तरह जो पुराने कुए में जाए, बीहड़ पर्वत में या खतरनाक नदी को देख शरीर और मन को समेटे हुए जाय। इसी तरह चुपचाप कुलों में जाना चाहिए। जिस प्रकार हाथ आकाश में फेरने पर उसमें फंसता नहीं है उसी प्रकार भिक्षुओं का चित्त कुल में नहीं लगना चाहिए तथा जिस प्रकार अपने लाभ और सन्तोष से प्रसन्न रहता है उसी प्रकार दूसरों के लाभ और सन्तोष से प्रसन्न होना चाहिए।[27]

कुलों में जाने के अयोग्य भिक्षुओं की चर्चा करते हुए भगवान् ने कहा था कि जो कुलों में जाकर कहता है– मुझे ही दें, बहुत दें थोड़ा नहीं, बढ़िया दें घटिया नहीं, शीघ्र ही दें देर न लगायें, सत्कारपूर्वक ही दें बिना सत्कार के नहीं। ऐसा करहने वाले भिक्षु कुलों में जाने के योग्य नहीं हैं। क्योंकि इच्छित की प्राप्ति न होने पर दुःख होता है, बैचैनी होती हे, इसलिए ऐसा नहीं करना चाहिए।[28] अन्य सुत्तों में भी भगवान् ने लालचरहित[29] तथा संयम के साथ[30] भिक्षान्न लेने को कहा था तथा पेटू (अधिक खाने वाले) की निंदा की है।[31]

कुछ और भी प्रसंगों में निन्दित भिक्षान्न की चर्चा है। शुचिमुखा–परिव्राजिका द्वारा सारिपुत्त से कहे जाने पर कि वे नीचे मुंहकर, ऊंचे मुंहकर तथा चारों ओर घुमाकर क्यों खा रहे हैं। सारिपुत्त ने उत्तर दिया कि जो वस्तु–विद्या, तिरश्चीन विद्या की आजीविका से जीवन निर्वाह करते हैं, वे नीचे मुंहकर खाने वाले हैं। जो

नक्षत्रविद्या की मिथ्याजीविका से जीवन निर्वाह करते हैं, वे ऊपर मुंहकर के खाने वाले हैं। जो दूत की मिथ्या आजीविका से तथा अंग विद्या की मिथ्या आजीविका से जीवन निर्वाह करते हैं वे विदिशाओं में मुंहकर के खाने वाले हैं। सारिपुत्त ने बताया कि वे इनमें से किसी भी प्रकार की आजीविका का सेवन नहीं करते हैं, वे धर्मपूर्वक भिक्षाटन करके खाते हैं।[32]

सारिपुत्त के इस प्रकार कहने पर शुचिमुखा परिव्राजिका ने राजगृह की गली–गली में जाकर कहा कि – शाक्यपुत्र श्रमण धर्मपूर्वक आहार करते हैं, अनिन्द्य आहार करते हैं, इसलिए श्रमणों को भिक्षा देना चाहिए।

भिक्षु जब भिक्षाटन के लिए जाते थे तो उन पर विभिन्न लोगों की नजर रहती थी कि वे गृहस्थों से कितना लगाव रखते हैं, गृहों में कितनी देर ठहरते हैं। भिक्षुओं के देर से लौटने पर संघ में टीका–टिप्पणी होती थी। एक भिक्षु के देर से आने पर देवता पूछता है– उनमें और गृहस्थ में क्या अन्तर है? जब वे कुलों में इतनी देर तक ठहरते हैं।[33] नागदत्त भिक्षु के देर से आने पर देवता ने कहा कि वे 'मार' के बन्धन में बंध जायेंगे।[34]

आनन्द ने महाकाश्यप से 'तिक' भोजन की प्रज्ञप्ति के कारण बतलाते हुए कहा था कि– भगवान् ने तिक भोजन की प्रज्ञप्ति बुरे लोगों के निग्रहार्थ, शीलवन्तों के आरामार्थ तथा पापेच्छ लोग संघ में कहीं फूट न डाल दें इसलिए कुलों की भलाई के लिए की थी।[35]

तिक भोजन–तीन भिक्षुओं द्वारा एक उपासक के घर भिक्षा लेने को तिक भोजन कहा जाता है तथा इससे अधिक संख्या होने पर 'गण' भोजन कहा जाता था, जो वर्जित था।[36]

भगवान् ने भिक्षुओं को भिक्षा के भोजन से आजीविका वहन करने का आदेश दिया था तथा स्वयं भी ऐसा ही करते थे। भिक्षुओं को किसी प्रकार की हीन भावना न आए कि वे भिक्षा से प्राप्त भोजन करते हैं, इसलिए भगवान् समझाते थे कि वे पवित्र उद्देश्य से ऐसा कर रहे हैं। भगवान् ने इस बात को स्वीकार करते हुए कि भिक्षाटन करके जीना सभी आजीविकाओं में हीन है, कहा कि– भिक्षु ऐसा विशेष उद्देश्य से करते हैं। वे किसी राजा या चोर से दण्डित होकर, भय से या दूसरी आजीविका के अभाव के कारण ऐसा नहीं करते हैं। वे ऐसा विशेष उद्देश्य से करते हैं। हाथ में पात्र लेकर मान को त्याग कर विचरते हैं। उनका यह विशेष उद्देश्य जन्म, जरा, मृत्यु, शोक, रोना–पीटना, दुःख दौर्मनस्य और उपायास से मुक्त होता है।[37] भगवान् का कहना था कि मात्र भिक्षाटन से भिक्षु नहीं होता जो सभी दोषों से मुक्त है, ज्ञानपूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करता है वास्तव में वही भिक्षु है।[38]

चीवर–भगवान् ने भिक्षुओं को श्मशान में पड़े चिथड़ों से चीवर तैयार करने की बात कही थी। साथ ही क्षौम, कापासिक, कौशेय कम्बल आदि का वस्त्र भी विधेय बताया था।[39]

संयुत्तनिकाय में भिक्षुओं में श्रेष्ठतम आचार पालक महाकाश्यप को तीन चीवर घाटी 'तेचीवरक' कहा गया है।[40] भिक्षुओं के तीन वस्त्र–1. अन्तरवासक(=लुंगी), 2. उत्तरासंग(=चादर), 3. संघाटी (दोहरी चादर) है।[41] महाकाश्यप ने अपनी प्रव्रज्या के समय अपने को गुदड़ी का बना एक चीवर (संघाटी) धारण करने वाला बतलाया है। भगवान् महाकाश्यप की संघाटी पर बैठते हैं एवं उसे 'मुलायम' कहकर प्रशंसा करते हैं, तो महाकाश्यप वह संघाटी भगवान् को दे देते हैं एवं बदले में टाट जैसे रूखे पांसुकुल को स्वीकार कर लेते हैं।[42]

अरण्यवास–भिक्षुओं के लिए वृक्ष के नीचे निवास करने का प्रावधान था। साथ ही विहार, आढ्ययोग, प्रासाद, हर्म्य, गुफा आदि विहित था।[43]

सुयुत्तनिकाय में आरण्यक होने की प्रशंसा की गई है। इसके वनसंयुत्त में भिक्षुओं के आरण्यक होने की पुष्टि होती है। वनसंयुत्त में 14 सुत्त हैं, जिसमें वनदेवता से सम्बन्धित विवरण दिए गए हैं। भिक्षुओं को सतर्क करता है। वनदेवता भिक्षुओं को जंगल का वैभव बतलाता है। एक बार भिक्षुओं के चले जाने पर वनदेवता विलाप करता है और जंगल को सूना बतलाता है।[44] भिक्षु के फूल सूंघने पर भी देवता चोरी का आरोप लगाता है। भिक्षु द्वारा कहने पर कि वह न कुछ लेता है, न नष्ट करता है, दूर से ही फूल सुंघता है, जबकि दूसरे लोग पुण्डरीकों को ही उखाड़ देते हैं, उनको क्यों नहीं कहते? वनदेवता ने कहा कि मनुष्य धाई के कपड़े जैसा गन्दा है उसे कहना बेकार है, लेकिन भिक्षु निष्पाप, पवित्रता के खोजने वाले हैं इसलिए उनको बाल की नोक के बराबर पाप को भी बादल के समान समझना चाहिए। देवता के इस प्रकार कहने पर भिक्षु ने अपनी गलती स्वीकार करते हुए कहा कि वह भविष्य में ऐसी कोई गलती करे तो वनदेवता सचेत करता रहे। उत्तर में वनदेवता ने कहा कि वह कोई नौकर नहीं है उन्हें कोई वेतन नहीं मिलता। भिक्षु स्वयं जानें और समझें।[45]

एक भिक्षु द्वारा मन में बुरे संसारी वितर्कों के लाने पर वनदेवता ने भिक्षु को होश में लाने के विचार से कहा कि – विवेक की कामना से बैठे, उसका मन बाहर भाग रहा है। दूसरों के प्रति इच्छा को दबाये नीच और दुरे काम–राग से बहक न जाये। स्मृतिमान् होकर मोह को छोड़े,वीतरागी बने सुखी होयेगा। जिस प्रकार पक्षी धूल पड़ जाने पर पांखे फड़फड़ाकर उसे हटा देता है, उसी प्रकार स्मृतिमान् भिक्षु को मन के राग को फड़फड़ाकर झाड़ देना चाहिए।[46]

आनन्द के गृहस्थों से घिरे रहने पर देवता कहता है कि– हे गौतम श्रावक! जंगल में आप निर्वाण की आकांक्षा से आये ध्यान करें, प्रमाद मत करें, चहल–पहल

से उनको क्या मतलब है।[47] एक भिक्षु द्वारा गृहस्थ कुलों में जाकर बहुत देर तक रुकने पर देवता कहता है कि उसकी बड़ी बदनामी हो रही है कृपया ध्यान दें।[48]

भिक्षु द्वारा धर्मपद न पढ़ने पर वनदेवता आकर कहता है कि वे धर्मपद को क्यों नहीं पढ़ते? धर्मपद के पढ़ने से बड़ा सन्तोष होता है तथा संसार में बड़ाई होती है।[49] एक भिक्षु को जंगल में उदास देख, जो अपने को अभागा समझ रहा था तथा पर्व की रात को स्मरण कर रहा था, वनदेवता आकर कहता है कि –स्वर्ग जाने वाले आप लोगों को देखकर बहुत लोगों को ईर्ष्या होती है, फिर आप ऐसा क्यों सोचते हैं।[50]

शयनासन– शयनासन का भिक्षुसंघ में काफी महत्व था। सद्धर्म की स्थिति के सम्बन्ध में चर्चा चलने पर भगवान् लकड़ी के तख्ते में सोने से सद्धर्म की स्थिति उसका चिरस्थायी होना बतलाते हैं। तत्कालीन स्थिति का वर्णन करते हुए भगवान् ने कहा कि इस समय लिच्छवि लकड़ी के बने तख्त पर सोते हैं, अप्रमत्त हो उत्साहपूर्वक अपना कर्तव्य पूरा करते हैं इसलिए मगधराज अजातशत्रु को लिच्छवियों के विरुद्ध कोई दाव–पेच नहीं मिलता है। इसी प्रकार भिक्षुगण भी लकड़ी के बने तख्ते पर सोते हैं, अपने उद्योग में आतापी और अप्रमत्त होकर विहार कर रहे हैं, इसलिए पापी मार को इनके विरुद्ध कोई दाव–पेच नहीं मिल रहा है। अनागत काल में लिच्छवि सुकुमार तथा कोमल हाथ–पैर वाले हो जायेंगे। वे गद्देदार बिछावन पर तकिए लगाकर दिन चढ़ जाने तक सोये रहेंगे। मगधराज को उनके विरुद्ध दाव मिल जायेगा। उसी प्रकार भिक्षु भी अनागत काल में ऐसा ही करेंगे, इसलिए इनके विरुद्ध भी पापी मार को दाव मिल जायेगा। भगवान् भिक्षुओं को शिक्षा देते हैं कि वे लकड़ी के तख्तपर सोयें। अपने उद्योग में आतापी और अप्रमत्त होकर विहार करें।[51]

एक सुत्त में भिक्षु द्वारा दिन में सोये रहने पर बनदेवता उससे कहता है कि–उठो, तुमको सोने से क्या काम, तीर लगे छटपटाते हुए बैचेन को नींद कैसी? जिस श्रद्धा से घर से बेघर हो प्रव्रजित हुए हो, उस श्रद्धा में लगो, नींद के वश में मत होओ।[52]

भेषज्य :– भगवान् ने भेषज्य के रूप में गोमूत्र को औषधि के निश्चय का विधान किया था। साथ ही पांच भैषज्य– घी, मक्खन, तेल, मधु और खांड के सेवन करने की भी अनुमति दी थी।[53]

संयुत्तनिकाय में भेषज्य से सम्बन्धित विभिन्न प्रसंग मिलते हैं। अधिकांश प्रसंगों में बीमारी दूर करने के लिए अनित्यता की भावना, सात सम्बोध्यंगों की भावना, चार स्मृति प्रस्थानों की भावना की सलाह दी गई है।[54]

एक बार भगवान् ने वातरोग से पीड़ित होने पर गरम पानी में गुड़ घोलकर औषधि के रूप में सेवन किया तब उनकी पीड़ा दूर हुई।[55]

जब भी कोई भिक्षु बीमार होता था वह भगवान् या प्रमुख भिक्षु के दर्शन का

उत्सुक रहता था, तब भगवान् या प्रमुख भिक्षु उनके पास जाकर सान्त्वना देते हुए धर्मो की भावना को सलाह देते थे।

मेल सुत्त में वर्णित है कि भगवान् ग्लानशाला (रोगियों के ठहरने का घर) में जाकर भिक्षुओं को स्मृतिमान् और संप्रज्ञ रहने की सलाह दिये।[56] छन्न भिक्षु के बीमार पड़ने पर एवं उसके द्वारा आत्महत्या की इच्छा व्यक्त किए जाने पर सारिपुत्त उसकी सेवा करने का वचन देते हैं।[57]

उपोसथ :–

उपोसथ के दिन भिक्षु एकत्रित होकर 'पातिमोक्ख' की आवृत्ति किया करते थे।[58]

संयुत्तनिकाय में कहा गया है कि उपोसथ के दिन एकत्रित भिक्ष–संघ को जन्तु देवपुत्र ने आकर अनुशासित किया।[59] एक सुत्त में 'पातिमोक्ख' का भी उल्लेख है। कुशल धर्मो के आदि के रूप में वर्णित है कि आचार गोचर से सम्पन्न, थोड़ी भी बुराई में भय देखते हुए शिक्षापदों को मानते हुए पातिमोक्ख संवर का पालन करना चाहिए।[60] पुण्णसुत्त से पता चलता है कि उपोसथ के दिन एकत्रित भिक्षु भगवान् से अपनी शंकाओं का समाधान भी करवा लेते थे।[61]

अण्डज नागों का भी उपोसथ रखने का उल्लेख है। उनके उपोसथ (व्रत) रखने का कारण बतलाया गया है कि वे सुगति को ध्यान में रखकर सदाचरण के ख्याल से उपोसथ रखते थे।[62]

वर्षावास :–

संघ के भिक्षु भिक्षुणियों के लिए तीन माह वर्षावास का प्रावधान था।[63] संयुत्तनिकाय में भगवान् के विभिन्न वर्षावासों का विवरण मिलता है। इनकी अवधि भी तीन माह बतलाई गई है। वर्षावास के बाद भिक्षु इधर–उधर विहार को जाते थे। बताया गया है कि तीन माह का वर्षावास बीत जाने पर भिक्षु चारिका के लिए मगध, कोशल, वज्जियों के देश को चले गये। जिस प्रकार मृग स्वच्छन्द विचरते हैं उसी प्रकार भिक्षु विहार करते हैं।[64]

गिलान सुत्त में वर्णित है कि भगवान् ने भिक्षुओं को बुलाकर कहा कि– वैशाली के चारों ओर जाओं। जहां तुम्हारे मित्र, परिचित या भक्त हों वर्षावास करो। भगवान् भी वेलुग्राम में वर्षावास करेंगे।[65]

प्रवारणा :–

वर्षावास के बाद जब भिक्षुसंघ एकत्रित होकर अपने अपराधों का संदर्शन करता है तो उसे प्रवारणा कहते हैं। इसमें इष्ट, श्रुत और परिशक्ति अपराधों का परिमार्जन किया जाता है।[66] यह वर्षावास की समाप्ति पर पड़ने वाली आश्विन पूर्णिमा को होता है।[67]

संयुत्तनिकाय में प्रवारणा से सम्बन्धित एक सुत्त में भगवान् स्वयं भिक्षुओं से

प्रवारणा करते हैं कि उनके द्वारा शरीर या वचन से कोई दोष देख तो नहीं गया है? सारिपुत्त हाथ जोड़कर कहते हैं कि उन लोगों ने भगवान् पर कोई दोष नहीं चढ़ाया। भगवान् अनुत्पन्न मार्ग के उत्पन्न करने वाले, अकथित मार्ग के कहने वाले, पहचानने वाले और स्वयं उस पर चले हुए हैं जिसका अनुगमन उनके श्रावक भी कर रहे हैं। सारिपुत्त भी प्रवारणा करते हुए कहते हैं कि उनमें कोई दोष देखा तो नहीं गया है? जिसके उत्तर में भगवान् सारिपुत्त सहित सभी भिक्षुओं को दोषरहित बतलाते हैं।[68]

कीर्ति सूचक शब्द :–

संघ का महत्व इससे प्रचलित 'कीर्तिशब्द' से स्पष्ट होता है। संघ के सम्बन्ध में बुद्ध एवं धर्म के समान कीर्ति सूचित करने वाला परम्परागत रूप प्रचलित है, जिसमें कहा गया है कि– भगवान् का श्रावक संघ सुमार्ग पर आरुढ़ है, ज्ञान के मार्ग पर आरुढ़ है, सच्चे मार्ग पर आरुढ़ हैं जो ये पुरुषों के चार जोड़ा आठ पुरुष हैं, यही भगवान् का श्रावक संघ है। जो स्वागत करने योग्य, सत्कार करने योग्य, पूजा करने योग्य, प्रणाम करने योग्य, संसार का अलौकिक पुण्य क्षेत्र है।[69]

आचार्य बुद्धघोष के अनुसार पुरुषों के चार जोड़ा एवं आठ पुरुष से तात्पर्य, प्रथम जोड़े के अनुसार मार्गस्थ और फलस्थ यह एक जोड़ा है। ऐसे चार पुरुष युग्म जोड़े होते हैं। पुरुष पुद्गल के अनुसार एक मार्गस्थ और एक फलस्थ– इस प्रकार आठ ही पुरुष पुद्गल होते हैं।[70]

संयुत्तनिकाय में भी कहा गया है कि चार–चार मार्गप्राप्त और फलप्राप्त ऋजुभूत संघ है।[71]

संघ को चार पुरुष जोड़ा कहा गया है। इन चार से तात्पर्य स्रोतापत्ति, सकृदागामी, अनागामी एवं अर्हत् है। ये चार मार्ग एवं फलों से चार जोड़े हैं। व्यक्ति जब इन पदों की प्राप्ति में लगता है तो वह मार्ग में आरुढ़ कहा जाता है एवं जब अपने उद्देश्य में सफल हो जाता है तो फल प्राप्त कहा जाता है।

स्रोतापत्ति–संघ में प्रवेश की प्रथम अवस्था स्रोतापत्ति मार्ग है जब व्यक्ति बुद्ध धर्म एवं भिक्षुसंघ की शरण स्वीकार करते हुए शील पालन करने की प्रतिज्ञा लेता है तो वह 'स्रोतापन्न' कहलाने लगता है।[72]

'स्रोत' के रूप में आर्य अष्टांगिक मार्ग को बताया गया है तथा जो व्यक्ति इनके पालन करने में लग जाता है वह स्रोतापन्न कहलाता है।[73]

'स्रोतापत्ति फल' प्राप्त व्यक्ति के तीन संयोजन क्षीण हो जाते हैं। अपाय, तिरश्चीन एवं नरकगति से मुक्ति हो जाती है। परलोक में स्वर्ग की प्राप्ति होती है। उसके पांच वैरभव शान्त हो जाते हैं।[74]

स्रोतापत्ति–फल प्राप्त करने में लगे हुए जिस व्यक्ति का प्रज्ञाइन्द्रिय प्रबल होता है और श्रद्धा से आर्यमार्ग की भावना करता है, उसे धर्मानुसारी कहते हैं। तथा

जिस 'स्रोतापत्ति फल' प्राप्त करने में लगे हुए व्यक्ति का श्रद्धेन्द्रिय प्रबल होता है और श्रद्धा से आर्यमार्ग की भावना करता है, उसे श्रद्धानुसारी कहते हैं।[75]

संयुत्तनिकाय में इन दोनों का उल्लेख मिलता है।[76]

सकृदागामी–तीन संयोजन के क्षीण हो जाने एवं दो संयोजन के अत्यन्त दुर्बल होने से सकृदागामी होता है। सकृदागामी फल प्राप्त आर्यश्रावक केवल एक बार जन्म धारण कर मुक्ति प्राप्त करता है। संयुत्तनिकाय में सुदत्त उपासक को सकृदागामी बताया गया है।[77]

अनागामी– पांच नीचे के संयोजनों के प्रहीण हो जाने से अनागामी होता है।[78]

अनागामी फल प्राप्ति के बाद यदि मृत्यु हो जाय तो औपपातिक योनि में जन्म लेता है, जहां से परिनिर्वाण को प्राप्त होता है, उसे इस लोक में आने की जरुरत नहीं है।

दुतियविस्तरसुत्त में अनागामी को अन्तरापरिनिर्वायी, उपहत्थपरिनिर्वायी, असंस्कार– परिनिर्वायी, संस्कार–परिनिर्वायी एवं उर्ध्व–स्रोत–अकन्ष्ठि–गामी इन पांच अवस्थाओं का वर्णन मिलता है। ये पांचों अवस्थाएं अर्हत्व प्राप्ति से पूर्व की हैं। कहा गया है इन्द्रियों की पूर्णता हो जाने से अर्हत् होता है उससे कम होने से उपर्युक्त पांच अवस्थाएं होती हैं।[79] जो व्यक्ति पांच निचले संयोजनों के नष्ट हो जाने पर अनागामी होकर शुद्धावास ब्रह्मलोक में उत्पन्न होने के बाद ही अथवा मध्य आयु से पूर्ण हो ऊपरी संयोजनों को नष्ट करने के लिए आर्यमार्ग को उत्पन्न कर लेता है, उसे 'अन्तरापरिनिर्वायी' कहते हैं। जो व्यक्ति अनागामी होकर शुद्धावास ब्रह्मलोक में उत्पन्न हो मध्य आयु के बीत जाने पर अथवा काल (मरण) करने के समय ऊपरी संयोजनों को नष्ट करने के लिए आर्यमार्ग को उत्पन्न कर लेता है, उसे 'उपहत्य–परिनिर्वियी' कहते हैं। जो व्यक्ति अनागामी होकर शुद्धावास ब्रह्मलोक में उत्पन्न होता है और वह अल्प प्रयत्न से ही ऊपरी संयोजनों को नष्ट करने के लिए आर्यमार्ग को उत्पन्न कर लेता है, उसे असंखार परिनिर्वायी कहते हैं। जो व्यक्ति अनागामी होकर शुद्धावास ब्रह्मलोक में उत्पन्न होता है और अविह–लोक से च्युत हाकर अतप्प ब्रह्मलोक को जाता है, अतप्प से च्युत होकर 'सुदस्स' ब्रह्मलोक को जाता है, वहां से च्युत हो अकनिष्ठ ब्रह्मलोक में जा ऊपरी संयोजनों को नष्ट करने के लिए आर्यमार्ग उत्पन्न करता है और वहां से च्युत हो ऊर्ध्वस्रोत–अकनिष्ठगामी कहलाता है।[80]

अर्हत्– अर्हत् को सभी प्राणियों में श्रेष्ठ, [81] बंह्मचर्य पालन करने वाला, क्षीणास्रवी कहा जाता है। क्षीणास्रवी कृतकृत्य, भार को उतारने वाला, परमार्थ पा लिया भव संयोजन को क्षीणकर विमुक्त कहा जाता है।[82]

परम (अर्हत्) पद के इच्छुक व्यक्ति को संस्कारों का उत्पन्न और नष्ट होना

जानकर पवित्र मन से अनुत्सुक होकर विहार करना चाहिए।[83]

जब व्यक्ति घर को छोड़कर प्रव्रजित हो जाता है तो वह ब्रह्मचर्य के परमलक्ष्य अर्हत् पद की प्राप्ति में लग जाता है। इसको जन्म–मरण का चक्कर नहीं रहता अपितु, परम लक्ष्य निर्वाण की ही प्राप्ति होता है।

निर्वाण की ही भिक्षुओं की चाह रहती है। अर्हत् के सम्बन्ध में कहा गया है कि वे घर छोड़कर प्रव्रजित हो पुत्र, पशु एवं प्रियों को त्याग कर राग–द्वेष एवं मोह को हटाकर लोक में सर्वथा अनुत्सुक रहते हैं।[84]

अर्हत् पद प्राप्त व्यक्ति के लिए कुछ करना बाकी नहीं रहता। अर्हत् को इन्द्रियों की पूर्णता प्राप्त हो जाती है।[85] भगवान् ने कहा था कि अर्हतों के लिए अनापान–स्मृति की भावना करते हुए विचरण करना चाहिए।[86]

अर्हत् का महत्त्व बतलाते हुए देवेन्द्रशक कहता है कि जहां अर्हत् बुद्ध विहार करते हैं, वही रमणीय जगह है।[87]

भिक्षु–संघ की स्थिति

भगवानृ बुद्ध का संघ लोकतांत्रिक था। किसी को प्रव्रज्या देते समय भिक्षुओं की भी अनुमति ले ली जाती थी। उपाध्यायों की नियुक्ति द्वारा संघ को विभिन्न इकाइयों में विकसित किया गया था। भिक्षु विभिन्न विषयों के ज्ञाता होते थे।

संयुत्तनिकाय के पवारणासुत्त में भिक्षुओं की संख्या पांच सौ बतलाई गई है, उनमें से 60 भिक्षु त्रैविध, 60 भिक्षु षड्भिज्ञ तथा 60 भिक्षु दोनों भागों से विमुक्त थे। शेषु भिक्षु प्रज्ञा से विमुक्त थे। ये सभी भिक्षु अर्हत् थे, दोष रहित थे।88 500 भिक्षुओं की यह संख्या भिक्षु संघ की स्थापना के प्रारंभिक काल की है। प्रारम्भ में बनारस में भिक्षुओं की संख्या 61 थी। उसके बाद में भद्रवर्गीयों की प्रव्रज्या हुई तथा संजय तापस के 250 शिष्यों सहित सारिपुत्त और मौद्गल्यायन की प्रव्रज्या हुई।[89] उपालि तथा उसके मित्रों की प्रव्रज्या के बाद भिक्षुओं की संख्या 500 होनी चाहिए।

अन्धकविन्दसुत्त में सहम्पति ब्रह्मा संघ की वास्तविक स्थिति का आंखों देखा वर्णन करता हुआ कहता है कि – संघ में हजारों ने मृत्यु को जीत लिया था, पांच सौ अधिक शैक्ष्य थे, दस बार सौ–सौ संख्या में स्रोतापन्न हुए थे तथा पुण्यशाली अगणित थे।[90]

भगवान् के प्रमुख भिक्षु, जो विशेष दक्ष थे, अपने–अपने शिष्यों के साथ विचरते थे। इनकी योग्यताएं भिन्न–भिन्न प्रकार की थी। संयुत्तनिकाय के चङ्कमसुत्त के अनुसार सारिपुत्त और उसके साथी भिक्षु प्रज्ञावान् थे। मौद्गल्यायन तथा उसके भिक्षु ऋद्धिसंपन्न थे। काश्यप तथा उसके भिक्षु धुतांग–धारण करते थे। अनुरुद्ध तथा उसके भिक्षु दिव्य–चक्षु वाले थे। पुण्णमन्तानियुत्त तथा उसके भिक्षु धर्मकथिक थे। उपालि तथा उसके भिक्षु विनयधर थे। आनन्द तथा उसके बहुश्रुत थे। देवदत्त तथा

उसके साथी भिक्षु पापेच्छ थे।[91] यही बात अंगुत्तर निकाय में भी कही गई है।[92]

कपिलवस्तु में विहरते हुए भगवान् एक बार किसी कारणवश भिक्षुसंघ को छोड़कर महावन के विल्वु के तरुण वृक्ष के नीचे बैठे थे। वहां एकान्त में ध्यान करते समय भगवान् के मन में वितर्क उठा कि–उन्होंने भिक्षु संघ की स्थापना की है, उसमें कितने ही नए भिक्षु हैं, जिनको यदि नहीं सम्हाला गया तो उन्हें विपरिणाम हो सकता है। जैसे तुरन्त बोये गये बीज सिंचन न होने से अथवा माता के बिना तरुण वत्स का मन कुम्हला जाता है। वैसे ही यदि वे भिक्षु संघ को छोड़ देंगे तो नये भिक्षुओं को अन्यथात्व हो सकता है। इसलिए उन्होंने सोचा कि पहले के समान ही भिक्षुसंघ को स्वीकार कर लेना चाहिए। उसी समय सहम्पति–ब्रह्मा ने आकर उनके वितर्क का समर्थन किया एवं निवेदन किया कि भगवान् पहले की भॉति भिक्षुसंघ को स्वीकार कर लें। भगवान् अपनी मौन स्वीकृति देकर निग्रोधाराम पहुँचे जहां भिक्षुसंघ था। ऋद्धिबल से भिक्षुओं को उपस्थित किया एवं अनुशासित किया।[93] इसके बाद भगवान् अंतिम समय तक भिक्षुसंघ को अनुशासित करते रहे।

यद्यपि संघ का स्वरूप मूलतः लोकतांत्रिक था, तथापि भगवान् शास्ता एवं सर्वोच्च प्रमुख के रूप में पूजनीय थे। गोंध नामक भिक्षु के संवाद से ज्ञात होता है कि भगवान् के प्रति उसकी श्रद्धा इतनी उत्कट थी कि सारा संघ एक ओर हो जाये और भगवान् एक ओर हो जायें तो भी वह भगवान् की ही बात को मानेगा।[94]

भगवान् बुद्ध एवं संघ का समाज में बहुत आदर–सत्कार होता था। उन्हें चीवर, पण्डिपात, शयनासन, ग्लान–प्रत्यय–भैषज्य परिष्कार अधिक प्राप्त होते थे। यह आदर–सत्कार देखकर सुसीम परिब्राजक की मण्डली ने 'सुसीम' परिब्राजक से कहा कि वे जाकर गौतम से धर्म सीखें तथा लौटकर उन सबको सिखाएं, जिससे उनको भी आदर–सत्कार एवं चीवर आदि प्राप्त हो सके। लालचवश सुसीम परिव्राजक धर्मविनय में प्रव्रजित हुआ था एवं शिक्षा के लिए आतुरता बरतने लगा। वास्तविक स्थिति स्पष्ट होने पर भगवान् ने चोर की तरह प्रव्रज्या ग्रहण करने को दुःखदायी एवं नरकगामी बतलाया। क्षमा याचना करने पर भगवान् ने उसे क्षमा कर दिया।[95]

भिक्षु सोना–चांदी आदि पदार्थ ग्रहण नहीं करते थे। बिना किसी लालच या तृष्णा के विचरते थे। संघ की पवित्रता को देखकर शक भिक्षुसंघ को नमस्कार करता है और उसकी प्रशंसा करते हुए कहता है कि ये गांव को छोड़कर बिना किसी अपेक्षा के चल देते हैं। कोठी में अथवा हाड़ी में कुछ भी जमा नहीं करते हैं। दूसरों से प्राप्त कर निर्वाह करते हैं। अच्छी बातों में मन्त्रणा करने वाले, धीर चुपचाप शान्त रहने वाले ये अपने विरोधियों का भी विरोध नहीं करते। इन्होंने हिंसा को छोड़ दिया है। इन्द्र कहता है कि उसे इनके गुणों से ईर्ष्या होती है।[96]

ब्रह्मचर्य का पालन :–

भगवान् ने भिक्षुओं की प्रव्रज्या का उद्देश्य ब्रह्मचर्य का पालन बतलाया है। ब्रह्मचर्य का पालन भिक्षुओं का प्रथम कर्तव्य था। ब्रह्मचर्य का मल स्त्री बताया था, जिसमें लोग फंस जाते हैं।[97] घर में रहते ब्रह्मचर्यपालन को कठिन बताया गया है।[98] ब्रह्मचर्य पालन करने का उपयुक्त धरातल भिक्षु अवस्था थी। ब्रह्मचर्य पालन का उद्देश्य दुःख की परिज्ञा थी,[99] जिसका पालन कर जन्म–मृत्यु रूपी चक्कर समाप्त हो जाता है।

बौद्ध शासन में ब्रह्मचर्य पालन में लगे हुए भिक्षुओं ने सफलता प्राप्त की थी। ब्रह्मचर्य पालन को समाज में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त था। राजा–प्रजा सभी इनका सम्मान करते थे।[100] वे इस दुष्कर तपस्या का रहस्य जानना चाहते थे।

राजा उदयन द्वारा पिण्डोल से पूछे जाने पर कि क्या कारण है कि ये तरुणवय वाले, कोमल केश वाले संसार के सुखों का उपभोग किए बिना आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। उत्तर में पिण्डोल ने बुद्ध वचनों का प्रतिपादन किया कि माता की आयु वाली स्त्रियों के प्रति माता का भाव, बहिन की आयु वाली स्त्रियों के प्रति बहिन का भाव, पुत्री की आयु वाली किशोरियों के प्रति पुत्री का भाव रखना चाहिए। ऐसा भाव रखने पर भी कभी–कभी चित्त माता के समान, बहिन के समान और लड़की के समान स्त्रियों पर आसक्त हो जाता है। इसलिए शरीर की अशुभ भावना पूरी कर ली है, उसके लिए ब्रह्चर्य पालन सुकर है, अन्यों के लिए दुष्कर है क्योंकि कभी–कभी अशुभ भावना का चिंतन करते हुए भी शुभ भावना होने लगती है, इसलिए भगवान् की शिक्षा है कि इन्द्रियों में संयत होकर विहार करो। चक्षु आदि में लालच, स्वाद मत करो। इन्द्रियों के संवर के लिए तैयार रहो, जिससे उनमें लोभ, द्वेष, दौर्मनस्य, पापमय अकुशल धर्म पैठने न पाए।[101]

ब्रह्मचर्य की सफलता के विषय में तायन देवपुत्र ने निम्न बातें कही थी, जिसका अनुमोदन भगवान् ने किया था एवं भिक्षुओं को आदेश दिया था कि वे इन बातों को सीखें और इनका अभ्यास करें। कहा गया है कि स्रोत को काट दो, पराकम करो, कामों को दूर करो, कामों को बिना छोड़े मुनि एकाग्र नहीं हो सकता। करे तो अच्छी तरह दृढ़ पराकम करे, शिथिल प्रव्रजित और भी अधिक मैल चढ़ा देता है। सदोष रीति से करने की अपेक्षा बिल्कुल नहीं करना चाहिये। जिस प्रकार अच्छी तरह न पकड़ा हुआ कुश हाथ को ही काट देता है, वैसे ही शिथिल पालन से श्रमणभाव नरकगामी होता है। काम–शैथिल्य, व्रतसंक्लिष्ट, झूठा–ब्रह्मचर्य अच्छे फल देने वाले नहीं है।[102] इन बातों को ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में प्रथम और यथार्थ कहा गया है।

भगवान् का उपदेश था कि चलकर लोक को पहुंचा नहीं जा सकता, बिना लोक का अन्त पाए छुटकारा नहीं है। इसलिए बुद्धिमान् व्यक्ति के लिए लोक को

जानना चाहिए। ब्रह्मचर्य पालन करने वाला लोक के अन्त को ठीक तरह जानकर इहलोक तथा परलोक की आशा नहीं करता।[103] आयु अल्प है अतः पुण्य के इच्छुक व्यक्ति के लिए ब्रह्मचर्य पालन अनिवार्य है।[104] विभिन्न प्रसंगों में ब्रह्मचर्य को शुद्ध और पालन करने में कठिन कहा गया है।[105] ब्रह्मचर्य को बिना पानी के नहाना भी कहा गया है।[106]

भिक्षुओं की अनुशासनहीनता :–

संघ में कुछ ऐसे भिक्षु भी थे जो चंचल प्रकृति के थे, शरारत करते रहते थे। वे किसी प्रकार के अनुशासन को नहीं मानते थे। इससे संघ में अनुशासन बनाये रखना कठिन होता था। आनन्द के भिक्षुओं को पेटू और सुतक्कड़ कहा गया है।[107] महाकाश्यप आनन्द को 'कुमार' कहकर सम्बोधित करते हैं। इस पर से थुल्लतिस्सा भिक्षुणी महाकाश्यप को सुई बेचने वाले के समान कहती है। भिक्षुणी की इस अनुशासनहीनता के विषय में उल्लेख है कि वह धर्म से च्युत हो गयी थी।[108]

आनन्द के भिक्षु भण्ड और अनुरुद्ध के अनुचर भिक्षु अभिंजक आपस में बात कर रहे थे कि देखा जाये कि कौन बहुत बोलता है? कौन बढ़िया बोलता है? कौन अधिक देर तक बोलता है? इसका पता महाकाश्यप को चला तो भगवान् के सामने महाकाश्यप ने उपदेश देने से इन्कार करते हुए कहा कि इस समय भिक्षु धर्मोपदेश के योग्य नहीं है, क्योंकि भण्ड और अनुरुद्ध ऐसा चर्चा कर रहे थे, इसलिए वे उपदेश ग्रहण नहीं करेंगे, उपदेश का सत्कार नहीं करेंगे। भगवान् ने दोनों भिक्षुओं को बुलाकर इस चर्चा को स्वाख्यात धर्म विनय के विपरीत बतलाया। उन भिक्षुओं ने अपने को बाल, मूढ़, पापी के समान अपराधी बताते हुए क्षमा याचना की। भगवान् ने उन्हें दोष स्वीकार कर लेने के कारण क्षमा कर दिया।[109] कुछ भिक्षु आपस में एक–दूसरे को चिढ़ाया करते थे, तथा नकल करते रहते थे। तिस्स भिक्षु अपनी नकल किए जाने पर दुःखी एवं उदास हो गया और आंसू बहाने लगा। भगवान् ने कहा कि जब तुम दूसरे को चिढ़ाते हो तो स्वयं भी दूसरों द्वारा चिढ़ाये जाने को सहन करो तथा वैसे भी सहन करना चाहिए, क्योंकि ब्रह्चर्य, कोध, मान और माया को दबाने के लिए है।[110]

भिक्षु नन्द द्वारा सिले गए चीवर को पहनने, आंख में अंजन लगाने, सुन्दर पात्र रखने पर इसे भगवान ने कुलपुत्रों (भिक्षुओं) के आचरण के विपरीत कहा है। कुलपुत्रों को आरण्यक, पिण्डपातिक, पांसुकूलिक होना चाहिए। भगवान् की शिक्षा के बाद नन्द अपनी कामनाओं को तजकर अरण्य में रहने लगे, पिण्डपातिक और पांसकूलिक होकर विहार करने लगे।[111] कुछ कोसलिक भिक्षुओं की चर्चा भी आती है, जो उद्धत, नीच, चपल, अशिष्टभाषी, मूढ़स्मृतिवाले, असंप्रज्ञ, असमाहित तथा भ्रान्त चित्त वाले थे। भगवान् महामोग्गल्लान के पास जाकर कहते हैं कि–आओ, तुम्हारे गुरुभाई उद्धत होकर विचरण कर रहे हैं। उन्हें संविग्न करो। तब महामोग्गल्लान

ऋद्धिबल से पहुँचे और पैर के अंगूठे से मृगारमाता के पूरे प्रासाद को हिला दिया तथा भिक्षुओं को संविग्न किया।[112] ऐसे भी उल्लेख मिलते हैं कि कुछ भिक्षु भिक्षु–अवस्था छोड़कर गृहस्थ हो गए थे। क्योंकि आनन्द के 30 भिक्षुओं द्वारा भिक्षु–अवस्था त्यागकर गृहस्थ हो जाना बताया गया है।[113] सारिपुत्त से भिक्षु के उपाध्याय ने कहा कि उनका शिष्य शिक्षा छोड़कर घर गृहस्थी में लौट गया है। सारिपुत्त ने इसके तीन कारण बतलाये, जिनके कारण कोई ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर पाता– 1. इन्द्रियों में असंयत रहना, 2. भोजन की मात्रा न जानन तथा 3. जागरणशील नहीं होना। इसकी विस्तृत व्याख्या की गयी है–

इन्द्रियों में संयती–इन्द्रियों में रूपादि को देख न उसमें मन ललचाता है, न स्वाद लेता है। असंयत अवस्था में बैठे लोभ, द्वेष एवं पापमय अकुशल धर्मो के संवर के लिए प्रयत्नवान् होता है, चक्षुआदि इन्द्रियों की रक्षा करता है, संयत करता है।

भोजन की मात्रा समझने वाला–सावधानीपूर्वक भोजन करता है। न दव के लिए, न मद के लिए, न ठाट–बाट के लिए, किन्तु शरीर की रक्षा के लिए, विहिंसा की उपरति के लिए, ब्रह्मचर्य के अनुग्रह के लिए भोजन करता है। इस प्रकार वह सोचता है कि पुरानी वेदनाएं कम कर रहा है, नई उत्पन्न नहीं कर रहा है, उसका जीवन निर्दोष और सुखपूर्वक बीतेगा।

जागृत रहने वाला–दिन में चंकमण कर और आसन लगाकर आवरण में डालने वाला धर्मो से चित्त को शुद्ध करता है। रात्रि के प्रथम याम में चंकमण कर और आसन लगाकर रहता है। रात्रि के मध्यम याम में दाहिने करवट पैर पर पैर रख सिंहशेय्या लगा स्मृतिमान्, संप्रज्ञ और उत्साहशील रहता है। रात्रि के पिछले याम में चंकमण कर आसन लगा आवरण में डालने वाले धर्मो से चित्त शुद्ध करता है।[114]

प्रमुख भिक्षु परिचय

सारिपुत्त :–

सारिपुत्त का विस्तृत विवरण संयुत्तनिकाय में मिलता है, इनको प्रज्ञावान् भिक्षुओं में अग्र कहा गया है।[115] इनका परिनिर्वाण भगवान् के सामने ही हो गया था। भगवान् ने इनके परिनिर्वाण के समय कहा था कि अब उनको दिशाएं सूनी–सी जान पड़ रही हैं, जिस दिशा में सारिपुत्त और मौद्गल्यायन रहते थे, वह दिशा सुशोभित रहती थी।[116] सारिपुत्त के परिनिर्वाण प्राप्त करने पर भगवान् कहते हैं कि– भगवान् सारिपुत्त की कृतज्ञता इसलिए स्मरण करते हैं क्योंकि वे उपदेश देने वाले, दिखाने वाले, बताने वाले, उत्साहित और हर्षित करने वाले, गुरुभाइयों की नासमझी को दूर करने वाले थे।[117] सारिपुत्त से भिक्षु[118] एवं भगवान् भी अनेक प्रश्न पूछते रहते थे। एक बार सारिपुत्त भगवान् के प्रश्न को समझ नहीं पाये, इसलिए उन्होंने प्रश्न का उत्तर नहीं दिया, जब उनको प्रश्न स्पष्ट हो गया तो उन्होंने उत्तर दिया और कहा कि चूँकि

उन्होंने प्रतीत्यसमुत्पाद को भलीभाँति समझ लिया है, इसलिए वे सभी प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। जिसका समर्थन भगवान् ने भी किया था।[119]

सारिपुत्त द्वारा भगवान् के प्रति सींहनाद किए जाने पर कि भगवान् से बढ़कर कोई महापुरुष नहीं है। भगवान् उसका भी स्पष्टीकरण करवाते हैं। उत्तर में सारिपुत्त धर्मविनय के आधार पर भगवान् की श्रेष्ठता की पुष्टि करते हैं। सारिपुत्त के उत्तर से सन्तुष्ट हो भगवान् सारिपुत्त से कहते हैं कि वे धर्म की एसी बात को भिक्षु, भिक्षुणी उपासक, उपासिकाओं को बतलाते रहे, जिससे यदि किसी को बुद्ध में शंका हो तो दूर हो जाय।[120]

एक सुत्त में आनन्द सारिपुत्त से पूछते हैं कि उनको लोक में किसी के विपरिणत होने से कष्ट तो नहीं होगा? सारिपुत्त कहते हैं कि–उनको लोक में किसी के भी विपरिणत होने से कष्ट नहीं होगा। आनन्द जब पूछते हैं कि भगवान् के विपरिणत होने से भी नहीं? तब सारिपुत्त कहते हैं कि उनको भगवान् के विपरिणत होने से शोक नहीं होगा, अपितु यह होगा कि भगवान् चिरकाल रहें तो जनता का चिरकाल तक हित–सुख होगा।[121]

सारिपुत्त संयुत्त में इनको प्रसन्न इन्द्रिय एवं शुद्ध मुख की कांति वाला कहा गया है। ये चार रूपध्यानों एवं चार अरूपध्यानों तथा संज्ञावेदयित निरोध की अवस्था में विहार करते थे।[122] इनको सात सम्बोध्यंगों की भावना में विहार करते हुए भी बताया गया है।[123]

सारिपुत्त के परिनिर्वाण प्राप्त होने पर भगवान् उनकी कृतज्ञता स्मरण करते हैं लेकिन उनके द्वारा शीलस्कन्ध, समाधिस्कन्ध, प्रज्ञास्कन्ध, विमुक्तिस्कन्ध या विमुक्ति–ज्ञान–दर्शन के लिए परिनिर्वाण प्राप्ति का खण्डन करते थे।[124]

सारिपुत्त के प्रति कुछ भिक्षु इर्ष्या रखते थे। कोकालिक भिक्षु सारिपुत्त एवं मोद्गल्यायन को पापेच्छ कहता था एवं उनकी निन्दा करता था। ब्रह्मा कोकालिक भिक्षु की निन्दा करता है, उसे नरकगामी बतलाता है।[125] भगवान् आनन्द से पूछते हैं कि उनको सारिपुत्त अच्छा लगता है कि नहीं? जिसके उत्तर में आनन्द सारिपुत्त की प्रशंसा करते हैं तथा इनको महाज्ञानी, महाप्रज्ञ, पण्डित, प्रसन्नप्रज्ञा, तीव्रप्रज्ञा, तीक्ष्णप्रज्ञा वाला बतलाते हैं। उन्होंने सारिपुत्त को अल्पेच्छ, सन्तोषी, विवेकी, अनासक्त, उत्साही, वक्ता, वचन–कुशल, पाप की निन्दा करने वाला कहा है। इन गुणों का समर्थन करते हुए देवपुत्र, सारिपुत्त को पण्डित, ज्ञानी, कोध रहित, अल्पेच्छ, दान्त, ऋषि बुद्ध के तेज का लाभ करने वाला कहता है। भगवान् भी इन गुणों को दुहराते हुए कहते हैं कि सारिपुत्त अपनी मजदूरी की राह देख रहा है।[126]

सारिपुत्त भिक्षुओं के प्रति अनुकम्पक–भाव रखते थे। छन्न भिक्षु के बीमार होने पर एवं आत्महत्या करने की इच्छा प्रकट होने पर सारिपुत्त उसे रोकते हुए कहते

हैं कि– छन्न आत्महत्या न करें। यदि उनको भोजन नहीं मिलता तो वे स्वयं भोजन ला दिया करेंगे। यदि दवा नहीं मिलती तो दवा ला दिया करेंगे। यदि कोई अनुकूल सेवा करने वाला नहीं मिलता तो सेवा कर दिया करेंगे।[127]

जम्बुखादक संयुत्त में सारिपुत्त धर्म–दर्शन के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर देते हैं।[128] अनाथपिण्डिक गृहपति को इनके प्रति श्रद्धालु बताया गया है।[129]

महामोद्गल्यायन :–

महामोद्गल्यायन को ऋद्धिधारियों में अग्र बताया गया है।[130] चार ऋद्धिपादों की भावना एवं अभ्यास करने से इनको ऋद्धि की प्राप्ति हुई थी।[131] ऋद्धि से सम्बन्धित इनके विभिन्न प्रसंग मिलते हैं।[132] ये दूसरों के चित्त की बात को अपनी ऋद्धि से जान लेते थे। बौद्ध–शासन की प्रतिष्ठा के लिए अपनी ऋद्धि का उपयोग करते थे।

त्रायस्त्रिंश लोक में जाकर इन्होंने बुद्ध धर्म एवं संघ का महत्त्व प्रतिपादित किया था।[133] ब्रह्मलोक में जाकर ब्रह्मा की बुरी दृष्टि दूर की। एक बार जब मृगारमाता के प्रासाद में कुछ भिक्षु उपद्रव कर रहे थे तब भगवान् ने इनको समझाने के लिए भेजा। इन्होंने अपनी ऋद्धि से पूरे प्रासाद को हिला दिया एवं भिक्षुओं को संविग्न किया।[134]

भगवान् इनको अपनी उपस्थिति में उपदेश देने के लिए कहते थे।[135] अन्य भिक्षु भी इनसे अव्याकृत जैसे प्रश्नों को पूछते थे।[136] लक्खण–संयुत्त में भगवान् एवं मौद्गल्यायन की विस्तृत वार्ता का उल्लेख है, जिसमें ये भगवान् से विभिन्न कंकालों को देखकर उनके पूर्वजन्म की गति के सम्बन्ध में पूछते हैं।[137]

इनको आर्यतृष्णीभाव एवं द्वितीय ध्यान में विहरते बताया गया है।[138]

गृद्धकूट पर्वत पर इनके बीमार होने पर भगवान् इनके पास जाते हैं और इनको सात सम्बोध्यंगों की भावना की सलाह देते हैं।[139] वंगीस द्वारा इनकी स्तुति गाथाओं में की गई थी।[140]

आनन्द :–

इनको वैदेह मुनि कहा गया है।[141] वैदेह से तात्पर्य विदेह देशवासी तथा बुद्धिमान है।[142] ये बहुश्रुत के रूप में प्रसिद्ध थे।[143] इन्होंने भगवान् की सेवा करने का अवसर प्राप्त किया था।[144]

भगवान् द्वारा किसी बात की चर्चा करने पर आनन्द की यह विशेषता थी कि वे उनसे निवेदन कर उस बात का स्पष्टीकरण करवा लेते थे।[145] भगवान् की भी यह विशेषता थी कि वे धर्मचर्चा आदि अनेक प्रसंग आनन्द को सुनाया करते थे।[146]

आनन्द ने अनेक सुत्तों का उपदेश दिया था। आनन्द द्वारा प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धान्त को सीधा एवं सरल कहे जाने पर भगवान् ने आनन्द को ऐसा कहने से रोका एवं बतलाया कि प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धान्त कठिन है, इसी को न समझ पाने के कारण

ही प्रजा उलझी हुई है।[147]

संयुत्तनिकाय में भगवान् के साथ आनन्द का वह चर्चा प्रसंग भी वर्णित है, जिसमें कहा गया है कि भगवान् के द्वारा कल्प भर जीवित रहने की तीन बार इच्छा व्यक्त किए जाने पर भी आनन्द चुप रहे। जीवित रहने का निवेदन नहीं किया क्योंकि मार ने उनकी बुद्धि पलट दी थी।[148]

महाकाश्यप :–

महाकाश्यप धुतांग धारण करने वालों में अग्र एवं अनुकरणीय थे।[149] भगवान् द्वारा उपदेश के लिए कहे जाने पर महाकाश्यप उपदेश देना स्वीकार नहीं करते हैं। वे कहते हैं कि भिक्षुसंघ अपरिशुद्ध है नियमानुसार आचरण नहीं कर सकता है।[150] भिक्षुओं की शिथिलता पर वे कड़ी भर्त्सना करते हैं।[151]

थुल्लतिस्सा भिक्षुणी उनको पहले का अन्यतैर्थिक कहती है जबकि महाकाश्यप अपने को कहते हैं कि– उनकी प्रव्रज्या गुदड़ी पर चीवर, सिर मुड़वाने एवं कषाय वस्त्र धारण से हुई थी। इन्होंने भगवान् के अलावा किसी और को गुरु नहीं माना था। एक बार भगवान् ने महाकाश्यप की संघाटी की प्रशंसा की तो महाकाश्यप ने अपनी मुलायम संघाटी भगवान् को दे दी एवं उनकी रुखी संघाटी स्वयं ले ली थी।[152] महाकाश्यप जीवन पर्यन्त चार प्रत्ययों से ही सन्तुष्ट रहे। भगवान् के कहने पर भी कि वे वृद्ध हो गए हैं, पांसुकूल को छोड़ गृहस्थों के चीवर, भिक्षान्न को छोड़ निमंत्रण भोजन स्वीकार करें तथा भगवान् के पास रहे, लेकिन महाकाश्यप कहते हैं कि वे इस जन्म में सुखपूर्वक विहरने तथा भविष्य में जनता के अनुकम्पार्थ पहले से ही आरण्यक, पिण्डपातिक, पांसुकूलिक, तीन चीवर धारण करने वाले, अल्पेच्छ, सन्तुष्ट, एकान्तवासी, असंसृष्ट और उत्साह शील रहे हैं तथा इसी में अपनी संतुष्टि बतलाते हैं।[153]

सद्धर्म की स्थिति एवं उसके भविष्य की चिन्ता रहती थी। ये भगवान् से सद्धर्म की स्थिति एवं अवनति के कारणों पर चर्चा करते रहते थे।[154] ध्यान अभिज्ञा में इनको भगवान् ने अपने समान बतलाया है।[155]

वंगीस :–

वंगीस का परिचय कवि के रूप में मिलता है। वंगीस का भिक्षु अवस्था के पूर्व का जीवन कविताजीवी के रूप में बतलाया गया है। ये घूमते हुए कविता पढ़ते रहते थे। भगवान् के दर्शन के पश्चात् वे भगवान् के पांच उपादानस्कन्धों के उपदेश से प्रभावित हुए और प्रव्रजित हो गए।[156] इनके उपाध्याय आयुष्मान् निग्रोधकल्प थे।[157]

प्रांरभिक अवस्था में ये कामराग से उद्दीप्त रहते थे। स्त्रियां इनको घेरे रहती थीं।[158] आनन्द इनको कामराग से बचने के लिए शरीर की अशुभ भावना तथा घमण्ड त्यागने की सलाह देते हैं।[159] इन्होंने कामराग पर विजय प्राप्त कर ली थी तथा अर्हत् पद प्राप्त कर लिया था।[160]

वंगीस अपनी तुरन्त रचित गाथाओं से प्रमुख भिक्षुओं सहित भगवान् की स्तुति करते हैं।[161] भगवान् इनकी कविताशक्ति पर आश्चर्य व्यक्त करते हैं।[162]

अनुरुद्ध :–

अनुरुद्ध दिव्य चक्षुवाले भिक्षुओं में अग्र थे।[163] इन्होंने चार स्मृति प्रस्थानों का पूर्ण अभ्यास किया था तथा चार स्मृतिप्रस्थानों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किए थे।[164] भगवान् के परिनिर्वाण होने पर इनके द्वारा कहा गया उदान परिनिर्वाण सुत्त में संगृहीत है।[165]

उपालि :–

इनको विनयधर भिक्षुओं में अग्र कहा गया है।[166] संयुत्तनिकाय में इनका विस्तृत परिचय नहीं मिलता, इन्होंने ही प्रथम संगीति में विनय सम्बन्धी बुद्ध वचनों का संगायन करवाया था।[167]

पुण्णमन्तानिपुत्तः–

इनको धर्मकथिक भिक्षुओं में अग्र कहा गया है।[168] ये भिक्षुओं को उपदेश देते थे। नए भिक्षु इनके धर्मोपदेश से बहुत शीघ्र 'स्रोतापन्न' हो जाते थे। भिक्षु इनको अपना उपकारक कहते हैं।[169]

महाकप्पिन :–

इनको महाऋद्धिधारी बतलाया गया है। इनको दुबला–पतला, ऊँची नाक वाला और गौरवर्ण कहा गया है। इन्होंने असुलभ समापत्तियां एवं ब्रह्चर्य के अन्तिम–फल को प्राप्त किया था।[170]

महाकात्यायन :–

इन्होंने गृहपति हालिद्दिकानि द्वारा पूछे गए अट्ठकवग्ग के मागन्दिय प्रश्नों की व्याख्या की थी।[171]

राहुल :–

राहुल संयुत्त में इनको 'अनित्यता' का उपदेश दिया गया है।[172] राहुलोवादसुत्त में इनके द्वारा अर्हत फल की प्राप्ति का वर्णन है।[173] ये भगवान् के पुत्र थे।[174]

तिस्स :–

ये भगवान् के चचेरे भाई थे। इनको विचिकित्सा उत्पन्न हो गई थी, उनका उत्साह समाप्त हो गया था। उन्हें दिशाएं नहीं सूझती थीं, धर्म का ख्याल नहीं रहता था। चित्त में आलस्य हो गया था, अनिच्छापूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करते थे। भगवान् ने इनको बुलाकर अनात्मवाद का उपदेश दिया था, जिससे ये उत्तम मार्ग पर आरूढ़ हुए थे।[175]

छन्न :–

इनको वातरोग की पीड़ा उत्पन्न हो गई थी। इनका वेदना के सम्बन्ध में बतलाया गया है कि जैसे कोई बलवान् पुरुष सिर में कसकर रस्सी लपेट दे, वैसे ही सिर में पीड़ा होती थी, जैसे कोई गोघातक तेज छुरे से पेट काटे वैसे ही पेट में बात से पीड़ा होती थी। जैसे दो बलवान् पुरुष किसी निर्बल पुरुष को बांह पकड़कर धधकती आग में तपावे, वैसे ही पूरा शरीर दहकता था। अन्त में इन्होंने आत्महत्या कर ली थी।[176]

उपसेन :– उपसेन भिक्षु की मृत्यु सांप के डसने के कारण बतलाई गई है।[177]

खेमक :–

इनके बीमार होने पर भगवान् ने पांच उपादानस्कन्धों का उपदेश दिया था जिससे वे ठीक हो गये थे।[178]

देवदत्त :–

देवदत्त पापेच्छ भिक्षुओं में प्रसिद्ध था। उसने लाभ–सत्कार–प्रशंसा के लिए संघभेद किया था। उसके लिए कुमार अजातशत्रु 500 रथों के साथ उपस्थान के लिए आया करता था एवं 500 थाली भोजन भिजवाया करता था।[179] देवदत्त के लाभ को भगवान् ने केला के फल के समान स्वयं हानिकर बतलाया है।[180]

कोकालिक :–

यह भिक्षु भी पापेच्छ था। इसको सारिपुत्त एवं मोद्गल्यायन की निन्दा के कारण नरकगामी बतलाया गया है।[181]

यमक :–

इसे भी पाप दृष्टि उत्पन्न बतलाया गया है।[182]

इनके अतिरिक्त बाहिय, भद्र, मृगजाल, नन्दक, गोदत्त, जानुश्रोणि, महाकोट्ठित, महाचुन्द, उपसेन, ऋषिदत्त, कामभू, किम्बिल, अञ्कोण्ड, अभिञ्जक, कप्प, कोणागमन, कतमोटक, उपवान, ब्रह्मदेव, बट्ठलि भण्ड और अभि जर आदि भिक्षुओं की चर्चा विभिन्न प्रसंगों में मिलती है।

प्रमुख भिक्षुणी परिचय

संयुत्तनिकाय में भिक्षुणियों से सम्बन्धित विवरण बहुत कम मिलते हैं। भिक्षुणी संयुत्त में दस भिक्षुणियों का संवाद मार के साथ वर्णित है। तथा कुछ अन्य सुत्तों में भी एक–दो प्रसंग मिलते हैं। भिक्षुणी–संघ नाम से कोई वर्णन नहीं है।

क्षेमा और उत्पलवर्णा :–

इन भिक्षुणियों को श्राविकाओं में आदर्श माना गया है।[183] क्षेमा भिक्षुणी की राजा प्रसेनजित् के साथ धर्मचर्चा वर्णित है। क्षेमा भिक्षुणी को पंडित मेधाविनी, विदुषी,

बोलने में चतुर, अच्छी सूझवाली बताया गया है। राजा प्रसेनजित् धर्म–चर्चा के लिए उपर्युक्त समझकर अव्याकृत के संबंध में प्रश्न पूछता है।[184] उत्पलवर्णा भिक्षुणी से मार आकर कहता है कि सुन्दरी तुमको बदमाशों से डर नहीं लगता। भिक्षुणी कहती है– उसे एक या सौ बदमाशों से डर नहीं लगता। चित्त के वशीभूत हो जाने से उसने ऋद्धियां प्राप्त कर ली हैं। वह अन्तर्धान हो सकती है। सामने रहते भी उसे देख नहीं सकता। इस भिक्षुणी को सभी बन्धनों से मुक्त बताया गया है।[185]

आलविका भिक्षुणी :–

यह श्रावस्ती के अन्धक बन में एकान्तवास कर रही थी। मार इसको डरा, कंपा, रोये खड़ा कर देने, और शान्ति को तोड़ देने की इच्छा से कहता है– संसार से छुटकारा नहीं है, एकान्त सेवा से कोई फल नहीं है, सांसारिक कामों का उपभोग करो, जिससे पीछे पछताना न पड़े। भिक्षुणी जवाब में कहती है कि सांसारिक कामभोग तीर–भाले जैसे हैं, उसमें उसकी कोई रुचि नहीं। उसने जो प्रज्ञा से प्राप्त कर लिया है, उसे प्रमत्तबन्धु–मार नहीं जान सकता है।[186]

सोमा भिक्षुणी :–

इसका उल्लेख अन्धकबन में एक वृक्ष के नीचे विहार के लिए बैठे हुए किया गया है। मार आकर कहता है कि दो अंगुल प्रज्ञा वाली स्त्रियां ऋषि के लोगों के पद को प्राप्त नहीं कर सकतीं। सोमा भिक्षुणी ने कहा कि जब चित्त समाहित हो जाता है, ज्ञान उपस्थित रहता है तथा धर्म का पूर्ण साक्षात्कार हो जाता है तो स्त्री–भाव को कोई प्रभाव नहीं पड़ता।[187]

कृषा गौतमी :–

इनसे मार आकर कहता है कि– एकान्तवास में पुत्र के मृत्यु शोक में पड़ी जैसी, अकेली रोती जैसी किसी पुरुष की खोज में बैठी हो क्या? कृषा गौतमी पापी मार को पहचान कर कहती है कि–पुत्र मृत्यु के शोक से ऊपर उठी, उसकी पुरुष की खोज जाती रही। न शोक करती है, न रोती है, न हंसती है, प्रमत्त संसार में स्वाद लेना भी छूट गया, अज्ञानांधकार हटा दिया गया, मृत्यु–राग को जीत, आस्रव से रहित विहार करती है।[188]

विजया भिक्षुणी :–

इससे मार आकर कहता है कि–कम उम्र वाली तुम सुन्दरी मैं नया कुमार हूँ। आओ, पंचांगिक साज के साथ मौज उड़ावें। भिक्षुणी जवाब देती है कि लुभावने कामों से उसकी कोई आवश्यकता नहीं, गंदगी से भरे क्षणभंगुर शरीर से उसको घृणा होती है। उसकी तृष्णा मर गयी है। उसको इहलोक, परलोक, एवं ध्यान की अवस्थाओं में किसी भी प्रकार से अज्ञान नहीं रह गया।[189]

चाला भिक्षुणी :–

इनसे मार आकर पूछता है कि तुमको जन्म ग्रहण क्यों नहीं अच्छा लगता? चाला भिक्षुणी जन्मग्रहण के दोष समझाती है।[190]

उपचाला भिक्षुणी :–

इनको मार विभिन्न देव लोगों में ध्यान लगाने के लिए कहता है, लेकिन भिक्षुणी अपना अलग ध्यान–स्थल बतलाती है।[191]

शीर्षोपचाला भिक्षुणी :–

इनसे मार आकर पूछता है कि तुमको कौन–सा सम्प्रदाय अच्छा लगता है? भिक्षुणी के कहे जाने पर कि उसको कोई सम्प्रदाय अच्छा नहीं लगता है, मार पुनः पूछता है कि जब उसे कोई सम्प्रदाय से रुचि नहीं है तो सिर मुड़ाकर भिक्षुणी जैसे क्यों भटक रही है। भिक्षुणी भगवान् को अपना शास्ता बतलाती हुई, धर्म को सम्प्रदाय के बाहर कहती है।[192]

सेलाभिक्षुणी :–

इनसे मार आकर दार्शनिक प्रश्न पूछता है कि इस पुतले को किसने खड़ा किया है? कैसे बड़ा हुआ? कहां से पैदा हुआ? इसका निरोध कहां होगा? जिसके उत्तर में भिक्षुणी कहती है कि यह हेतु के होने से होता है। हेतु के दब जाने से दब जाता है।[193]

वजिरा भिक्षुणी :–

इससे भी मार प्राणियों के उत्पत्ति आदि के संबंध में प्रश्न पूछता है। वजिरा भिक्षुणी कहती है कि प्राणी यथार्थ में कोई नहीं है। जैसे अवयवों के मिला देने से रथ जाना जाता है, इसी प्रकार पांच स्कन्ध उपादानों के संयोग से प्राणि कहा जाता है। दुःख ही उत्पन्न होता है, रहता है, चला जाता है, दुःख को छोड़ कुछ भी पैदा नहीं होता, उसीका निरोध होता है।[194]

थुल्लनंदा भिक्षुणी का भी उल्लेख मिलता है, जो आनन्द को सम्मान देती थी। महाकाश्यप द्वारा आनन्द के सामने उपदेश दिये जाने पर वह महाकाश्यप को सूई बेचने वाले के समान कहती है। इसी प्रकार आनन्द को "कुमार" कहे जाने पर भी महाकाश्यप को सूई बेचने वाले के समान कहती है। थुल्लतिस्सा भिक्षुणी को इस अपराध के कारण धर्म से च्युत कहा गया है।[195]

इस प्रकार इन वर्णनों से स्पष्ट होता है कि भिक्षुणियों दक्ष एवं अर्हत् पद पर आरूढ़ थीं। स्त्री जाति के नाम से उनमें कोई हीन भावना नहीं थी। नन्दा[196] एवं अशोका[197] भिक्षुणी की अच्छी जाति बताई गई है।

संदर्भ–विवरण

1. भिक्षुणी– संघ, पृ. 1 प्राक्क्थन,
2. द्वि. आ. अ. मो. ट., पृ. 209
3. महावग्ग, पृ. 6
4. महावग्ग, पृ. 16
5. संयुत्त. 5, पृ. 360
6. महावग्ग, पृ. 20
7. संयुत्त. 1, पृ. 105 एवं महावग्ग पृ. 23
8. महावग्ग, पृ. 24
9. विनयपिटक (हिन्दी) पृ. 82 पादटिप्पण
10. महावग्ग, पृ. 24
11. संयुत्त. 1, पृ. 161–171
12. महावग्ग, पृ. 20
13. महावग्ग, पृ. 41
14. महावग्ग, पृ. 54
15. वही पृ. 55
16. ये ते, भिक्खवे, अग्गिका जटिलका, ते आगता उपसम्पादेतब्बा, न तेसं परिवासो दातब्बो। तं किस्स हेतु? कम्मवादिनो एते, भिक्खवे, किरियादिनो। सचे, भिक्खवे, जातिया साकियो अञ्तितित्थियपुब्बो आगच्छति, सो आगतो उपसम्पादेतब्बो, न तस्स परिवासो दातब्बो।वही. पृ. 76
17. संयुत्त. 2, पृ. 20
18. महावग्ग, पृ. 73–75
    विस्तार के लिए देखिए– डिआ. अ. मो.ट., पृ. 144–145
19. 'भिक्खु भगवा पकासेसि नोच भिक्खुनो अनुसासं' ति। संयुत्त. 1, पृ. 43
20. संयुत्त. 2, पृ. 187
21. वही 2, पृ. 163
22. वही 2, पृ. 169
23. संयुत्त. 2, पृ. 174
24. पिण्डियालोपभोजनं निस्साय पब्बज्जा, तत्थ ते यावजीवं उस्साहो करणीयो, अतिरेकलाभो–सङ्घभत्तं, उद्देसभत्तं, निमन्तनं, सलाकभत्तं, पक्खिकं, उपोसथिकं, पाटिपदिकं। महावग्ग, पृ. 55
25. संयुत्त. 3, पृ. 223
26. वही 2, पृ. 225
27. संयुत्त. 2, पृ. 165
28. वही पृ. 166
29. वही पृ. 223
30. वही पृ. 225
31. वही 1, पृ 59

32. वही 3, पृ. 453

33. ''नदीतीरेसु सण्ठाने, सभासु रथियासु च।
जना सङ्गम्म मन्तेति, मं च तं च किमन्तरं''ति।। संयुत्त. 1, पृ. 202

34. वही

35. संयुत्त. 2, पृ. 182

36. डि. आ. अ. मो. ट. पृ. 106

37. संयुत्त. 3, पृ. 317

38. ''न तेन भिक्खको होति, यावता भिक्खते परे।
विस्सं धम्मं समादाय, भिक्खु होति न तावता।।
''योध पुञ्ञं च पापं च, बाहित्वा ब्रह्मचरियं।
सङ्खाय लोके चरति, स वे भिक्खू ति वुच्चती''ति।। वही 1, पृ. 182

39. पंसुकूलचीवरं निस्साय पब्बज्जा, तत्थ ते यावजीवं उस्साहो करणीयो, अतिरेकलाभो—खेमं, कप्पासिकं, कोसेय्यं, कम्बलं, साणं, भंगं। महावग्ग, पृ. 55

40. संयुत्त. 2, पृ. 175

41. विनयपिटक (हिन्दी) पृ. 17 पादटिप्पण 2

42. संयुत्त. 2, पृ. 184

43. 'रुक्खमूलसेनासनं निस्साय पब्बज्जा, तत्थ ते यावजीवं उस्साहो करणीयो, अतिरेकलाभोविहारो, अड्ढयोगो, पासादो, हम्मियं, गुहा। महावग्ग, पृ. 55

44. संयुत्त. 1, पृ. 198—206

45. वही पृ. 205

46. संयुत्त. 1, पृ. 205—206

47. वही 1, पृ. 200

48. वही 1, पृ. 202

49. वही 1, पृ. 203

50. वही 1, पृ. 202

51. संयुत्त. 2, पृ. 223

52. वही 1, पृ. 198

53. 'पूतिमुत्तभेसज्जं निस्साय पब्बज्जा, तत्थ ते यावजीवं उस्साहो करणीयो, अतिरेकलाभो—सप्पि, नवनीतं, तेलं, मधु, फाणितं ति।' महावग्ग, पृ. 55

54. संयुत्त. 4, पृ. 188—189

55. वही 1, पृ. 174—175

56. वही 4, पृ. 188—191

57. वही 4, पृ. 52—56

58. पातिमोक्ख, पृ. 6 भूमिका

59. संयुत्त. 1, पृ. 59

60. वही 5, पृ. 161

61. वही 3, पृ. 323

62. वही 3, पृ. 456

63. पातिमोक्ख, भूमिका पृ. 8

64. संयुत्त. 1, पृ. 159
65. संयुत्त. 5, पृ. 130–31
66. पातिमोक्ख, पृ. 8 भूमिका
67. इसिपतन, पृ. 31 (अंग 1)
68. संयुत्त. 1, पृ. 190
69. 'सुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, उजुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो,
यप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, सामीचिप्पटिपन्नो भगवतो
सावकसङ्घो, यदिदं–चत्तारि पुरिसयुगानि अट्ठ पुरिसपुग्गला, एस
भगवतो सावकसङ्घो आहुनेय्यो पाहुनेय्यो दक्खिणेय्यो अञ्जलिकरणीयो
अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा' ति। संयुत्त. 5, पृ. 291
70. विशुद्धि मार्ग (हिन्दी) भाग 1, पृ. 200
71. "चत्तारो च पटिपन्ना, चत्तारो च फले ठिता।
एस स उजुभूतो, पञ्ञासीलसमाहितो।। संयुत्त. 1, पृ. 234
72. संयुत्त. 5, पृ. 299
73. वही 5, पृ. 295
74. दृष्टव्य– सोतापत्ति संयुत्त वही 5, पृ. 291–354
75. संयुत्तनिकाय (हिन्दी) भाग 2 पृ. 714 पादटिप्पण 6, 7
76. संयुत्त. 3, पृ. 439
77. वही 5, पृ. 304
78. संयुत्त. पृ. 152
79. वही 5, पृ. 714
80. संयुत्तनिकाय (हिन्दी) भाग 2 पृ. 714, पादटिप्पण 1–5
81. संयुत्त. 3, पृ. 309
82. वही 4, पृ. 114
83. वही 1, पृ. 43
84. "हित्वा अगारं पब्बजिता, हित्वा पुत्तं पसुं वियं। हित्वा रागं च दोसं च, अविज्जं च विराजिय।
खीणासवा अरहन्तो, ते लोकस्मिं अनुस्सुका" ति।। संयुत्त. 1, पृ. 16
85. वही 5, पृ. 174
86. ये च खो ते, भिक्खवे, भिक्खू अरहन्तो खीणासवा वुसितवन्तो कतकरणीया ओहितभारा
अनुप्पत्तसदत्था परिक्खीणभवसंयोजना सम्मदञ्ञाविमुत्ता तेसं आनापानस्सतिसमाधि भावितो
बहुलीकतो दिट्ठधम्मसुखविहाराय चेव संवत्तति सतिसम्पजञ्ञाय च। वही 5, पृ. 277–78
87. "गामे वा यदि वा रञ्ञे, निन्ने वा यदि वा थले।
यत्थ अरहन्तो विहरन्ति, तं भूमिरामणेय्यकं" ति।। संयुत्त. 1, पृ. 234
88. वही 1, पृ. 191
89. द्रष्टव्य, महावग्ग
90. "इदं हि जातु मे दिट्ठं, न यिदं इतिहीतिहं। एकस्मिं ब्रह्चरियस्मि, सहस्सं मच्चुहाहियनं।।
"भिय्यो पञ्चसता सेक्खा, दसा च दसधा दस। सब्बे सोतसमापन्ना, अतिरच्छानगामिनो।।
अथायं इतरा पजा, पुञ्ञभागा ति मे मनो। सङ्खातुं नो' पि सक्कोमि, मुसावादस्स ओत्तपं"ति।।
संयुत्त. 1, पृ. 155

91. वही 2, पृ. 132
92. अंगुत्तर. 1, पृ. 23
93. संयुत्त. 3, पृ. 316
94. वही 5, पृ. 317
95. वही 2, पृ. 102
96. संयुत्त. 1, पृ. 237
97. वही 1, पृ. 40
98. वही 2, पृ. 103
99. वही 4, पृ. 125
100. वही 4, पृ. 102
101. संयुत्त. 4, पृ. 103
102. वही 1, पृ. 46–47
103. संयुत्त. 1, पृ. 59–60
104. वही 1, पृ. 108
105. वही 2, पृ. 182
106. वही 1, पृ. 4
107. वही 2, पृ. 183
108. वही पृ. 181–182
109. संयुत्त. पृ. 170–172
110. वही 3, पृ. 234
111. वही पृ. 233
112. संयुत्त. 5, पृ. 230
113. वही 2, पृ. 182
114. संयुत्त 4, पृ 95
115. वही 2, पृ 132
116. वही 5, पृ 140
117. 'अपि च मे, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो ओवादको अहोसि ओतिण्णो विञ्ञापको सन्दस्सको समादपको समुत्तेजको सम्पहंसको, अकिलासु धम्मदेसना, अनुग्गाहको सब्रह्मचारीनं। तं मयं आयस्मतो सारिपुत्तस्य धम्मोजं धम्मभोगं धम्मानुग्गहं अनुस्सरामा''ति। वही 5, पृ. 139
118. संयुत्त. 4, पृ. 232
119. वही 2, पृ. 43–48
120. वही 5, पृ. 136–138
121. वही 2, पृ. 228
122. वही 3, पृ. 450–454
123. संयुत्त. 5, पृ. 67
124. वही पृ. 139
125. वही 1, पृ. 150

126. वही पृ. 61–64
127. संयुत्त. 4, पृ. 52–56
128. वही 4, पृ. 223–232
129. वही 1, पृ. 54
130. वही 2, पृ. 132
131. वही 5, पृ. 231
132. वही 5, पृ. 247
133. वही 5, पृ. 312
134. वही 5, पृ. 230
135. संयुत्त. 4, पृ. 165
136. वही 4, पृ. 335
137. वही 2, पृ. 211–218
138. वही 2, पृ. 227
139. वही 5, पृ. 75
140. वही 1, पृ. 195
141. वही 2, पृ. 182
142. पा. इ. डि. पृ. 684
143. संयुत्त. 2, पृ. 133
144. बुद्धचर्या, पृ. 315
145. संयुत्त. 5, पृ. 274
146. वही 2, पृ. 31
147. संयुत्त. पृ. 79
148. वही 5, पृ. 221–225
149. वही 2, पृ. 132
150. वही पृ. 171
151. दृष्टव्य, कस्सपसंयुत्त–पृ. 163–168
152. संयुझा. 2, पृ. 182–185
153. वही पृ. 169
154. वही पृ. 187
155. वही पृ. 176–180
156. संयुत्त. 1, पृ. 196
157. वही पृ. 186
158. वही पृ. 184–187
159. वही पृ. 188
160. संयुत्त पृ. 196
161. वंगीस संयुत्त, पृ. 185–197
162. वही पृ. 193
163. वही 2, पृ. 132
164. अनुरुद्धसंयुत्त, वही 5, पृ. 122–166

165. वही 1, पृ. 159
166. संयुत्त. 2, पृ. 133
167. बुद्धचर्या, पृ. 512
168. वही 2, पृ. 132
169. वही 3, पृ. 327
170. बुद्धचर्या 2, पृ. 236
171. वही 3, पृ. 248
172. वही 2, पृ. 203–210
173. वही 4, पृ. 96
174. जातकट्ठ. पृ. 46–65
175. संयुत्त. 3, पृ. 328
176. संयुत्त. 5, पृ. 52
177. वही 4, पृ. 36
178. वही 3, पृ. 346–351
179. संयुत्त. 2, पृ. 201
180. वही पृ. 200–201
181. वही 1, पृ. 150–153
182. वही 3, पृ. 331
183. संयुत्त. 2, पृ. 197
184. वही 5, पृ. 321
185. वही 1, पृ. 131–132
186. वही पृ. 128
187. "इत्थिभावो किं कयिरा, चित्तम्हि सुसमाहिते।
ञाणम्हि वत्तमानम्हि, सम्मा धम्मं विपस्सतो।।
संयुत्त. 1, पृ. 129
188. वही, पृ. 129–130
189. वही, पृ. 130
190. संयुत्त. पृ. 135
191. वही 1, पृ. 133
192. वही, पृ. 133–134
193. वही, पृ. 134
194. संयुत्त. पृ. 135
195. वही. 2, पृ. 182–183
196. वही, 5, पृ. 304
197. वही, पृ. 305

षष्ठ परिच्छेद

देशना

'देशना' से तात्पर्य भगवान् की शिक्षा से है। संयुत्तनिकाय में भगवान् के प्रथम आदेश (चारिका के लिए) से लेकर अन्तिम वचन एवं उसके बीच की विभिन्न शिक्षाएं मिलती हैं। जिससे भगवान् के उपदेश की विशेषताएं एवं उनका स्वरूप स्पष्ट होता है, जिसका यहां पर संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

भगवान् बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्ति के पश्चात् भिक्षुओं को आदेश दिया था कि वे सब 'बहुजन–हिताय–बहुजन–सुखाय' विचरण करें तथा स्वयं भी विचरने का निश्चय किया था। इसके बाद भगवान् अपने परिनिर्वाण के पहले तक तीन मास वर्षावास के अतिरिक्त विचरते हुए उपदेश देते रहे। वर्षावास में भी भगवान् विभिन्न विषयों पर उपदेश देते थे। संयुत्तनिकाय के विभिन्न प्रसंगों में भगवान् के धर्मप्रचार की सहिष्णुता का भी परिचय मिलता है। विविध प्रसंगों में सद्धर्म विरोधियों द्वारा बाधा पहुंचाए जाने पर भी भगवान् एवं उनके अग्रश्रावक विचलित नहीं होते थे।

मार से प्रारम्भ से ही भगवान् को उपदेश देने में बाधा पहुंचानी चाही थी। प्रारम्भ में भगवान् ने जब भिक्षुओं को सभी बन्धनों से मुक्त बतलाते हुए लोकानुकम्पार्थ विचरने के लिए आदेश दिया था तो मार ने आकर कहा कि वे सभी 'दिव्य लोक और मनुष्य लोक के बन्धनों से बंधे हुए हैं।'[1] इसी प्रकार उपदेश देने पर यक्ष ने भगवान् से कहा कि वे अनुरोध और विरोध के चक्कर में फंसे हुए हैं। जिसके उत्तर में भगवान् ने अपना परम् उद्देश्य प्राणियों पर 'अनुकम्पा' बतलाया।[2]

भिक्षु भी धर्म प्रचार के लिए तत्पर रहते थे। आयुष्मान् पूर्ण भिक्षु द्वारा सूनापरान्त जनपद में जाने की इच्छा व्यक्त करने पर भगवान् ने विभिन्न बाधाओं की ओर ध्यान इंगित किया लेकिन विचलित नहीं हुए। भगवान् ने सूनापरान्त के लोगों की दुष्टता का वर्णन करते हुए कहा कि वहां के लोग चण्ड और रुखे हैं, गाली देंगे, डाटेंगे। उत्तर में भिक्षु ने सन्तोष व्यक्त किया कि वह प्रसन्न होगा कि सूनापरान्त के लोग भद्र ही हैं कि वे मारते–पीटते नहीं है, मारने–पीटने पर वह सोचेगा कि भद्र ही हैं कि ढेले से नहीं मारते, ढेले से मारने पर सोचेगा कि लाठी से नहीं मारते, लाठी से मारने पर सोचेगा कि जान से नहीं मारते, तथा जान से भी मारने पर उनके लिए अच्छा ही होगा कि उसे किसी जल्लाद की जरूरत नहीं हुई क्योंकि भिक्षु लोग जीवन से अनुत्सुक होकर जल्लाद की तलाश किया करते थे। इस प्रसंग में पूर्ण भिक्षु की कितनी धर्मपरायणता है। वह अन्त में भगवान् की आज्ञा पाता है और सूनापरान्त जनपद में धर्म प्रचार करता है।[3]

देशना का कम :–

संयुत्तनिकाय के खेत्तूपमसुत्त से भगवान् की देशना के कम का भी पता चलता है। भगवान् उपदेश में प्राथमिकता सर्वप्रथम भिक्षु–भिक्षुओं को, उसके बाद उपासक– उपासिकाओं को तथा शेष समय दूसरे मतावलम्बियों को दिया करते थे। असिबन्धक ग्रमणी ने भगवान् पर आरोग लगाया कि भगवान् किसी को अधिक प्रेम से किसी को कम प्रेम से उपदेश देते हैं। भगवान् ने अपनी बात का स्पष्टीकरण उपमा द्वारा किया। भगवान् ने अपने श्रोताओं की तीन श्रेणियां बतलाई एवं उनको खेत एवं घड़ों की उपमा दी। भगवान् ने कहा कि जिस प्रकार कृषक सर्वप्रथम सबसे उत्तम खेत में, फिर मध्यम खेत में तथा उसके पश्चपात् बुरे खेत में बीज बोता है, उसी प्रकार भगवान् सर्वप्रथम भिक्षु– भिक्षुणियों को, फिर उपासक–उपासिकाओं को तथा उसके प्रश्चात् अन्य– मतावलम्बी श्रमण–ब्राह्मणों को उपदेश देते हैं। भिक्षु एवं भिक्षुणियों को अच्छे मटके के समान बतलाया है जिससे पानी बिल्कुल नहीं निकलता है, उपासक–उपासिकाओं को छिद्र रहित मटके के समान बतलाया है लेकिन उनमें से कुछ पानी निकल जाता है तथा अन्य मतावलम्बियों को छिद्र वाले मटके के समान बतलाया गया है। भिक्षु, भिक्षुणियों, उपासकों को उपदेश में प्राथमिकता देने का कारण यह बतलाया गया है कि वे भगवान् को अपना 'त्राण' समझकर विहार करते हैं तथा अन्यमतावलम्बियों को उपदेश देने का कारण उनके प्रति अनुकम्पा है कि थोड़ा भी समझ जाय तो उनके हित और सुख के लिए होगा।[4]

देशना के पात्र :–

जिसने चित्त की उच्छृंखलता को दबा दिया है, द्वेष को बिल्कुल छोड़ दिया है, उसी को उपदेश देना उचित बतलाया गया है। मैले चित्त वाले, झगड़ा करने को तैयार तथा विरोध भाव रखने वाले को उपदेश उचित नहीं बतलाया गया है।[5] वाद–विवाद करने वाले भिक्षु को भी उपदेश के अयोग्य ठहरा दिया गया था।[6] आलस्य, प्रमाद, उत्साहहीनता, असंमय, निद्रा और तन्द्रा इन छः स्थानों से युक्त रहने पर उपदेश नहीं ठहरता बतलाया गया है।

देशना की शैली :–

संयुत्तनिकाय में भगवान् बुद्ध को देशना की विभिन्न शैलियां प्राप्त होती हैं– संक्षिप्त कथन, विस्मृत, प्रश्नोत्तर, रूपक, उपमा आदि।

विभिन्न उपदेश जो भगवान् संक्षेप में कहते थे भिक्षुगण ज्येष्ठ भिक्षुओं से उनका स्पष्टीकरण करवा लिया करते थे।[7] भगवान् भी अग्र भिक्षुओं से संक्षेप कथनों की व्याख्या करने को कहते थे।[8] वे स्वयं भी विस्तृत व्याख्या करते थे।[9] प्रश्नोत्तर की दृष्टि से संयुत्तनिकाय का प्रथम 'सगाथवर्ग' महत्त्वपूर्ण है। इसमें उत्तर तुकबन्दी पूर्ण भी दिए गए हैं। उदय ब्राह्मण द्वारा कहे जाने पर कि भगवान् बार–बार भिक्षा लेने

आते हैं, भगवान् उन सभी बातों को गिना देते हैं, जो चीजें बार–बार की जाती हैं।[10] इन्द्रक यक्ष ने पूछा कि रूपजीव नहीं है तो यह शरीर कहां से आया? भगवान् शरीर को उत्पत्ति और विकास का पूरा कम बतला देते हैं।[11] रूपक के माध्यम से विभिन्न धर्मो का स्पष्टीकरण किया गया है। चार महाभूतों को चार विषैले सर्प के समान, पांच उपादानस्कन्धों को पीछे आनेवाले बन्धकों के समान, तृष्णा एवं राग को गुप्त वधक के समान, छः आध्यात्मिक आयतनों को शून्यग्राम के समान, बाह्य आयतनों को चोर डाकुओं के समान, चार बाढ़ों को पानी की झील के समान, सत्कायदृष्टि को इस पार आशंका और भय से युक्त तथा निर्वाण को उस पार आशंका और भय से रहित, आर्यअष्टांगिक मार्ग को वेड़े के समान, वीर्य को हाथ पैर चलाने के समान तथा अर्हत् को पार किया निष्पाप स्थल पर खड़ा हुआ बतलाया है।[12] कृषिभरद्वाजसुत्त में भगवान् अपने को कृषक बतलाते हुए श्रद्धा को बीज, तप को वृष्टि, प्रज्ञा को हल, लज्जा को हरिस, मन को जोत, स्मृति को फाल एवं छकुनि, वीर्य को बैल, विश्राम को सोरचा तथा सत्त्व को निराई करते अमृत की उपज करनेवाला बतलाया है।[13] भगवान् से पूछे जाने पर कि यात्रा कैसे कटेगी? भगवान् कहते हैं कि धर्म रूपी रथ पर बैठने से परम लक्ष्य (निर्वाण) की प्राप्ति होगी। धर्म को रथ का पहिया, ट्ढी को वचाव, स्मृति को बिछी हुई चादर, धर्म को सारथी, सम्यक्–दृष्टि को आगे दौड़ने वाला तथा निर्वाण को परम लक्ष्य बतलाया गया है।[14] उपमा द्वारा समझाया गया है कि अभिमान अनाज है, कोध धुआं, मिथ्या भाषण राख, जीव सुवा, हृदय जलाने की जगह, धर्म जलाशय तथा शील घाट है जिससे निर्मल और सज्जनों से प्रशस्त ज्ञानी पुरूष पार हो जाते हैं। सत्व, धर्म, संयम तथा ब्रह्मचर्य से युक्त मध्यममार्ग को श्रेष्ठ बतलाया गया है।[15] धर्माचरण की प्रेरणा देते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार समतल रास्ते को छोड़ देने से गाड़ी का धुरा टूट जाता है उसी प्रकार धर्म को छोड़ने से नुकसान होता है, इसलिए धर्माचरण करना चाहिए।[16] चार प्रकार के आहारों में राग रखने से आगे पुनर्जन्म का बन्ध होता है। जिस प्रकार विभिन्न प्रकार के रंगों से चित्र बनाया जाता है उसी प्रकार राग के विद्यमान रहते अगले जन्म में पैदा होता है। कौर वाले आहार को बच्चे के आहार के समान, स्पर्श आहार को गाय के समान, मन के संचेतना वाले आहार को लहलहाते आग के गड्ढे के समान तथा विज्ञात आहार की उपमा चोर के छटपटाने से दी है।[17]

विषयवस्तु का विभाजन :–

खेत्तूपमसुत्त में भगवान् भिक्षु–भिक्षुणी, उपासक–उपासिकाओं तथा अन्य मतावलम्बियों को आदि कल्याणकारी, मध्य कल्याणकारी, अवसान कल्याणकारी, अर्थ एवं शब्द से परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य वाला उपदेश देते हैं।[18] माना जाता है कि भगवान् के उपदेश की विषयवस्तु विभिन्न वर्गो को अलग–अलग थी। लेकिन सभी

का उद्देश्य एक समान था।

भगवान् बुद्ध के उपदेश भिक्षुओं को दिए गए अधिक प्राप्त होते हैं। गृहस्थों को दिए गए उपदेश कम हैं। गृहस्थों के लिए उपदेशों की कमी भगवान् की गृहस्थों के प्रति उपेक्षा नहीं है बल्कि संग्रह कारक भिक्षुओं की प्रवृत्ति है क्योंकि अधिकांश उपदेश भिक्षुओं से संगृहीत किए गए। गृहस्थों से संबंधित उपदेश अधिकांशतया समाज के प्रतिष्ठित लोगों के हैं। लेकिन यह कहा जा सकता है कि भिक्षुओं को सम्बोधित कर दिए गए उपदेश मात्र भिक्षुओं के लिए ही उपयोगी नहीं है। बल्कि उनका सभी के लिए महत्त्व है। विशेषकर सुत्तपिटक के उपदेशों का महत्त्व सभी के लिए है क्योंकि भिक्षुओं के विशेष नियम विनयपिटक में संगृहीत हैं। इसलिए सुत्तपिटक के उपदेशों में यह विभाजन रेखा नहीं खींची जा सकती है। यह भी कहा जा सकता है कि भिक्षुओं को दिए गए उपदेश सभी के लिए उपयोगी हैं, उन विशेष नियमों को छोड़कर जो भिक्षु चर्या के सम्बन्ध में हैं। इसलिए भगवान् के उपदेशों का विभाजन पात्रों के अनुसार न करके हमने त्यजनीय एवं सेवनीय धर्मो के अन्तर्गत किया है तथा विशेष नियमों को जो अवस्था विशेष में पालन किए जा सकते हैं उसका भी उल्लेख कर दिया है।

संयुत्तनिकाय में विविध विषयों पर चर्चा मिलती है। उसका कोई संगठित रूप नहीं है। दीघनिकाय में सारिपुत्त भगवान् के प्रति सिंहनाद करते हुए उनके उपदेश की विशेषताएं बतलाते हैं, जिसमें भगवान् को उपदेशित विषयवस्तु का समावेश हो जाता है। संयुत्तनिकाय में सारिपुत्त का सिंहनाद तो दिया गया है लेकिन उनके उपदेश की विशेषताएं नहीं दी गई हैं। दीघनिकाय में बतलाया गया है कि भगवान् अच्छे बुरे का विभाजन कर उपदेश देते हैं। कुशल धर्मो का, गर्भ प्रवेश के विषय में, आदेशना विधि के विषय में, दर्शन समापत्ति, पुद्गल प्रज्ञप्ति, सम्बोध्यंग, प्रतिपदा, भस्म समाचार, शील सम्बन्धी आचरण, अनुशासन–विधि विषयक, परपुद्गल विमुक्ति–ज्ञान, शाश्वतवाद, पूर्वजन्मानुस्मृति ज्ञान, सत्वों के जन्म मरण के ज्ञान तथा ऋद्धिविध (दिव्य शक्ति) के विषय में उपदेश देते हैं।[19]

इनमें से अधिकांश विषयों का प्रतिपादन संयुत्तनिकाय में मिलता है, लेकिन यहां पर त्यजनीय धर्म एवं संवनीय धर्म के आधार पर ही संक्षेप में विभिन्न विषयों का प्रतिपादन किया जा रहा है। भगवान् की देशना का उद्देश्य दुःख का निरोध करना था।[20] जिसके लिए भगवान् ने अच्छे धर्मो को सेवन करने एवं बुरे धर्मो को त्यागने की सलाह दी थी।

सेवनीय धर्म :–

विविध प्रसंगों में सेवनीय धर्मो की चर्चा की गई है। यथा–कायगतस्मृति, समथ एवं विपश्यना, समाधि, चार स्मृतिप्रस्थान, चार सम्यक् प्रधान, चार ऋद्धियां,

पांच इन्द्रियां, पांच बल, सात सम्बोध्यंग एवं आर्य अष्टांगिक मार्ग।[21]

वीर्य की शिक्षा–वीर्य की शिक्षा देते हुए भगवान् ने भिक्षुओं से कहा था कि निश्चय कर लेना चाहिए कि शरीर में चाम नाड़ी और हड्डियां भले ही रह जाय, मांस और लहू सूख जाय, किन्तु उत्साह, वीर्य और पराक्रम से जो प्राप्त किया जा सकता है उसे प्राप्त किए बिना नहीं रहेगा। क्योंकि वीर्यवान् व्यक्ति पाप धर्मो से बचा रहता है, आनन्द पूर्वक विहार करता है एवं परमार्थ की प्राप्ति करता है। भगवान् ने कहा था कि अग्र से ही अग्र की प्राप्ति होती है। इसलिए ब्रह्मचर्य पालन करने में श्रद्धा रखना चाहिए, वीर्य करना चाहिए। अप्राप्त की प्राप्ति के लिए, नहीं पहुँचे स्थान में पहुंचने के लिए, कभी नहीं देखी हुई चीज के देखने के लिए जिसमें प्रव्रज्या सार्थक होगी तथा अप्रमाद पूर्वक विहरने से हित और सुख होगा।[21]

स्मृतिमान और संप्रज्ञता की शिक्षा– कामराग प्रहीण की शिक्षा देते हुए कहा गया है कि जैसे भाला चुभ गया हो या शिर के ऊपर आग लग गई हो वैसे ही भोग विलास की इच्छा के प्रहीण करने के लिए स्मृतिमान होकर विचरण करना चाहिए। भिक्षुओं के लिए संप्रज्ञता इस प्रकार बतलाई गई है– अनजाने में देखने भालने में, समेटने पसारने में सचेतन रहना। संघाटी, पात्र और चीवर धारण करने में सचेत रहना। मलमूत्र विसर्जन में, जाते समय, खड़े होते, बैठते, सोते, जागते, बोलते, मौन रहते सचेत रहना।[22]

एकान्तवास– एकान्तवास करने की शिक्षा दी गई कि दूर एकान्त स्थान में वास करना चाहिए। बन्धनों से मुक्त इस प्रकार मन न लगे तो संघ में मिलकर संयत और स्मृतिमान होकर रहना चाहिए। घर–घर भिक्षाटन करते हुए संयतेन्द्रिय स्मृतिमान् को एकान्तवास करना चाहिए। बताया गया है हि जहां सांप, बिच्छु रहते हैं, बिजली कड़कती है, मेघ गड़गड़ाता है वहां काली अंधियारी रात में भिक्षु बैठते हैं।[23]

मात्रा से भोजन– मात्रा से भोजन करने की सलाह देते हुए कहा गया है कि जो स्मृतिमान् रहते मात्रा से भोजन करता है उसकी वेदनायें कम होती हैं तथा आयु को पालता हुआ अधिक समय तक जीता है।[24]

अप्रमाद– आयु, आरोग्य, वर्ण, स्वर्ण, उच्चकुलीनता और अधिकाधिक सुख पाने वालों को 'अप्रमाद' की शिक्षा दी गई है तथा अप्रमाद को एक ऐसा धर्म बतलाया है जो इहलोक तथा परलोक दोनों में उपयोगी है।[25]

सत्संगति– सत्संगति की शिक्षा विभिन्न प्रसंगों में दी गई है एवं उसका महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। भगवान् ने कहा था कि उनका स्वाख्यात धर्म भले लोगों के साथ रहने वालों के लिए है। बुरे लोगों के साथ रहने वालों के लिए नहीं। एक बार आनन्द ने भगवान् से कहा कि ब्रह्मचर्य की आधी सफलता भले लोगों के साथ मिलने–जुलने से है तो भगवान् ने कहा कि आधी सफलता नहीं, पूरी सफलता

कल्याणमित्र के मिलने से है। कल्याणमित्र के मिलने वाले से आशा की जाती है कि वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करेगा। कल्याणमित्र के साथ रहने से प्राणी मुक्त हो जाते हैं। बूढ़े प्राणी बुढ़ापे से, क्षीण होने वाले क्षय से, मरने वाले मृत्यु से तथा शोक–परिदेव–दुःख–दौर्मनस्य वाले भी इनसें मुक्त हो जाते हैं।[26]

सब्भिसुत्त में कहा गया है कि सत्पुरुषों के साथ ही बैठना एवं मिलना–जुलना चाहिए तथा उनसे धर्म सीखना चाहिए, जिससे कल्याण होता है, अहित नहीं। प्रज्ञा प्राप्त होती है अन्यथा नहीं, बान्धवों में सबसे अधिक तेज वाला होता है, शोक में भी दुःखी नहीं होता, सुखपूर्वक रहता है, अच्छी गति होती है तथा उसके सभी दुःख छूट जाते हैं।[27] सगाथसुत्त में कहा गया है कि जिस प्रकार लकड़ी के संसर्ग से व्यक्ति महासमुद्र में पहुंचकर डूब जाता है उसी प्रकार साधु पुरुष भी निकम्मे आदमी के साथ रहकर डूब जाता है। इसलिए निकम्मे पुरुष को त्याग एकान्तवासी, प्रहितात्म, ध्यानी एवं उत्साही पण्डित आदि पुरुषों की संगति करते हैं।[28]

दान की शिक्षा एवं महत्त्व :– दान को परलोक के लिए सबसे बड़ा पुण्य बतलाया गया है जो नष्ट नहीं होता है। इस संसार को धधकती आग के समान बतलाया है। जिस प्रकार घर में आग लग जाने से निकाला हुआ सामान भलाई के लिए होता है उसी प्रकार दिया हुआ दान पुण्य कमाता है।

दान के अभाव में धन की गति नष्ट होना बतलाई गई है। कहा गया है कि धन चोर चुरा लेते हैं, राजा हरण कर लेते हैं, आग लग जाती है या नष्ट हो जाता है। इसलिए पण्डित व्यक्ति को भोग करते हुए दान देना चाहिए। दो कंजूस सेठों की गति बतलाई गई है कि अपार धन होते हुए भी वे मट्ठा के साथ खुदड़ा चावल खाते थे, तीन जोड़ों वाले जाट का कपड़ा पहनते थे तथा पत्तों की छावनी वाले रथ पर सवारी करते थे। इनकी मृत्यु के बाद इनका धन राज खजाने में जमा कर लिया गया। भगवान् ने कहा कि बुरे लोग धन पाकर न तो स्वयं सुख उठाते हैं न स्त्री–बच्चों को सुख देते हैं न नौकर–चाकरों को सुख देते हैं न श्रमण ब्राह्मणों को दान–दक्षिणा देते हैं। उनकी गति ऐसी ही होती है। जिस प्रकार कोई स्वच्छ, शीतल जलवाली, साफ घाटवाली बावली हो लेकिन उसके पानी का उपयोग न किया जाय तो उसका पानी खराब हो जाता है उसी प्रकार बुरे लोगों के धन का है कि सदुपयोग न होने से नष्ट हो जाता है।[29]

बगीचे, उपवन लगाने वाले, पुल बंधवाने वाले, पौसाला बैठाने वाले, कुआ खुदवाने वाले तथा राहगीरों को शरण देने वालों के सदा पुण्य बढ़ते बतलाये गए हैं।[30] अन्न दान देने को बल देने के समान, वस्त्र देने को वर्ण देने के समान, वाहन देने को सुख देने के समान, प्रकाश देने को आंख देने के समान, आश्रय देने को सब कुछ देने के समान तथा धर्मोपदेश देने को अमृत देने के समान बतलाया गया है।[31] कहा गया

है कि जो अपने परिवार का भरण–पोषण करते हुए थोड़ा भी दान देता है वह उस बड़े दान से भी महत्त्वपूर्ण है जो मारकाट कर एवं प्राणियों को सताकर कमाया, दिया जाता है।[32]

भगवान् से पूछे जाने पर कि दान किसे देना चाहिए तथा किसे देने से महाफल होता है? भगवान् ने कहा कि जिसके प्रति श्रद्धा हो उसे दान देना चाहिए तथा शीलवान् व्यक्ति को दान देने से महाफल होता है। क्योंकि शीलवान् व्यक्ति पांच अंगों से रहित एवं पांच अंगों से युक्त होता है।[33] देवहित सुत्त में कहा गया है कि जिस मुनि ने पूर्वजन्म की बातों को जान लिया है, स्वर्ग और अपाय को देखता है जिसकी जाति क्षीण हो गई है तथा परम ज्ञान को प्राप्त कर लिया है उसको दान देना चाहिए, दान देने से महाफल प्राप्त होता है।[34]

दान देने के पश्चात् पश्चाताप करने पर निन्दा की गई है एवं गति बतलाई है कि सेठ ने भिक्षा देने के बाद पश्चाताप किया इसलिए उसका मन धन के उपयोग की ओर नहीं झुकता।[35] श्रद्धापूर्वक दान देने से प्रज्ञा एवं निर्वाण की प्राप्ति बतलाई गई है।[36]

त्यजनीय धर्म :–

विविध प्रसंगों में त्यजनीय धर्मो की चर्चा मिलती है इनको जानने, क्षय करने एवं प्रहाण करने की सलाह दी गई है। इसके लिए उपयुक्त मार्ग आर्य–अष्टांगिक मार्ग बतलाया गया है। त्यजनीय धर्म इस प्रकार हैं–

तीन एषणाएं–	काम–एषणा, भव–एषणा एवं ब्रह्मचर्येषणा।
तीन आस्रव–	काम–आस्रव, भव–आस्रव एवं अविद्या–आस्रव।
तीन भव–	काम–भव, रूप–भव एवं अरूप–भव।
तीन दुःखता–	दुःख–दुःखता, संस्कार–दुःखता एवं विपरिणाम–दुःखता।
तीन खीले–	राग, द्वेष एवं मोह।
तीन दुःख–	राग, द्वेष एवं मोह।
तीन वेदना–	सुख–वेदना, दुःख–वेदना एवं अदुःख–वेदना।
तीन तृष्णाएं–	काम–तृष्णा, भव–तृष्णा एवं विभव–तृष्णा।
चार बाढ़–	काम–बाढ़, भव–बाढ़, मिथ्या–बाढ़ एवं अविद्या–बाढ़।
चार योग–	काम–योग, भव–योग, मिथ्या–दृष्टियोग एवं अविद्या–योग।

चार उपादान–काम–उपादान, मिथ्यादृष्टि–उपादान, शीलव्रत–उपादान एवं आत्मवाद–उपादान।

चार गांठे–अभिध्या, व्यापाद, शीलव्रत परामर्श एवं दृढ़वादिता।

पांच कामगुण–अभीष्ट सुन्दर चक्षुविर्जय रूप, स्रोत–विज्ञेय–शब्द, घ्राण–विज्ञेय–गन्ध,

जिह्वा–विज्ञेय–रस एवं काम–विज्ञेय–स्पर्श।

पांच नीवरण– काम–इच्छा, वैरभाव, आलस्य, औद्धत्य–कौकृत्य एवं विचिकित्सा।

पांच उपादानस्कन्ध–रूप उपादानस्कन्ध, वेदना–उपादानस्कन्ध, संज्ञाउपादानसकन्ध, संस्कार–उपादानस्कन्ध एवं विज्ञान–उपादानस्कन्ध।

पांच संयोजन– (निचले) सत्काय–दृष्टि, विचिकित्सा, शीलव्रत–परामर्श, कामच्छन्द एवं व्यापाद।

पांच संयोजन– (ऊपरी) रूप–राग, अरूप–राग, मान, औद्धत्य एवं अविद्या।[37]

लाभ–सत्कार–प्रशंसा– भगवान् बुद्ध ने लाभ, सत्कार एवं प्रशंसा इन तीन का त्याग भिक्षुओं को आवश्यक बतलाया था तथा इसके विभिन्न पक्षों की ओर ध्यान इंगित किया था।[38]

जब भिक्षु लाभादि पाने पर खुश होता है, आनन्द उठाता है, लाभ के चक्कर में क्लिष्ट चित्त से गांव या कस्बे में भिक्षाटन को जाता है, बैठता है, भोजन करके दूसरे दिन के लिए भी निमंत्रित होता है, पात्र पूरा हो जाने पर यह बात दूसरे भिक्षुओं के सामने करता है कि वह लाभ करने वाला है, दूसरे भिक्षु अल्प पुण्य वाले हैं, दूसरे भिक्षुओं को नीचा समझता है, संघ में फूट डालता है तब वह भिक्षु लाभ–सत्कार एवं प्रशंसा के चक्कर में पड़ा माना जाता है। इसका आकर्षण इतना अधिक होता है कि अन्य सभी आकर्षण फीके पड़ जाते हैं। कहा गया है कि जो सोने की थाली भर रजत चूर्ण के लिए भी झूठ नहीं बोल सकता था वह लाभ–सत्कार एवं प्रशंसा के लिए झूठ बोला। इसी प्रकार जो स्वर्ण की थाली, सुवर्ण–निष्क जात रूप के लिए, किसी भी वस्तु के लिए, प्राण के निकल जाने पर एवं सबसे सुन्दर स्त्री के लिए भी झूठ नहीं बोला वह लाभ–सत्कार एवं प्रशंसा के लिए झूठ बोला। जो निश्चय कर चुका था कि वह माता–पिता, भाई–बहन, पुत्री तथा स्त्री के लिए भी झूठ नहीं बोलेगा वह भी झूठ बोला।

लाभ–सत्कार एवं प्रशंसा से प्रसन्न रहने वालों की उपमा भगवान् ने गंदगी से लिप्त पिल्लू से दी है। जैसे पिल्लू गंदगी से लथपथ होकर तथा सामने ढेर देखकर अपने को दूसरे पिल्लुओं से बड़ा समझता है उसी प्रकार भिक्षु को समझना चाहिए जो लाभ सत्कार एवं प्रशंसा का भूखा है।

लाभ–सत्कार एवं प्रशंसा की भयंकरता को समझाते हुए भगवान् ने कहा कि जिस प्रकार मछुआरा वंशी में चारा लगाकर मछलियों को फंसाता है, मछलियां अपने अग्रजों की बात न मानकर लालच में जान गंवा देती है उसी प्रकार भिक्षु भिक्षुणी ज्येष्ठों की बात न मानकर मार के जाल में फंस जाते हैं और अपने परम लक्ष्य से गिर

जाते हैं। इसकी निकृष्टता बतलाते हुए भगवान् ने इसकी उपमा श्रृगाल के रोग से दी है। जिस प्रकार रोग पीड़ित बूढ़ा सियार कहीं भी–एकान्त में, वृक्ष के नीचे या खुली जगह में चैन नहीं पाता है चाहे वह खड़ा रहे, बैठे या लेटे दुःख ही पाता हे उसी प्रकार लाभ–सत्कार प्रशंसा की आशा में भिक्षु दुःखी रहता है चाहे वह शूलागार, वृक्ष के नीचे जाए, खुली जगह में भी रहे। बिजली की उपमा देते हुए कहा है कि जैसे बिजली पहले प्रकाशित कर आनन्दित करती है परन्तु बाद में नष्ट कर देती है उसी प्रकार लाभ सत्कार प्रशंसा है। इसी प्रकार वैरम्बवायु के समान है। जिस प्रकार वैरम्बवायु में फंसकर पक्षी के पंख, शिर और शरीर अलग–अलग हो जाता है उसी प्रकार भिक्षु का शरीर, वचन और मन अरक्षित हो जाता है। केला, वेलु, नल के फल एवं खच्चरी के गर्भ के समान है जो इनको ही नष्ट कर देता है। भिक्षु इनके चक्कर में फंसकर अपनी शांति नष्ट कर देते हैं, इन्द्रियों में असंमयी और आरक्षित हो जाते हैं। उनकी स्मृति और इन्द्रियों में संयम नष्ट हो जाता है। शिक्षा को छोड़कर वे गृहस्थ हो जाते हैं। मछलियों के समान जाल में फंसकर दुःख और विपत्ति में फंस जाते हैं।

लाभ–सत्कार–प्रशंसा से बचने के लिए भगवान् ने शैक्ष्य भिक्षु के लिए विषैले तीर के समान, क्षीणास्रवी के लिए हानिकर, आततायी, प्रहितात्म तथा सुखपूर्वक विहार करने वाले को विध्न कर बतलाया है। इसे घुन के समान बतलाया है जो मांस, हड्डी एवं मज्जा को छेद देता है। देवदत्त ने लाभ सत्कार एवं प्रशंसा में फंसकर अपने सभी कुशल धर्म नष्ट किए थे एवं नरकगामी हुआ था।

सात पापों से विरति की शिक्षा– भगवान् ने गृहस्थों के लिए सात पापों से विरत रहने की शिक्षा देते हुए इन्हें आत्मोपनाविक धर्म कहा था। जीव हिंसा से विरति, चोरी से विरति, पर स्त्री गमन से विरति, असत्य से विरति, कठोर वचन से विरति, चुगली करने से विरति एवं गड़बड़ बात बनाने से विरति। भगवान् ने सात पापों के परिणाम बतलाते हुए कहा था कि यदि ये उसके साथ किए जाय तो उसे कष्टदायी होंगे उसी प्रकार दूसरों को होंगे, ऐसा विचार कर इनके प्रति तीन प्रकार से सचेष्ट रहना चाहिए अर्थात् स्वयं विरत रहना चाहिए, दूसरों को विरत रहने का उपदेश देना चाहिए तथा विरत रहने वालों की प्रशंसा करनी चाहिए। इस प्रकार इन पापों से विरत रहने पर कायिक एवं वाचसिक आचरण शुद्ध होता है।[39]

भगवान् ने राजा प्रसेनजित् से कहा था कि जो शरीर, वचन और मन से दुराचरण करते हैं उनको अपना प्यारा नहीं है क्योंकि वे वही आचरण करते हैं जो शत्रु के प्रति किया जाता है एवं जो इनसे सदाचरण करते हैं उनको अपना प्यारा है।[40] सदाचरण करने वाले व्यक्ति अपनी रखवाली स्वयं करते हैं।[41] मल्लिका देवी के कथन पर कि उसे अपना ही अधिक प्यारा है भगवान् ने समर्थन करते हुए कहा था कि इसी प्रकार दूसरों को भी अपना प्यारा है। इसलिए किसी को सताना नहीं चाहिए।[42]

लक्षण संयुत्त में विभिन्न आकारों के आधार पर पूर्व–गतियां बतलाई गई हैं, जिनसे त्यजनीय कर्मों का स्पष्टीकरण होता है।

गो हत्यारा, चिड़ियामार, मेड़ों का कसाई, सुअर का कसाई, मृगमार, अन्यायी–हाकिम, सारथि, सूचक, गांव का दुष्ट पंच, परस्त्री गमन करने वाला, गूह देने वाला, छिनाल–स्त्री, मल फेंकने वाली स्त्री, सौत पर अंगार फेंकने वाली स्त्री, डाकू, पापी–भिक्षु, पापी–भिक्षुणी, पापी–श्रामणेर, पापी–श्रमणेरी इन को विभिन्न कष्टदायी अवस्थाओं में रहते बतलाया गया है।[43]

ग्रामणी संयुत्त में विभिन्न कर्मों को तिर्यंचगति एवं नरकगामी बतलाया गया है। नट जो कि रंगमंच पर सबके सामने झूठ या सच से लोगों को हंसाते एवं बहलाते हैं, इनका यह समझना कि वे प्रहास देवों में उत्पन्न होंगे, झूठ बतलाते हुए उनको नरकगामी या तिर्यंचगामी बतलाया गया है। सिपाही– जो कि संग्राम में वीरता दिखाते हैं उनका यह समझना कि वे संरजित नामक देवलोक में उत्पन्न होंगे झूठ बतलाते हुए उनको दूषित चित्त के कारण कि वे मारेंगे, काटेंगे, संरजिता नामक नरक में उत्पन्न बतलाया है। इसी प्रकार घोड़ा सवार एवं हाथी सवार की गति बतलाई गई हैं।[44] इन संदर्भों में उल्लेखनीय है कि भगवान् इनकी गतियों को बतलाने में संकोच करते हैं एवं तीन बार कहने के बाद ही बतलाते हैं। भगवान् द्वारा इनकी गतियां बतलाये जाने के कारण ये अपने कर्मों पर पश्चाताप करते हुए ऐसा न करने का निश्चय करते हैं।

उपदेश की विशेषताएं :–

भगवान् प्रश्न का उत्तर अपने दृष्टिकोण से देते थे। श्रोता चाहे जिस प्रकार से प्रश्न पूछे भगवान् अनुपयोगी बात को छोड़कर उपयोगी एवं सुलझी हुई बात कहते थे। भगवान् स्पष्ट कह देते थे कि प्रश्न पूछने का यह ढंग ठीक नहीं है, प्रश्न इस प्रकार होना चाहिए।

भगवान् से पूछे जाने पर कि विज्ञान आहार का कौन आहार करता है? भगवान् ने कहा यह प्रश्न ही गलत है क्योंकि वे ऐसा नहीं करते कि कोई आहार करता है। प्रश्न उपयुक्त यह होना चाहिए कि विज्ञान आहार से क्या होता है? जिस का उत्तर यह है कि विज्ञान आहार आगे पुनर्जन्म का हेतु है।[45] सुख–दुःख के सम्बन्ध में पूछे जाने पर कि दुःख स्वयं किया हुआ होता है या दूसरे का किया होता है? भगवान् ने दोनों प्रश्नों का दो अन्त बतलाते हुए कहा कि सुख–दुःख क्यों होता है? तथा इसका निरोध क्या है?[46] तथागत के सम्बन्ध में भी पूछे जाने पर कि मरने के बाद तथागत होते हैं? नहीं होते हैं? होते हैं, नहीं होते हैं? न होते हैं, न नहीं होते हैं? भगवान् ने कहा कि पांच उपादानस्कन्ध में तथागत नही हैं इसलिए वे इन प्रश्नों से अन्यत्र हमेशा दुःख एवं उसके निरोध का प्रतिपादन करते हैं।[47]

संयुत्तनिकाय के प्रथम सगाथ वर्ग में प्रश्नों के उत्तर व्यावहारिक दृष्टिकोण से भी दिए गए हैं एवं प्रश्नों का मोड़ धार्मिक कर दिया गया है।

भगवान् के उपदेश की विशेषता पर्याय देशना से थी। भगवान् का स्पष्ट कथन था कि जो उनके दृष्टिकोण को समझेंगे वे उनके उपदेश का अनुमोदन करेंगे तथा जो उनके दृष्टिकोण को नहीं समझेंगे वे आपस में विवाद एवं झगड़ा करेंगे। यह बात भगवान् ने उस समय कही जब भिक्षु आपस में वेदना के सम्बन्ध में विवाद कर रहे थे।[48] इसी प्रकार एक समय भगवान् के दर्शन की शुद्धि के सम्बन्ध में दो–तीन मत व्यक्त किए गए हैं। एक भिक्षु ने भगवान् के पास जाकर सभी मत व्यक्त किए और वास्तविकता जानना चाही। भगवान् ने कहा कि सभी अपनी–अपनी समझ के अनुसार कहते हैं एवं सभी सही है। जिस प्रकार व्यक्ति फूल को अलग–अलग अवस्थाओं में देखकर व्यक्ति अलग प्रतिपादन करे लेकिन सभी सच बोलते हैं उसी प्रकार दर्शन के शुद्धि की बात है।[49] राजा प्रसेनजित के यहां राजाओं के बीच विवाद हाने पर भी भगवान् ने यही कहां कि जो जिसे अच्छा लगे वही ठीक है क्योंकि जो एक को अच्छा लगता हे वही दूसरे को बुरा लगता है।[50]

भगवान् के उपदेश की विशेषता उचित समय पर विषयवस्तु का प्रतिपादन करना था। भगवान् स्वयं कहते हैं कि वे इन प्रश्नों का उत्तर भिक्षुओं के पूछने पर ही दिए हैं क्योंकि अगर पहले देते तो शायद दूसरे लोग नहीं मानते और नहीं मानने से उनका अहित और दुष्परिणाम होता।[51] इसी जनता के अहित के ख्याल से भगवान् ने सर्वप्रथम उपदेश देने से अल्प उत्सुकता दिखाई थी।

प्रायः जब भगवान् से उपदेश के लिए निवेदन किया जाता था तो एक समान ही वाक्यों का प्रयोग किया जाता था तथा भगवान् के उपदेश केबाद भी एक जैसे ही वाक्य प्रयुक्त किए जाते थे।[52]

भगवान् ने शुद्ध देशना का लक्षण बतलाया था कि प्रसन्नता के कारण जो कहता है उनकी देशना शुद्ध नहीं है अपितु धर्म को स्वाख्यात समझकर जो दूसरे के कल्याण हेतु धर्म कहता है उसकी देशना 'स्वाख्यात' है।[53]

संदर्भ–विवरण

1. संयुत्त. 1, पृ. 105
2. वही, पृ. 207
3. संयुत्त. 4, पृ. 56
4. संयुत्त. 4, पृ. 278
5. वही, 1, पृ. 143
6. वही, 2, पृ. 170
7. संयुत्त. 3, पृ. 248

8. वही, 2, पृ. 41,46
9. वही, 1, पृ. 29
10. वही, पृ. 173
11. वही, 1, पृ. 207
12. संयुत्त. 4, पृ. 162
13. वही, 1, पृ. 133
14. वही, पृ. 31
15. वही, पृ. 166
16. वही, पृ. 55
17. संयुत्त. 2, पृ. 83–86
18. वही, 4, पृ. 278
19. दीघ. 3, पृ. 79–87
20. संयुत्त. 4, पृ. 329
21. संयुत्त. 1, पृ. 51
22. वही, 3, पृ. 316
23. संयुत्त. 1, पृ. 154
24. मनुजस्स सवा सतीमतो, मत्तं जानतो लद्धभोजने।
    तनुकस्स भवन्ति वेदना सणिकं जीरति हायुपालयं'ति।। वही, 1, पृ. 81
25. वही, 1, पृ. 86
26. वही, 1, पृ. 86–88
27. संयुत्त. 1, पृ. 17
28. वही, 2, पृ. 135
29. संयुत्त. 1, पृ. 20, 88–90
30. वही, 1, पृ. 31
31. वही, 1, पृ. 30
32. वही, पृ. 20–21
33. वही, पृ. 97–99
34. वही, पृ. 91
35. संयुत्त. पृ. 91
36. वही, पृ. 21
37. संयुत्त. 5, पृ. 23 एवं 57
38. वही, 2, पृ. 189–202
39. संयुत्त. 5, पृ. 300–303
40. वही, 1, पृ. 70
41. वही, पृ. 71
42. वही, पृ. 74
43. संयुत्त. 2, पृ. 211–217
44. वही, 4, पृ. 271–275
45. 'नो कल्लो पञ्हो' ति भगवा अवोच 'आहारेती' ति अहं न वदामि।

'आहारेती' ति चाहं वदेय्यं, तत्रस्स कल्लो पञ्हो–' को नु खो, भन्ते, आहारेती' ति। एवं चाहं न वदामि। एवं मं अवदन्तं यो एवं पुच्छेय्य–' किस्स नु खो, भन्ते, विञ्ञाणाहारो'ति एस कल्लो पञ्हो।

संयुत्त. 2, पृ. 14

46. वही, पृ. 21
47. वही, 4, पृ. 329
48. संयुत्त. 4, पृ. 203
49. वही, पृ. 171
50. वही, 1, पृ. 78–80
51. वही, 2, पृ. 212
52. 'अभिक्कन्तं, भन्ते अभिक्कन्तं भन्ते। सेय्यथ्यापि भन्ते, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य परिच्छन्नं वा विवरेण्य मूलहस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य अन्धकारे वा तेजपज्जोतं धारेय्य–चक्खु भन्तो रूपानि दक्खन्ति ति, एवमेव भगवता अनेक परियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं भन्ते, भगवन्तं सरणं गच्छामि, धम्मं च भिक्खु सङ्घं च। उपासकं मं भन्ते भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं ति। संयुत्त. 1, पृ. 68–69
53. वही, 2, पृ. 165

सप्तम परिच्छेद

प्रकीर्णक

अलौकिक चित्रण

भारतीय धार्मिक परम्परा में सदैव ही अलौकिक शक्तियों का महत्त्व रहा है। बौद्ध–धर्म में इन अलौकिक शक्तियों का समावेश हुआ है, जिनके अन्तर्गत ब्रह्मा, शक, देवता, देवपुत्र, यक्ष, मार नाग और सुपर्ण आदि अलौकिक शक्तियों का वर्णन मिलता है। भगवान् बुद्ध ने अपने लिए देवताओं, मार, ब्रह्मा, श्रमण–ब्राह्मणों में अनुत्तर घोषित किया था।[1] संयुत्तनिकाय का प्रथम सगाथवर्ग अलौकिक शक्तियों के चित्रण से परिपूर्ण है।

ब्रह्मा :–

ब्रह्मा हिन्दू धार्मिक परम्परा में सृष्टिकर्ता के रूप में प्रसिद्ध है।। पालि साहित्य में यह सद्धर्म के सहायक रूप में वर्णित है।। संयुत्तनिकाय में ब्रह्मा का विस्तृत परिचय मिलता है। संयुत्तनिकाय में छः ब्रह्माओं के नाम मिलते हैं– सहम्पति ब्रह्मा[2], बक ब्रह्मा[3], सुब्रह्मा, शुद्धावास–प्रत्येक–ब्रह्मा, तुदप्रत्येक–ब्रह्मा[4] एवं सनतकुमार ब्रह्मा[5] । बक ब्रह्मा सुत्त में बहत्तर ब्रह्माओं की संख्या बतलाई गई है।[6] सहम्पति–ब्रह्मा को बौद्ध धार्मिक परम्परा में अधिक सम्मान दिया गया है। उपदेश देने के प्रति भगवान् बुद्ध के उदासीन होने पर सहम्पति–ब्रह्मा ने ही उपदेश के लिए उन्हें प्रेरित किया था।[7] भगवान् द्वारा धर्म के प्रति गौरव मानकर विहार करने की बात सोचने पर सहम्पति–ब्रह्मा ने आकर भगवान् की बात का समर्थन करते हुए कहा था कि यही बुद्धों की परम्परा है।[8]

सहम्पति–ब्रह्मा सद्धर्म में सहायक था। कोकालिक पापेच्छु भिक्षु की मृत्यु होने पर सहम्पति–ब्रह्मा उसकी निन्दा करते हुए पद्म नरक में उत्पन्न हुआ बतलाता है।[9] इसी प्रकार पापेच्छु देवदत्त के विषय में कहता है कि जिस प्रकार केला, वेणू और नरकट का फल स्वयं उस वृक्ष को नष्ट कर देता है उसी प्रकार अपना सत्कार खोटे पुरुष को नष्ट कर देता है।[10] सहम्पति–ब्रह्मा संघ के प्रति श्रद्धालु था। वह भिक्षुओं के शान्त चित्त और एकाग्र रहने की पुष्टि करते हुए कहता है कि एकान्त सेवन करना चाहिए यदि मन न लगे तो संघ में मिलकर संयत और स्मृतिमान् होकर विहार करना चाहिए।[11]

भगवान् के परिनिर्वाण प्राप्त होने पर सहम्पति–ब्रह्मा का वचन संगृहीत है कि–संसार के सभी जीव एक दिन बिदा होंगे, लेकिन तथागत बल प्राप्त सम्बुद्ध लोक

में अनुपम बुद्ध परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये।[12]

सहम्पति–ब्रह्मा की उदारता का परिचय उस समय और अधिक मिलता है जब एक ब्राह्मणी ब्रह्मा को आहुति दे रही थी तो सहम्पति ब्रह्मा उस ब्राह्मणी के पास जाकर कहता है कि – ब्रह्मलोक यहां से बहुत दूर है, जिसके लिए यह आहुति दे रही है। साथ ही यह ब्रह्मा का भोजन भी नहीं है इसलिए वह बिना ब्रह्म–मार्ग को जाने भटक रही है। सहम्पति–ब्रह्मा सलाह देता है कि अपने प्रव्रजित पुत्र को भिक्षा दो जो भविष्य में उसे सुख देने वाले पुण्य का कारण होगा।[13]

बकब्रह्मा को पाप–दृष्टि उत्पन्न हो जाने पर कि ब्रह्मलोक नित्य, ध्रुव, शाश्वत, अखण्ड, न टूटने वाला है, यहां न कोई पैदा होता है, न मरता है, इससे बढ़कर दूसरी कोई मुक्ति नहीं है। भगवान् उसकी अनित्यता को बतलाते हैं कि वह ब्रह्मलोक में शीलव्रत के कारण उत्पन्न हुआ है। उसने पहले प्यासे को पानी पिलाया था, गंगा में बहते हुए को बचाया था, नाव को सर्पराज से मुक्त कराया था, इसी पुण्य के कारण वह ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुआ है।[14]

एक ब्रह्मा द्वारा अपने प्रति घमण्ड व्यक्त किए जाने पर कि वह ऋद्धि और प्रताप से युक्त है अतः वह सम्यक्सम्बुद्ध (भगवान् बुद्ध) की सेवा को क्यों जाय? सुब्रह्मा और शुकावास नामक ब्रह्मा उसके मान का मर्दन करते हुए कहते हैं कि भगवान् का प्रताप उनके प्रताप से भी बढ़कर है।[15] शेष सभी ब्रह्मा भगवान् के प्रति श्रद्धालु बतलाये गये हैं।

देवता :–

संयुत्तनिकाय का प्रथम संयुत्त देवता संयुत्त है। इसमें देवताओं की भगवान् बुद्ध के साथ वार्ता बतलाई गई है।

देवताओं के अन्तर्गत सतुल्लपकायिक[16], शुद्धावास[17], घटीकार[18], त्रायस्त्रिंश[19], एवं उज्झानसञ्ञी[20] नामक देवताओं के नाम मिलते हैं। देवताओं की विशेषता बतलाई गई है कि देवता रात्रि के अन्तिम प्रहर में अपनी चमक से चमकते हुए (अधिकांशतया जेतवन में) जाते थे। आते ही देवता भगवान् को अभिवादन कर एक ओर खड़े हो जाते थे। पुनः वे प्रश्न पूछते थे। भगवान् द्वारा प्रश्न का उत्तर देने पर वे अभिवादन कर चले जाते थे। कई प्रसंगों में देवता बिना अभिवादन किए सीधे आकर अपनी बात कहते हैं।[21] वार्ता के विषय विभिन्न सांसारिक समस्याओं से सम्बन्धित होते थे, जिनका भगवान् उत्तर देते थे। कई प्रसंगों में देवता आकर अपनी सांसारिक मान्यताओं से सम्बन्धित बात कहते हैं, लेकिन भगवान् उसका खण्डन करते हुए उसका उचित उत्तर देते हैं। जैसे देवता के कहने पर कि पुत्रों वाला पुत्रों से, गायों वाला गायों से तथा सांसारिक वस्तुओं वाले को सांसारिक वस्तुओं से आनन्द आता है, जिसके पास कोई वस्तु नहीं उसे कोई आनन्द नहीं। भगवान् इसके उत्तर स्वरूप में कहते हैं कि

इन वस्तुओं से इनकी चिन्ता बनी रहती है, जिसके पास कोई वस्तु नहीं उसे कोई चिन्ता नहीं।[22] कुछ प्रश्न भिक्षुओं को विचलित करने वाले भी हैं जैसे देवता आकर भिक्षु से कहता है कि अभी आप नई उम्र वाले हैं। सामने के सुख को छोड़कर परलोक के पीछे क्यों पड़े हैं।[23] इसी प्रकार देवता और भगवान् के मध्य हुए वार्तालाप के अन्य विविध प्रसंग संयुत्तनिकाय के देवता–संयुत्त में संगृहीत हैं।

देवपुत्र :–

संयुत्तनिकाय का दूसरा संयुत्त देवपुत्त संयुत्त है, जिसमें देवपुत्रों का वृत्तान्त वर्णित हैं।

देवपुत्रों की विशेषता देवताओं के समान ही बतलाते हुए कहा है कि वे अपनी चमक से पूरे जेतवन को चमकाते हुए आते थे। आकर भगवान् से विभिन्न प्रश्न पूछते थे। इनके अधिकांश प्रश्न भिक्षुओं के अनुशासन से सम्बन्धित हैं। देवपुत्रों को भगवान् बुद्ध के प्रति श्रद्धालु बतलाया गया है कुछ देवपुत्र अन्य तैर्थिकों को मानने वाले भी थे।

देवपुत्रों के नाम इस प्रकार हैं– काश्यप, माघ, मागध, दामलि, कामद, पंचालचण्ड, तायन, चन्द्रमा, सूर्य, चन्दिमस, वेण्हु, दीधयस्टि, नन्दन, चन्दन, सुदत्त, सुब्रह्मा, ककुध, उत्तर तथा अनाथपिण्डिक।[24] ककुध–देवपुत्त को यक्ष इस नाम से सम्बोधित किया गया है।[25] सुवीर देवपुत्र की चर्चा देवेन्द्रशक के साथ वर्णित है।[26]

चन्द्रमा देवपुत्त एवं सूर्य देवपुत्त के ग्रहण का भी उल्लेख है। जिसमें बतलाया गया है कि इनको असुरेन्द्र राहु ने पकड़ लिया था। इन्होंने भगवान् बुद्ध से शरण देने की प्रार्थना की थी। भगवान् ने इनके गुणों को याद दिलाते हुए असुरेन्द्र राहु को इन्हें छोड़ने का आदेश दिया था तब असुरेन्द्र बाहु ने इनको छोड़ने का वचन दिया।[27] इसी प्रसंग में सूर्य के सम्बन्ध में भगवान् कहते हैं कि वह काले अन्धकार में प्रकाश देता है, चमकने वाला, उग्र तेज वाला, मण्डल वाला, आकाश में चलने वाला भगवान् का शरणागत है।[28] अनाथपिण्डिक गृहपति को मृत्योपरान्त देवपुत्त के रूप में उत्पन्न हुआ बतलाया गया है। [29]

शक :–

संयुत्तनिकाय में शक के सात नामों का उल्लेख मिलता है– मघवा, पुरिन्दर, शक, वासव, सहस्त्राक्ष, सुदम्पति एवं देवेन्द्र। शक के नामकरण के सम्बन्ध में कहा गया है कि इन्द्र मनुष्य योनि में मघ नामक ब्राह्मण था इसलिए मघवा, पुर शहर में दान देता था इसलिए पुरिन्दर, सत्कारपूर्वक दान देता था इसलिए शक, आवास का दान देता था इसलिए वासव, सहस्र बातों को एक बार में स्मरण कर लिया करता था। इसलिए सहस्राक्ष, सुजा नामक उसकी असुर कन्या थी इसलिए सुदम्पति तथा देव लोक में राज्य करने से देवेन्द्र नाम से अभिहित हुआ। [30] देवेन्द्र शक के सात व्रत

बतलाये गये हैं, जिसके कारण वह इस पद पर आरुढ़ हुआ था। [31]

1. उसने निश्चय किया था कि जीवन पर्यन्त माता–पिता का भरण पोषण करेगा।
2. ज्येष्ठों का सम्मान करेगा।
3. मधुर–भाषण करेगा।
4. चुगली नहीं करेगा।
5. संकीर्णता और कंजूसी से रहित दान देते हुए धर्म का पालन करेगा।
6. सत्यवादी रहेगा तथा
7. कोध नहीं करेगा।

शक्र को क्षमाशील, कोध रहित, शान्ति का प्रतीक, सुभासित बोलने वाला, छलकपट से रहित, धर्म से विजय प्राप्त करने वाला, उत्साही एवं वीर्य का प्रशंसक कहा गया है। शक्र अहिंसा प्रिय था, क्योंकि जब शक्र इन्द्र राक्षसों से हारकर भागते हुए राक्षसों द्वारा खदेड़े जाते हुए की स्थिति में था। उस समय इन्द्र मातलि से कहता है कि–सेंमर वृक्ष में लगे घोंसले रथ के धुरे में नुचने न पायें, भले ही उसकी असुरों के हाथों मृत्यु हो जाय।[32] यह कथा जातकमाला में भी वर्णित हैं। [33] भगवान् बुद्ध ने देवेन्द्र शक्र को पुण्य के प्रताप से त्रायस्त्रिंश लोक में ऐश्वर्य पाकर राज्य करते हुए रात्रि और सौजन्य का प्रशंसक बतलाया है। भिक्षुओं को भगवान् शिक्षा देते हैं कि इन्द्र आरब्ध पूरे करने में अनुकरणीय है। [34] देवेन्द्र शक्र का विभिन्न प्रसंगों में असुरों से युद्ध का वर्णन मिलता है। [35] देवेन्द्रशक्र के अतिरिक्त देवराज–प्रजापति, देवराज–वरूण, देवराज–ईशान का भी उल्लेख संयुत्तनिकाय में मिलता है।[36] भगवान् के परिनिर्वाण प्राप्त होने पर देवेन्द्र शक्र ने कहा था कि सभी संस्कार अनित्य है, उत्पन्न और निरुद्ध होना उनका स्वभाव है, उत्पन्न होकर निरुद्ध हो जाते हैं, बिल्कुल शान्त हो जाना ही सुख है। [37]

यक्ष :–

यक्ष पालि साहित्य में असुरों के अन्तर्गत माना जाता है। [38] संयुत्तनिकाय में यक्षों के भवन होने का भी उल्लेख है। भगवान् को गया में टंकितमंच पर सुचिलोम यक्ष के भवन में एवं आलवक यक्ष के भवन में विहार करते बतलाया गया है। [39]

यक्षों के विभिन्न नाम मिलते हैं– इन्द्रक–यक्ष, शक्र–यक्ष, सूचिलोम–यक्ष, खरयक्ष, मणिभद्र–यक्ष, शीवम–यक्ष, आलवक–यक्ष एवं प्रियंकर–माता–यक्षिणी तथा पुनर्वसु–माता–यक्षिणी। [40] यक्षों के अच्छे बुरे दोनों रूप मिलते हैं। यक्षों को मायावियों की तरह वर्णित किया गया है। [41] वे मनुष्यों के पुत्रों को पकड़ लिया करते थे। [42]

यक्ष भगवान् बुद्ध का अपमान करता हुआ तीन बार कहता है कि–बाहर निकल जा, बाहर निकलने पर कहता है कि अन्दर आ जा। अन्त में भगवान् के कहने

पर कि वे न अन्दर जायेंगे न बाहर, उसे जो इच्छा हो करे। यक्ष भगवान् से कहता है कि वह उनसे प्रश्न पूछेगा यदि श्रमण (भगवान्) उत्तर देंगे तो ठीक है, अन्यथा वह छाती चीर देगा या पैर पकड़कर गंगा के उस पार फेंक देगा। उत्तर में भगवान् कहते हैं कि वे किसी को ऐसा नहीं देखते हैं कि कोई इस प्रकार कर सके, लेकिन यक्ष की जो इच्छा हो वह पूछे। अन्त में यक्ष भगवान् से कहता है कि दूसरों को उपदेश क्यों देते हो, श्रमण को यह उचित नहीं कि दूसरों को उपदेश दें।[43]

विभिन्न यक्ष भगवान् के उपासक एवं उनके प्रति श्रद्धालु भी बतलाये गये हैं। सानुसुत्त में वर्णित है कि उपोसथ व्रत पालन करने वालों को यक्ष पीड़ित नहीं करता।[44] प्रियंकर माता–यक्षिणी अपने पुत्र सें कहती है कि वह चुप रहे। भिक्षु धर्म पर पढ़ रहा है, धर्मपद के अनुसार आचरण करने से हित तथा पिशाचयोनि से मुक्ति होती है।[45] इसी प्रकार पुनर्वसु माता यक्षिणी धर्म की खोज को पुत्र और पति से भी प्यारा बतलाती है, क्योंकि धर्म दुःखों से मुक्ति दिलाता है।[46] गृहपति अनाथपिण्डिक जब भगवान् के प्रथम दर्शन को जाते हैं, तब शीवक–यक्ष गृहपति को उत्साहित करता है।[47] एक यक्ष शुका–भिक्षुणी के उपदेश को राजगृह के लोगों द्वारा न सुनने पर कहता है कि वे (राजगृहस्वामी) मद्य–पान कर सो रहे हैं। उपदेश नहीं सुनते, भिक्षुणी जिस अमृतपद का उपदेश कर रही है उसे ज्ञानी लोग उसी प्रकार ग्रहण करते हैं, जिस प्रकार राही मेघ के जल को।[48] एक उपासक द्वारा भिक्षुणी को भोजन एवं चीवर देने पर यक्ष प्रशंसा करते हुए पुण्य कमाने की बात कहता है।[49]

नाग :–

नाग की चार जातियां बतलाई गई हैं– अण्डज–नाग, पिण्डज–नाग, संस्वेदज–नाग एवं औपपातिक–नाग। इन चारों को कमशः एक दूसरे से श्रेष्ठ बतलाया गया है। नागों का इस योनि में उत्पन्न होने का कारण –

1. शरीर, मन और वचन से पुण्य–पाप
2. अन्नपान, वस्त्र, सवारी, माला–गन्ध–विलेपन, शैय्या, घर और प्रदीप का दान तथा
3. इस योनियों में उत्पन्न होने की अभिलाषा है।

नाग उपोसथ व्रत रखते थे। उपोसथ व्रत रखने का कारण उनका यह विचार था कि वे सोचते हैं कि पहले के अच्छे व्रत रखने के कारण वे नाग योनि में उत्पन्न हुए एवं अब भी अच्छे कर्म करेंगे तो और अच्छी गति में उत्पन्न होंगे।[50]

सुपर्ण :–

नाग से ऊँची जाति सुपर्ण बतलाई गई है, इसके चार भेद बतलाये गये हैं– अण्डज–सुपर्ण, पिण्डज–सुपर्ण, संस्वेदज–सुपर्ण एवं औपपातिक–सुपर्ण। इनको कमशः एक दूसरे से श्रेष्ठ बतलाया गया है। सुपर्ण नागों का हरण कर लेते थे। तथा सुपर्ण

भी अपने से हीन सुपर्ण का हरण कर लेते थे।

सुपर्णो का इस योनि में उत्पन्न होने का कारण पाप–पुण्य, दान एवं इस योनि में उत्पन्न होने की अभिलाषा बतलाई गई है।[51]

देव :–

देवों के रूप में बलाहक देव एवं गन्धर्वकाय देवों का परिचय मिलता है। बलाहक देव– बलाहक देवों के पांच प्रकार बतलायें गये हैं–शीतबलाहक–देव, उष्णा बलाहक–देव, अभ्रबलाहक–देव, वातबलाहक–देव तथा वर्षा–बलाहक–देव।[52]

बलाहक देवों के इन जातियों में उत्पन्न होने का कारण, शीर, मन और वचन से सदाचरण व दान तथा इस योनि में उत्पन्न होने की अभिलाषा है।[53] देवों की शीतलता–उष्णता आदि होने का कारण उनकी रति के साथ रमण करने की इच्छा है जिसके कारण वे अमुक–अमुक स्वभाव वाले होते हैं।[54]

गन्धर्वकाय देव– गन्धर्वकाय देव गन्ध में वास करने वाले होने से गन्धर्वकायिक देव कहे जाते हैं। ये दस प्रकार के होते हैं– मूल गन्ध में वास करने वाले, सारगन्ध में वास करने वाले, कच्ची लकड़ी की गन्ध में वास करने वाले, छाल की गन्ध में वास करने वाले, पपड़ी की गन्ध में वास करने वाले, पत्तों की गन्ध में वास करने वाले, फूल की गन्ध में वास करने वाले, फल के रस, रस के गन्ध एवं गन्ध के गन्ध में वास करने वाले देव।

इस योनि में उत्पन्न होने का कारण भी शरीर, मन और वचन से सदाचरण, दान एवं इस योनि में उत्पन्न होने की अभिलाषा है। गन्धर्वकायिक–देवों के दस प्रकार से उत्पन्न होने का कारण उनके द्वारा तत् तत् गन्धों का दान देना कहा है।

मार :–

भारतीय हिन्दू परम्परा में 'मार' काम के रूप में जाना जाता है एवं इसे अध्यात्म–विरोधी समझा जाता है। बौद्ध धार्मिक–परम्परा में इसे पापी, निकृष्ट, दुष्टचित्त वाला तथा सद्धर्म का प्रबल विरोधी बतलाया है।

संयुत्तनिकाय में मार से सम्बन्धित दो संयुत्त एवं विभिन्न सुत्त हैं। एक मार संयुत्त है जिसमें भगवान् बुद्ध के बोधिप्राप्त करने के बाद 'मार' द्वारा किए गये विभिन्न उपद्रव, बाधाएं एवं वादविवाद वर्णित हैं तथा भगवान् की उन पर विजय बतलाई गई है। दूसरा भिक्षुणी संयुत्त है जिसमें श्रावस्ती के अन्धक वन में एकान्तवास एवं ध्यान कर रहीं विभिन्न भिक्षुणियों को मार सद्धर्म से च्युत करने का असफल प्रयास करता है। इसके अतिरिक्त सुत्तों में मार क्या है? मार–पास क्या है? तथा मार–विजय के उपाय आदि विषयों पर चर्चा की गई है।

'अभिधानप्पदीपिका' में मार के आठ नाम बतलाये गए हैं–

अन्तक, वसवत्ती, पापिमा, पजापति, पमत्तबन्धु, कण्ह, मार एवं नमुचि।[55]

संयुत्तनिकाय में भी इनमें से अनेक नाम मिलते हैं।

मार–मार सर्वाधिक प्रचलित नाम है। यह 'मार' नाम मारने वाला होने से कहा गया है। [56] 'मार' शब्द मृ धातु से घञ् प्रत्यय लगाकर बना है, जिसका अर्थ मारने वाला है। [57]

पापिमा– यह नाम मार के पापी स्वभाव के कारण है। [58] इसका प्रयोग कहीं 'मारो पापिमा' [59] के रूप में तथा कहीं 'पापिम' [60] के रूप में हुआ है।

पमत्तबन्धु–प्रमादियों का मित्र होने से प्रमत्तबन्धु कहा जाता है। संयुत्त निकाय में इसका प्रयोग मार द्वारा प्रमाद में लगाते समय किया गया है। [61]

वसवत्ती–मार को यह संज्ञा सभी को वश में करने वाला होने से दी गई है। [62] संयुत्तनिकाय में वसवती का उल्लेख देवता के रूप में है। वसवर्ती देवता को काम बन्धनों में बंधा बतलाया है। [63] सम्भवतया इन्हीं देवताओं को वसवर्ती मार की संज्ञा दी गई है।

नमुचि– अट्ठकथा में 'नमुचि' कहने का कारण प्रस्तुत करते हुए कहा है कि इसके विषय से देव–मनुष्य भी नहीं बचता, मार के द्वारा अन्तराय किया जाता है, इसलिए नमुचि कहा जाता है। [64]

अन्तक– अन्त मृत्यु को कहा गया है। [65] मार को मृत्यु का सूचक एवं उसका देवता भी कहा जाता है। [66] संयुत्तनिकाय में मार के लिए 'अन्तक' इस शब्द से सम्बोधित किया गया है। [67] मार के पांच प्रकारों में भी मच्चुमार एक प्रकार है।

मार के प्रकार– पालि साहित्य में मार के पांच प्रकार बतलाये जाते हैं– स्कन्ध–मार, क्लेश–मार, अभिसंस्कार–मार, मृत्युमार तथा देवपुत्त–मार।[68] संयुत्तनिकाय में मार का यह विभाजन वर्णित नहीं है, लेकिन ये विभिन्न रूप परिलक्षित होते हैं।

मार सेना–सुत्तनिपात में मार की सेना के दस प्रकार बतलाए गये हैं– काम, अरति, भूखप्यास, तृष्णा, आलस्य, भीरूता, संदेह, ईर्ष्या, जड़ता, अनुचित ढंग से प्राप्त यश, लाभ, प्रशंसा एवं सत्कार, अपनी प्रशंसा एवं दूसरों की निन्दा। [69] संयुत्तनिकाय में मार की सेना के रूप में तृष्णा, रति और राग ये तीन कलायें बतलाई गई हैं। ये कलायें विभिन्न प्रकार के रूप धारण कर भगवान् के ध्यान में बाधा पहुंचाने का असफल प्रयास करती है। [70] संयुत्तनिकाय में मार द्वारा अपनाए गए वे विभिन्न तरीके वर्णित हैं जिनके द्वारा मार ने सद्धर्म में लगे साधकों को च्युत करना चाहा था।

मार डरा देने वाले, कंपा देने वाले, रोयें खड़े कर देने वाले, शान्ति को तोड़ देने वाले शब्दों को करते हुए आता था। भिक्षुणियां समझ ही नहीं पाती थीं कि यह मनुष्य या अमनुष्य किसका शब्द है। किन्तु जब मार प्रश्न पूछता था तो उसके टेढ़े प्रश्नों के आधार पर वे समझ जाती थीं कि यह पापी मार है। [71]

एक बार भगवान् द्वारा उपदेश देते समय पापी मार ने आकर भयंकर शब्द

किया, जिससे सभी भिक्षु घबड़ा गये और समझने लगे कि पृथ्वी में भूचाल उठ गया है। [72] इसके अतिरिक्त मार ने बाधा पहुंचाने के लिए विशाल हाथी, [73] विशाल सर्पराज, [74] कृषक [75] एवं ब्राह्मण [76] आदि विभिन्न रूप धारण कर डराया था। मार भगवान् को चोट पहुंचाता था एवं उनको भिक्षा में बाधा उपस्थित करता था। किन्तु भगवान् इन बाधाओं से विचलित नहीं हुए। चोट पहुंचाने पर भगवान् ने कहा था कि मार कितनी भी चोट पहुंचाए उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। [77] भिक्षा न मिलने पर भगवान् ने कहा था कि वह आभास्वर देवताओं के समान प्रीति से सन्तुष्ट होकर रहेंगे। [78]

मार भगवान् बुद्ध एवं भिक्षुणियों को संसार में आसक्त रखने, वैराग्य से च्युत करने के लिए प्रयास करता था। एक समय भगवान् विचार कर रहे थे कि बिना मारे, मरवाये, जीते या जितवाये, बिना दुःख दिये या दिलवाये धर्म पूर्वक राज्य किया जा सकता है। मार भगवान् के पास आकर उनकी बात का समर्थन करते हुए निवेदन करता है कि भगवान् राज्य करें। [79] एक समय भगवान् आयु की अल्पता बतलाकर पुण्य कमाने का सलाह दे रहे थे तब मार आकर कहता है कि मनुष्यों की आयु लम्बी है, सत्पुरुष इसकी चिन्ता न करें, दूध पीने वाले बच्चे की तरह रहें, मृत्यु अभी नहीं आ रही है। [80] चाला–भिक्षुणी को संसार में आकर्षित करने के लिए मार पूछता है कि उसको क्या कठिनाई है, संसार क्यों अच्छा नहीं लगता? [81]

भगवान् बुद्ध के ध्यान में लीन हाने पर मार की तीन कन्याएं उनके पास आकर विभिन्न सुन्दरियों के रूप प्रकट करती हैं। [82] भिक्षुणियों द्वारा एकान्तवास करने पर भी मार विभिन्न प्रकार से उनको कामसुख में लगाने का प्रयास करता है।[83] मार भिक्षुणियों को हतोत्साहित करता है। उनके विभिन्न दोष खोजने का असफल प्रयास करता है। मार भगवान् के पीछे सात वर्ष तक पड़ा रहा और कोशिश करता रहा कि कोई दोष मिल जाय।[84] किन्तु मार को भगवान् में कोई दोष मिला नहीं। फिर भी वह आरोप लगाता रहता था कि वे धर्म से च्युत हो रहे हैं।[85] भिक्षुणियों को हतोत्साहित करते हुए कहता है कि उनकी प्रव्रज्या बेकार है। जिस पद को ऋषि लोग पाते हैं, उस पद को दो अंगुल प्रज्ञा वाली स्त्रियां कभी नहीं पा सकतीं।[86]

भगवान् ने जब बहुजनहिताय बहुजनसुखाय विचरने का निश्चय किया तब मार ने भगवान् को दिव्य और मनुष्य लोक के बन्धनों से युक्त बतलाया था।[87] भगवान् द्वारा उपदेश देते समय मार कहता है–दूसरों को उपदेश क्यों देते हो, ऐसा करके तुम अनुरोध और विरोध के चक्कर में फंस रहे हो।[88]

मार विभिन्न प्रकार के टेढ़े प्रश्न पूछता था। उसने एक भिक्षुणी से पूछा कि तुमको कौन सा सम्प्रदाय रुचता है? जिसके उत्तर में भिक्षुणी ने बौद्ध धर्म में श्रद्धा व्यक्त करते हुए उसे सम्प्रदायातीत बतलाया।[89]

मार का स्वरूप—संयुत्तनिकाय में वर्णित है कि भिक्षुओं के पूछने पर कि मार—मार कहा जाता है। यह मार क्या है? भगवान् कहते हैं कि यह चक्षु, रूप, चक्षुविज्ञान, चक्षुविज्ञेय आदि योग्य जो धर्म हैं यही मार है।[90] चक्षुविज्ञेय आदि धर्मों में अभिनन्दन करना मार बन्धन है।[91] छः आयतनों को मार की वंशी कहा गया है, जो छः आयतनों में आसक्त है, वह मार के चक्कर में है, उसको मार जैसा चाहे वैसा कर सकता है।[92] छः आयतनों में आसक्ति राग, द्वेष और मोह से होती है।[93] इसी प्रकार पांच उपादानस्कन्धों को मार कहा गया है।[94] शरीर, मन और वचन से संयत रहने वाला मार के वश में नहीं पड़ता।[95] सात सम्बोध्यंगों की भावना करने को मार सेना को तितर—बितर करने वाला मार्ग कहा गया है।[96]

आधुनिक विद्वानों ने मार के मूर्त रूप में अवश्विास प्रकट किया है। उनका विचार है कि प्राचीन साहित्य में मार का विशद वर्णन मिलता है, लेकिन कमबद्ध नहीं है इसलिए मार विजय की कल्पना उत्तर कालीन है।[97] डा0 गोविन्द चन्द्र पाण्डेय ने मार को ज्ञान की प्राप्ति के लिए सांसारिक आकर्षणों के साथ जो अन्तर्द्वन्द्व अनिवार्य हैं, उसको ही मार घर्षण की कथा में एक कल्पित नाटकीय रूप माना है।[98] डा0 महेश तिवारी ने मार को एक देवपुत्र, अकुशल भावना तथा भवपरम्परा के रूप में माना है।[99] श्री डेविड्स का विचार है कि मार की कथा में एक अध्यात्मिक व्यापार का बाह्य इतिवृत्त के रूप में चित्रण किया गया है।[100]

निष्कर्ष में हम मार के दो रूप पाते हैं— मूर्तरूप(लौकिक) तथा अमूर्त रूप (अलौकिक)। यद्यपि मार के लौकिक रूप का स्पष्ट उल्लेख नहीं है तथापि उसके अलौकिक रूप के आधार पर विभिन्न लौकिक रूपों की कल्पना की गई है। उस समय सद्धर्म विरोधी जो विभिन्न व्यक्ति थे उनमें मार की कल्पना की गई होगी।

बौद्ध साहित्य में मार का विशद वर्णन इस बात की पुष्टि करता है कि धार्मिक परम्परा में सद्धर्म विरोधियों की उपेक्षा नहीं की जा सकती है।

नरक का चित्रण :—

संयुत्तनिकाय के कोकालिक सुत्त में नरक के विभिन्न प्रकार एवं उनकी अवधि का वर्णन है— अब्बुदक—नरक, निरब्बुद—नरक, अबब—नरक, अट्ट—नरक, अगह—नरक, कुमुद—नरक, सौगन्धिक—नरक, उत्पल—नरक, पुण्डरीक—नरक एवं पद्म—नरक।

नरक की अवधि के सम्बन्ध में कहा गया है कि बीस खारी (कोसल के नाम से) बिल के भार से कोई सौ साल, हजार साल पर एक तिल का दाना निकाले तब भी तिल का भार समाप्त हो जायगा लेकिन एक अब्बुद नरक पूरा नहीं होगा।

बीस अब्बुद नरक का एक निरब्बुद—नरक, बीस—निरब्बुद नरक का एक अबब—नरक, बीस—अबब नरक का एक अट्ट—नरक, बीस अटट—नरक का एक

अहह–नरक, बीस अहह–नरक का एक कुमुद–नरक, बीस कुमुद–नरक का एक सौगन्धिक–नरक, बीस सौगन्धिक–नरक का एक उत्पल–नरक, बीस उत्पल–नरक का एक पुण्डरीक–नरक तथा बीस पुण्डरीक–नरक का एक पद्म–नरक बतलाया गया है।

कोकालिक भिक्षु को पद्म–नरक में उत्पन्न बतलाया गया है क्योंकि वह सारिपुत्त और मौद्गल्यायन की निन्दा करता था।[101] संयुत्तनिकाय के विभिन्न प्रसंगों में नरकगति के कारण बतलाये गये हैं। पालि साहित्य में नरक के सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा मिलती है।[102]

ऐतिहासिक विवरण

संयुत्तनिकाय में कोसलराज प्रसेनजित् मगधराज अजातशत्रु, वत्सराज लिच्छवियों का परिचय मिलता है। अभयराज कुमार का भी उल्लेख है।

कोसलराज प्रसेनजित :–

कोसलराज प्रसेनजित् की राजधानी श्रावस्ती थी।[103] इसके अधीन पांच राजाओं का उल्लेख मिलता है।[104] इसकी पत्नी का नाम मल्लिका देवी था।[105]

प्रसेनजित् भगवान् बुद्ध का उपासक था। इसके पहले वह अन्य तैर्थिकों को मानता था।[106] राजा प्रसेनजित् को यज्ञ करते हुए भी बतलाया है। उसने यज्ञ के निमित्त पांच–पांच सौ बैल, बछड़े, बछड़िया, बकरियां एवं भेड़ों को यज्ञ–धूण में बंधवा दिया था। जब भगवान् बुद्ध को इस बात का पता चला तो भगवान् ने उसके पास जाकर ऐसे उचित यज्ञ का विधान किया जिसमें जीवहिंसा नहीं होती और पुण्य प्राप्ति होती है।[107] प्रसेनजित् के प्रति भगवान् की सहानुभूति रहती थी। जब यह अजातशत्रु से हार जाता है तो भगवान् कहते हैं कि प्रसेनजित् की आज की रात्रि परेशानी से व्यतीत होगी क्योंकि वह सज्जन व्यक्ति है।[108] प्रसेनजित् भगवान् बुद्ध से शिक्षा ग्रहण करता है कि वह स्मृतिमान् रहते मात्रा से भोजन करेगा। इसके लिए वह एक माणवक को नियुक्त करता है, जो उसके भोजन करते समय मात्रा से भोजन करने वाले आशय की गाथा दोहराता है। मात्रा से भोजन करने से प्रसेनजित् अपने लिए सुडौल और गठीला महसूस करता है।[109] प्रसेनजित् धार्मिक था। वह कचहरी जाना इसलिए छोड़ देता है कि वहां सभी लोग झूठ बोलते हैं।[110] वह आध्यात्मिक प्रवृत्ति का था। वह विभिन्न आध्यात्मिक विषयों की चर्चा करता है।[111]

प्रसेनजित् की लड़की पैदा होने का वृत्तान्त भी मिलता है। वर्णित है कि लड़की पैदा होने से प्रसेनजित् उदास हो गया था।[112]

प्रसेनजित् की दादी एक सौ बीस वर्ष की उम्र में मृत्यु को प्राप्त हुई थी। प्रसेनजित् शोक व्यक्त करते हुए कहता है कि वह हस्तिरत्न और अन्यरत्नों को भी

छोड़ सकता है यदि उसकी दादी न मरे। उसे दादी से इतना प्यार था। उत्तर में भगवान् सभी को मरणशील बतलाते हैं।[113]

अजातशत्रु :—

वह मगध का राजा था। इसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी। इसको वैदेहि पुत्र कहा गया है। संयुत्तनिकाय में इसका उल्लेख पापेच्छ के रूप में मिलता है। भगवान् इसे बुरे लोगों से मिलने वाला और बुराई ग्रहण करने वाला बतलाते हैं।[114] भगवान् उपदेश देते समय कहते हैं कि जिस प्रकार लिच्छवि लापरवाही करेंगे तो अजातशत्रु उन पर आकमण कर देगा, उसी प्रकार भिक्षुओं की लापरवाही से मार उन पर आकमण कर देगा।[115] यहां पर अजातशत्रु का व्यक्तित्व सद्धर्म विरोधी मार के सदृश वर्णित है। अजातशत्रु कोशलराज प्रसेनजित् का भांजा था। काशी प्रसेनजित् के अधीन थी। संयुत्तनिकाय में अजातशत्रु और प्रसेनजित के बीच दो बार युद्ध होने का उल्लेख मिलता है।[116] इन दोनों में युद्ध का मूल कारण यह था कि अजातशत्रु ने अपने पिता बिम्बसार की हत्या कर दी थी, जिससे दुःखी होकर प्रसेनजित् की बहिन कौसला देवी ने भी आत्महत्या कर ली थी। तत्पश्चात् प्रसेनजित ने काशी प्रदेश अजातशत्रु से छीन लिया था। काशी प्रदेश कोशलराज द्वारा मगधराज बिम्बसार को दहेज में दिया गया था।[117] अजातशत्रु और प्रसेनजित् के मध्य हुए युद्ध में प्रथम बार अजातशत्रु की जीत हुई थी।[118] दूसरी बार प्रसेनजित् की। प्रसेनजित् ने अजातशत्रु को बन्दी बना लिया था लेकिन बाद में उसे अपना भांजा समझकर छोड़ दिया।[119]

कुमार अजातशत्रु को पापेच्छु देवदत्त का सहायक बताया गया है।[120] अजातशत्रु को लिच्छवियों के प्रति आकामक बताया गया है। वह हमेशा दावपेच चलाता रहता था कि किसी प्रकार वह लिच्छवियों को वश में कर ले।[121] दीघनिकाय में भी वर्णित है कि लिच्छवियों को जीतने के लिए उसका अमात्य भगवान् के पास जाता है और जीतने के उपाय पूछता है।[122]

लिच्छवि—लिच्छवियों के सम्बन्ध में वर्णित है कि वे लकड़ी के बने तख्त पर सोते थे, अप्रमत्त हो उत्साह के साथ अपना कर्तव्य पूरा करते हैं, इसलिए मगधराज अजातशत्रु उसपर दांवपेच नहीं चला पा रहा है।

लिच्छवियों के सम्बन्ध में भविष्य कथन किया गया है कि अनागत काल में लिच्छवि सुकुमार कोमल हाथ वाले, गद्देदार बिछावन और गुलगुले तकिया लगाकर दिन चढ़े तक सोने वाले हो जाएंगे तो लिच्छवियों के विरूद्ध अजातशत्रु को आकमण करने का अवसर मिल जाएगा।[123]

राजा उदयन :—

यह वत्स—देश का राजा था। इसकी राजधानी कौशाम्बी थी। इसके सम्बन्ध में संयुत्तनिकाय में मात्र यह उल्लेख है कि यह पिण्डोल भारद्वाज से ब्रह्मचर्य

का सफलता के सम्बन्ध में प्रश्न पूछता है और उत्तर से सन्तुष्ट होकर भगवान् धर्म तथा भिक्षुसंघ की शरण स्वीकार कर लेता है।[124]

अभय राज कुमार :–

इनका उल्लेख मात्र इतना है कि ये भगवान् के पास राजगृह में जाकर पूरणकाश्यप के अहेतुवाद के सम्बन्ध में प्रश्न पूछते हैं। भगवान् के उत्तर से सन्तुष्ट होकर ये कहते हैं कि गृद्धकूट पर्वत में चढ़ने–उतरने से जो थकान हुई थी वह शान्त हो गई।[125]

सामाजिक स्थिति

भारतवर्ष में वर्णव्यवस्था प्राचीन काल से मिलती है। ऋग्वेद काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शुद्र वर्गो का अस्तित्व चतुर्वर्ग के रूप में था। व्यक्ति को यह अधिकार था कि वह अपने मनोनुकुल वर्ण का सदस्य बन जाय। आर्य तथा दासवर्ग का विभाजन स्पष्ट था। ब्राह्मणयुग आते समय तक वर्ण व्यवस्था की मान्यता चरम सीमा पर पहुंच गई थी। उस समय यह धारणा फैला दी गई थी कि सृष्टि ने ही समाज का विभाजन चतुर्वर्ण में कर दिया है तथा मानव पूर्वजन्म के आधार पर ही विभिन्न जातियों में जन्म ग्रहण करता है, किन्तु भगवान् बुद्ध ने तत्कालीन परम्परागत मान्यताओं को निरर्थक बतलाया है। वर्ण तथा जाति को गौण करते हुए उन्होंने सत्कर्मो की महत्ता प्रतिपादित की।[126]

भगवान् ने जन्म के आधार पर ब्राह्मणों के घमण्ड को कई प्रसंगों में तोड़ा है। शुद्धिक सुत्त में कहा गया है कि बहुत बोलने वाला मलिनचित्त ढोंगी, चालबाज व्यक्ति जाति से ब्राह्मण नहीं होता, जो भी उत्साही, आत्मसंयमी उद्यम में रत रहता है, क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चण्डाल या पुक्कुस परम शुद्धि को प्राप्त कर लेता है।[127] यही बात शूरवीरों के सम्बन्ध में कही गई है कि सेवा में वीरों को ही सम्मिलित किया जाता है जाति के आधार पर मात्र क्षत्रिय को नहीं।

संयुत्तनिकाय में जातियों के दो विभाजन मिलते हैं– उच्चकुल एवं निम्नकुल। उच्चकुल के अन्तर्गत क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य तथा गृहपति एवं निम्नकुल में चण्डाल, शूद्र, वेन, निषाद, रथकार तथा पुक्कुस को माना गया है। व्यक्तियों के दो प्रकार के कर्म बतलाए गये हैं– सदाचरण एवं दुराचरण। इन दोनों कर्मो के शारीरिक, वाचसिक तथा मानसिक आधार पर एवं दान तथा कृपणता के आधार पर व्यक्तियों को विभाजित किया है।

निम्नकुल में उत्पन्न चण्डालकुल, निषदकुल, रथकार कुल, पुक्कुसकुल, दरिद्रकुल की स्थिति बतलाई गई है कि उनको खाना–पीना बड़ी कठिनाई से मिलता था। इनमें कोई दुर्वर्ण, नाटा, मरीज, काना, लूला, लंगड़ा होता था। इन्हें अन्न, पान, वस्त्र, सवारी, माला, गंध, विलेपन, शैय्या, घर, प्रदीप कुछ भी प्राप्त नहीं होता था।

उच्च कुल में उत्पन्न क्षत्रिय, ब्राह्मण एवं गृहपति को धनाढ्य, महाधन—महाभोग वाला बतलाया गया है। ये सुन्दर, दर्शनीय, साफ और रूपवान् होते थे। उनको अन्न—पान, वस्त्र, सवारी, माला—गन्ध—विलेपन, शय्या घर और प्रदीप आसानी से प्राप्त होते थे।

उच्चकुल एवं निम्नकुल में उत्पन्न व्यक्तियों को भगवान् ने सदाचरण एवं दुराचरण के आधार पर चार प्रकारों में बांटा है। तमतमपरायण, तमज्योतिपरायण, ज्योतितम—परायण एवं ज्योति—ज्योति—परायण।

तमतम परायण— जो निम्न कुलों में उत्पन्न होकर दुराचरण एवं कृपणता वाले कार्य करते हैं वे तमतम—परायण हैं।

तमज्योति परायण— जो नीच कुलों में उत्पन्न होकर सदाचरण एवं दान देने वाले पुण्य कार्य करते हैं, वे तमज्योति—परायण हैं।

ज्योतितम परायण— जो उच्चकुलों में उत्पन्न होकर दुराचरण एवं पापकृत्य करते हैं, वे ज्योतितम—परायण हैं।

ज्योति ज्योति—परायण—जो उच्चकुल में उत्पन्न होकर सदाचरण एवं पुण्य के कार्य करते हैं वे ज्योति—ज्योति—परायण हैं।

यहां सदाचरण करने वाले व्यक्तियों की परलोक में सुगति एवं एश्वर्य की प्राप्ति बतलाई गई है तथा दुराचरण करने वाले व्यक्तियों की निम्न गति बतलाई गई है। सदाचरण करने वाले निम्नगति में उत्पन्न व्यक्ति इस लोक में कोई सुफल प्राप्त करता हो ऐसा उल्लेख नहीं है।[128]

क्षत्रिय :—

क्षत्रियों को मनुष्य जाति में सर्वश्रेष्ठ कहा जाता था लेकिन भगवान् सम्बुद्धों को मनुष्यों में श्रेष्ठ बतलाते हैं,[129] किन्तु जब वे अन्य जातियों का उल्लेख करते हैं तो सर्वप्रथम क्षत्रियों का उल्लेख करते हैं।[130] इस सन्दर्भ में सनत् कुमार ब्रह्म के कथन से बात स्पष्ट हो जाती है कि गोत्र का विचार करने वालों में क्षत्रिय श्रेष्ठ है तथा विद्याचरण सम्पन्नों में भगवान् बुद्ध हैं।[131] राजा प्रसेनजित् से भगवान् कहते हैं कि चार को छोटा समझकर उपेक्षा नहीं करनी चाहिए— क्षत्रिय, सांप, अग्नि और भिक्षु। क्षत्रियों की उपेक्षा न करने का कारण बतलाया गया है कि क्षत्रिय पद पर आरुढ़ होकर राजशक्ति से अपना बदला ले लेता है।[132]

भगवान् बुद्ध राजाओं को महाराज! सम्बोधित करते हैं।[133] क्षत्रियों द्वारा श्रमणों को नमस्कार करना गौरव की बात मानी जाती थी।[134]

ब्राह्मण :—

संयुत्तनिकाय में ब्राह्मण शब्द का प्रयोग दो अर्थ में हुआ है— एक ब्राह्मण जाति के साथ और दूसरा श्रमण—ब्राह्मण के अर्थ में। भगवान् ने मनुष्य की जन्म के

आधार पर ब्राह्मण न मानकर गुणों के आधार पर ही ब्राह्मणत्व की व्याख्या की है।

कहा गया है कि प्राचीन काल में ब्राह्मण शीलवान् होते थे, जो धर्माराधन करते हुए इन्द्रिय–संयत, क्रोध–विजयी, हमेशा धर्मध्यान में रत रहते थे, यही ब्राह्मण धर्म था। भगवान् बुद्ध के समय में ब्राह्मण सत्कर्मों को छोड़ जाति–गोत्र की रट लगाते हुये विपरीत आचरण करने लगे थे। वे क्रोध से तमतमाये रहते, घमण्ड में ऐंठे रहते, स्थावर और जंगम प्राणियों को सताते थे, असंयत हो गए थे। स्वप्न में धन प्राप्त करने की भांति व्यर्थ के उपवास में विश्वास करते थे। उनकी क्रियायें थीं– कड़ी जमीन में सोना, प्रातः स्नान करना, तीन वेद का पाठ, चर्मवस्त्र ओढ़ना, जटा रखना और भस्म लगाना, शील–व्रत, तपस्या, पाखण्ड, आड़ा–तिलक, जल का आचमन आदि इन सबको ब्राह्मणों का भण्ड (सामग्री) कहा गया है। इनके आधार पर वे विभिन्न प्रकार से जोड़ने–बटोरने में लगे रहते थे।[135]

पश्चिम भूमि वाले ब्राह्मणों के सम्बन्ध में वर्णित है कि वे कमण्डल रखते थे, शैवाल की माला पहनते थे और सुबह–शाम पानी में बैठे, अग्नि की परिचर्या करते रहते थे। मृतात्माओं को बुलाकर उनको स्वर्ग भेजने का प्रलोभन देते थे।[136]

ब्राह्मण संयुत्त में 31 सुत्त हैं, जिनमें विभिन्न ब्राह्मणों का भगवान् के साथ वाद–विवाद वर्णित है। अधिकांश ब्राह्मणों के नाम उनके कर्म व स्वभाव के अनुरूप हैं।

अक्कोसक–भारद्वाज ब्राह्मण को क्रोध करते बताया गया है।[137] सुद्धिक–भारद्वाज शुद्धि के सम्बन्ध में चर्चा करता है।[138] जटा–भारद्वाज जटा के सम्बन्ध में अन्तोजटा बहिजटा जटाय जटिता पजा वाली प्रसिद्ध गाथा प्रश्न के रूप में पूछता है जो पहले देवता द्वारा पूछी गई वर्णित है।[139] कृषि–भारद्वाज ब्राह्मण कृषक है।[140] अभिमान–अकड़ ब्राह्मण को अभिमानी बतलाया गया है।[141] झगड़ालू–ब्राह्मण को मलिन चित्त, झगड़े के लिए सन्नद्ध बताया गया है।[142] लवकार्तिक ब्राह्मण शाल के वृक्ष कटवा रहा है।[143] मातृपोषक ब्राह्मण अपने माता–पिता का सेवक है।[144] भिक्षुक ब्राह्मण भिक्षावृत्ति से जीवन–यापन करता है।[145]

यह उल्लेखनीय है कि उक्त सभी प्रकार के ब्राह्मण पहले वाद–विवाद करने एवं भगवान् बुद्ध को पराजित करने के लिए आते हैं, लेकिन अन्त में भगवान् से प्रभावित होकर उपासकत्व स्वीकार करते हैं।

भारद्वाज ब्राह्मण के कहने पर कि तीन वेदों का ज्ञाता, ऊँची जाति का भारी विद्वान्, विद्या और आचरण से सम्पन्न ब्राह्मण हव्य का अधिकारी होता है। भगवान् ने कहा कि– बहुत बोलने वाला, मलिन मन, ढोंगी, चालबाज कोई व्यक्ति जाति से ब्राह्मण नहीं होता। जो पूर्वजन्म की बातों को जानता है, स्वर्ग और अपाय को देखता है, आवागमन से छूट गया है, वही परमज्ञानी मुनि, त्रैविद्य और ब्राह्मण होता है, वही

विद्या और आचरण से सम्पन्न है।[146]

सुन्दरिक–भारद्वाज ब्राह्मण भगवान् से जाति पूछते हैं। भगवान् कहते हैं कि जाति मत पूछो, कर्म पूछो। लकड़ी से भी आग पैदा होती है, नीच कुल वाले भी धीर मुनि होते हैं। सत्य से दान्त, संयमी, दु:खों के अन्त को जानने वाले ब्रह्मचर्य के फल को पाते हैं।[147] ब्राह्मण के विषय में भगवान् का मत था कि ब्राह्मण क्षीणास्रवी, चतुरध्यानी जन्म और मृत्यु को पार कर चुका होता है। ब्राह्मण को कुछ भी करना शेष नहीं रहता। प्राणी जब तक नदियों में रहते हैं तैरने का प्रयत्न करते हैं, जमीन पर आने के बाद कोशिश समाप्त हो जाती हैं, यही बात ब्राह्मण के विषय में हे, उसे जो करना था सो कर लिया।[148]

ब्राह्मण धर्म प्राप्ति के मार्ग के रूप में बतलाया गया है कि सुसमाहित चित्त पूरी तरह प्रसन्न और निर्मल तथा सभी जीवों पर दया रखना ही ब्राह्मण प्राप्ति का मार्ग है।[149]

श्रमण और ब्राह्मण :–

संयुत्तनिकाय में श्रमणों को जाति विहीन कहा गया है।[150] अधिकांश प्रसंग ऐसे हैं जिनमें श्रमणों और ब्राह्मणों की समान रूप से चर्चा है आर्य–अष्टांगिक मार्ग श्रामण्य और ब्राह्मण्य के रूप में वर्णित है तथा स्रोतापत्ति, सकृदागामी, अनागामी एवं अर्हत् को श्रामण्य और ब्राह्मण्य का फल कहा गया है।[151] इसी प्रकार पांच इन्द्रियां, पांच बल, चार सम्यक्प्रधान, चार ऋद्धिपाद, षडायतन, पंचस्कंध आदि के प्रत्यय, समुदय, निरोध, आस्वाद, दोष और मोक्ष के जानने वालों में श्रमण और ब्राह्मण भाव बतलाया गया है।[152]

ऐसे श्रमणों और ब्राह्मणों की संख्या कम बतलाई गई है, जिनमें श्रमण और ब्राह्मण भाव था। उन श्रमण और ब्राह्मणों की संख्या अधिक बतलाई गई है जिनमें श्रमण और ब्राह्मण भाव का अभाव था।[153] राग, द्वेष, और मोह से क्षय को प्राप्त श्रमण और ब्राह्मण कहलाने का अधिकारी कहा गया है।[154]

विभिन्न प्रसंगों में भगवान् बुद्ध को ब्राह्मण कहा गया है।[155] ब्राह्मण संयुत्त में अधिकांश ब्राह्मणों ने अपने–अपने विषयों की चर्चा करने के बाद चिन्तन करके अनुभव किया कि भगवान् बुद्ध ही वास्तव में ब्राह्मण कहलाने के अधिकारी हैं। ब्राह्मण अपना हव्य (भिक्षान्न) स्वीकार करने के लिए भी भगवान् से निवेदन करते हैं, लेकिन भगवान् उसे अस्वीकार कर देते हैं, क्योंकि उपदेश से ग्रहण किया गया भिक्षान्न ब्राह्मण धर्म के योग्य नहीं है।[156]

वैश्य :–

वैश्य वर्ण के लिए पालि साहित्य में वैश्य गृहपति श्रेष्ठी, कोटुम्बिक आदि संज्ञाओं से अभिहित किया गया है।[157]

संयुत्तनिकाय में श्रेष्ठी एवं गृहपति का परिचय मिलता है। इनको धन–वैभव सम्पन्न बतलाया गया है। श्रेष्ठियों के दानी एवं कंजूस दोनों रूप प्राप्त होते हैं। अनाथपिण्डक ग्रहपति का वर्णन श्रेष्ठ दानी के रूप में मिलता है। उन्होंने अपना पूरा जेतवन भगवान् को दान कर दिया था।[158] भगवान् ने अनाथपिण्डक को सुदत्त की संज्ञा दी थी।[159]

दो सुत्तों में कंजूस गृपतियों का परिचय मिलता है। इनके वैभव का वर्णन करते हुए बतलाया गया है कि अस्सी लाख अशर्फियों एवं सौ लाख अशफियों वाले थे। इनकी कोई सन्तान नहीं थी। स्वभाव से कंजूस थे। भोजन के नाम से मट्ठे के साथ खुद्दी का भात खाते थे। टाट के समान कपड़े पहनते थे तथा पत्तों की छतरी वाले रथ में यात्रा करते थे। इनकी मृत्यु के बाद प्रसेनजित राजा ने इनका धन राजकोष में जमा करवा लिया था।[160]

गृहपतियों में तीक्ष्ध्स बुद्धिवालों में चित्र गृहपति का नाम आया है। ये भगवान् बुद्ध के सिद्धान्तों के ज्ञाता थे तथा वाद–विवाद में निपुण थे। ये पहले निगण्ठनाट–पुत्त (भगवान् महावीर) के उपासक थे, बाद में भगवान् बुद्ध के उपासक हुए। भगवान् बुद्ध इनकी प्रतिभा की प्रशंसा करते हैं।[161] इनको 'गोशाला' का स्वामी बतलाया गया है जिसमें इन्होंने भिक्षुओं को भोजन दिया था।[162]

इनकी मृत्यु के पहले देवता कहता है कि यदि वे जीवित रहेंगे तो चकवर्ती राजा होंगे।[163]

निम्न जातियां :–

निम्न जातियों में चण्डाल, बेन, निषाद, रथकार, पुक्कुस आदि जातियां गिनाई गई हैं। इनको खाना–पीना कठिनता से प्राप्त होता था तथा वे ऐश्वर्य से वंचित रहते थे। इनको निम्न कुलोत्पन्न कहा गया है। इनको क्षत्रिय, ब्राह्मण एवं वैश्य के बाद शूद्र के रूप में गिना जाता है।[164]

डा0 मदन मोहन सिंह ने शूद्र एवं हीन जातियों को अलग–अलग विभाजित किया, जिसमें शूद्र के अन्तर्गत कृषिकार्य एवं शिल्प कार्य करने वालों को एवं हीन जातियों में चंडाल, निषाद, पुक्कुस, वेण तथा रथकार को माना है।[165] लेकिन इनका यह विभाजन उचित प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि शूद्रों एवं निम्नजातियों में अन्तर नहीं माना जा सकता। कृषिकार्य एवं शिल्पकार्य ब्राह्मण[166] से ले कर सभी जातियां करती थीं और करती हैं, जिनको शूद्र की संज्ञा नहीं दी जा सकती है।

संयुत्तनिकाय के गामणी संयुत्त में चण्ड, नर, सिपाही, घुड़सवार, हाथीसवार के कार्यो को नरक एवं तिरष्चीन गति वाले कार्य बतलाया गया है। ये कार्य विभिन्न ग्रामीण करते थे।[167] उनमें से कुछ ग्रामीण भगवान् बुद्ध एवं उनके शिष्यों से दार्शनिक प्रश्न पूछते थे एवं वाद–विवाद भी करते थे।[168] एक ग्रामीण को राजभवन का सभासद

भी बतलाया गया है।[169]

नारी :–

बौद्धकाल में नारी की अवस्था पहले से उन्नत हो गई थी। वैदिक काल से महाभारत काल तक नारी की स्थिति ठीक नहीं थी। वैदिक युग में नारी का स्थान महत्त्वपूर्ण था।[170] वैदिक युग के आरम्भ में यज्ञादि कार्यो में तुल्य अधिकार रखने वाली नारी को शनैःशनै यज्ञ के अधिकार से वंचित किया जाने लगा। उत्तर–वैदिककाल में स्त्रियों को शिक्षा से वंचित रखा गया।[171] ब्राह्मण साहित्य में ऋणमुक्ति के सिद्धान्त के कारण पुत्रप्राप्ति को धार्मिक महत्त्व दिया गया।[172] सूत्रकाल में पुत्री के विवाह के कठोर नियम रहे[173] तथा पुत्र प्राप्ति को नाना महत्त्व दिया गया।[174] रामायण एवं महाभारत काल में पुत्री कष्ट का साकार रूप बन गई[175], गृहपत्नी के रूप में ऋणमुक्ति का साधन, [176] विधवा नारी अमंगल सूचक[177], एवं नारी को भिक्षुणी या साध्वी का अधिकार नहीं दिया गया।[178]

बौद्धकाल में प्रारम्भ में नारी के प्रति वही प्राचीन दृष्टिकोण थे। भगवान् के उदार दृष्टिकोण से धीरे–धीरे नारियों की अवस्था में उन्नति होती गई।[179]

संयुत्तनिकाय में नारी जीवन के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख मिलता है।

नारी का स्थान पुरुष से सदैव नीचा रहा है। बौद्धकाल में पुत्री की अपेक्षा पुत्र की प्राप्ति होने पर अधिक खुशी मनाई जाती थी। भगवान् इस भेद को समाप्त करना चाहते थे। यह इस बात से स्पष्ट होता है कि राजा प्रसेनजित् पुत्री पैदा होने पर उदास हुए तो भगवान् ने कहा कि कोई कोई स्त्री भी सुखों से बढ़ी–चढ़ी बुद्धिमती, शीलवती, सास की सेवा करने वाली पतिव्रता होती है, जिससे शूरवीर पुत्र पैदा होता है, जो राज्य का अनुशासन करता है।[180] भगवान् ने पत्नी को सबसे अच्छा मित्र[181] कहा है। माता के रूप में नारी को कुटिया के समान बतलाया है एवं पत्नी को घोंसला के समान।[182]

नारी की सार्थकता पति के होने से बतलाई गई है कि स्त्री की पहचान उसके पति से होती है।[183] सेवा करने वाली पत्नी श्रेष्ठ समझी जाती थी।[184] पति के कर्तव्यों में पत्नी का भरण–पोषण प्रमुख था। तंगी से रहते हुए भी जो स्त्री का पोषण करता था एवं थोड़ा भी दान करता था वह महत्त्वपूर्ण माना जाता था।[185] इन्द्र द्वारा उन व्यक्तियों के लिए नमस्कार किया गया है जो धर्मपूर्वक अपनी पत्नी का पालन–पोषण करते थे।[186]

नारियों के पांच दुःखों को बतलाया गया है जो मात्र नारियों को ही सहन करना पड़ता है।

1. अल्पायु में ही अपने बन्धुओं को छोड़कर पतिकुल में जाना।

2. ऋतुमती होना।

3. गर्भिणी होना।

4. सन्तान उत्पन्न करना तथा

5. अपने पति की सेवा करना[187]

नारी की प्रतिष्ठा उनके पांच गुणों के कारण बतलाई गई है, जिन गुणों के कारण कोई उस पर आकृष्ट होता है–

1. उनका रूपवान् होना,

2. शीलवान् होना,

3. दक्ष होना,

4. धनवाली होना तथा

5. गर्भ धारण करने वाली होना।[188]

इनमें से शील के अभाव में उसे घर से निकाल दिया जाता था, शेष गुणों के अभाव में उसकी मात्र प्रतिष्ठा कम होती थी।[189]

नारी भी पांच गुणों से युक्त पुरुषों पर आकृष्ट होती है–धनवाले, रूपवाले, शीलवाले, दक्ष तथा गर्भ देने में समर्थ।[190]

नारी के पांच परम दुर्लभ ऐश्वर्य बतलाये गये हैं, जिनसे युक्त रहने पर नारी प्रसन्न रहती है– अच्छे कुल में उत्पन्न होना, अच्छे कुल में उत्पन्न होकर अच्छे कुल में विवाहित होना, बिना सौत के रहना, पुत्रवती होना तथा स्वामी को वश में रखना। इन ऐश्वर्यो की प्राप्ति पुण्य कर्मो से बतलाई गई है।[191]

श्रद्धा, शील, विद्या, त्याग और प्रज्ञा को स्त्रियों की उन्नति, प्रसन्नता, एवं स्वास्थ्य का कारण कहा है। जीवहिंसा, चोरी, व्यभिचार, झूठ और सुरा–मद्यपान से विरत स्त्री को पुण्य कमाने वाली एवं इन दुर्गुणों से युक्त स्त्री को तथा पूर्वाह्न, मध्याह्न एवं सायंकाल में कमशः मलिन–चित्त, ईर्ष्या एवं काम–राग से युक्त स्त्रियों को दुर्गति वाली स्त्री कहा गया है।[192]

ईर्ष्यालु, श्रद्धारहित, कृपण, कुलटा, दुराचारिणी, अल्पश्रुत एवं चौड़ी स्त्री को दुर्गति वाली एवं इनके विपरीत गुणों से युक्त स्त्रियों को सुगति वाला बतलाया है।[193]

स्त्रियों में असुरक्षा की बात हमेशा रही है, उस समय भी अधिक स्त्रियों वाले कुलों को डाकू लूट लिया करते थे।[194] व्यभिचार को भीषण अपराध कहा है।[195] स्त्री को ब्रह्मचर्य का मल माना जाता था।[196]

सामाजिक समस्यायें :–

संयुत्तनिकाय के कुछ सुत्तों में तत्कालीन सामाजिक समस्याओं का उल्लेख मिलता है। बहुधीतर सुत्त में तत्कालीन सामाजिक समस्याओं का चित्रण मिलता है। भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण भगवान् को इन समस्याओं के अभाव में प्रसन्न बतलाता है।

बैलों के गुम जाने से, खेती बर्बाद हो जाने से–
तिल की खेती एक पत्ते या दो पत्ते वाली होकर नष्ट हो जाती थी।

भण्डार खाली होने से–

खाली भण्डार में चूहे कूदते रहते थे।

बिछावन में चीलर पड़े रहने से–सात–सात महीनों से पड़े बिछावन में चीलर रहते थे।

सात–सात विधवा लड़कियां एक–एक, दो–दो बच्चे वाली होकर रहती थीं।

पीली और तिलों से भरी शरीर वाली स्त्रियां अपने पति को लात मार कर जगाती थी।

प्रातःकाल से ही कर्जदार परेशान करते थे।[197]

कुल सुत्त में कुलों के नाश होने के आठ कारणों का उल्लेख करते हुए बतलाया है कि – राजा द्वारा, चोरों द्वारा, अग्नि से, पानी से, छिपे खजाने को नहीं जानने से, विचलित होकर अपना काम छोड़ने से, कुल में कुलांगार उत्पन्न होने से, तथा वस्तुओं के अनित्य स्वभाव के कारण कुलों का नाश होता है।[198]

धार्मिक स्थिति

भगवान् बुद्ध के समय नए विचारों की बाढ़ आ गई थी। ब्राह्मण अपने त्यागमय आदर्शो से च्युत हो रहे थे। भारतवर्ष में ब्राह्मण संस्कृति का प्रभाव चरम सीमा पर था। विद्वान् बुद्धिवाद के आधार पर नवीन मार्ग की व्यवस्था में लगे थे। विद्वज्जगत् में नियमन् के बिना अराजकता का विस्तार था। आध्यात्मिक विषयों को सन्देह की दृष्टि से देखा जाने लगा था। एक ओर संशयवाद की प्रभुता थी दूसरी ओर अन्धविश्वास की। दर्शन के मूल तथ्यों की अत्यधिक मीमांसा इस युग की विशेषता थी।

विचार के साथ ही सदाचार का ह्रास इस युग की दूसरी विशेषता थी। धर्म के बाह्य अनुष्ठानों ने धर्म के भीतरी रहस्य को भुला दिया था। आडम्बरों, देवतावाद, एकेश्वरवाद और कर्मकाण्ड के अनुष्ठान की ओर आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया जाता था तथा परलोक की मंगलकामना के प्रयत्न किए जाते थे। भगवान् बुद्ध ने जनता को अनाचार से सदाचार की ओर तथा अन्धश्रद्धा से तर्क की ओर मोड़ा। मानवता के प्रति लोगों के हृदय में आदर का भाव बढ़ाया। निर्वाण की प्राप्ति व्यक्ति के प्रयत्नों के आधार पर साध्य बतलाई। वैराग्य की पवित्रता को प्रदर्शित किया।[199]

धार्मिक आचार्य–जैन ग्रन्थों में तीन सौ तिरसठ जैनेतर मतों का उल्लेख मिलता है।[200] दीघनिकाय में बासठ दृष्टियों का वर्णन किया गया है।[201] पालि साहित्य में अन्य तैर्थिकों की चर्चा के प्रसंग में पूरणकाश्यप, मक्खलिगोसाल, प्रकुधकात्यायन,

अजितकेशकम्बली, सञ्जयवेलट्ठिपुत्त एवं निगण्ठनाटपुत्त– इन छः आचार्यो के नामों का प्रायः एक साथ उल्लेख मिलता है। [202]

भगवान् बुद्ध ने कुछ अन्य तैर्थिकों के मतों को दो अन्तों के अन्तर्गत एवं कुछ को अपूर्ण बतलाया है। विद्वानों ने इन तैर्थिकों के मतों की आलोचना की है, किन्तु इन तीर्थकरों के मतों की आलोचना करते समय यह भुला दिया गया है कि इन तीर्थकरों के मत ब्राह्मणवाद के विरोध में उठायी गई सशक्त आवाजें थीं। आधुनिक विद्वान् इस बात को स्वीकार करते हैं कि ब्राह्मणवाद के बढ़ते प्रभाव का विरोधकर इन तैर्थिकों ने श्रमण–संस्कृति के विकास का मार्ग प्रशस्त किया था। [203]

संयुत्तनिकाय में छः आचार्यो के सम्बन्ध में पर्याप्त सामग्री मिलती है। कुछ सुत्त ऐसे हैं, जिनमें छः आचार्यो को एक साथ गिनाया गया है। किन्तु कुछ सुत्तों में मात्र चार आचार्यो का ही उल्लेख है। कुछ सुत्तों में अलग–अलग आचार्यो के मतों की समीक्षा की गई है।

दहरसुत्त में वर्णित है कि ये सभी आचार्य संघवाले, गणी, गणाचार्य, विख्यात, यशस्वी, तीर्थकर और बहुत लोगों से सम्मानित है। इसके बाद भी ये आचार्य अपने लिए अनुत्तर सम्यक्सम्बुद्ध घोषित नहीं करते।[204] सत्तजटिलसुत्त में इनके शिष्यों के सम्बन्ध में कहा गया है कि सात जटिल, सात अचेलक, सात एक साटक, सात परिव्राजक तथा निगण्ठ एक साथ राजा प्रसेनजित् के सामने से निकले। इनको कौरव के रोये बढ़ाने, नाखून बढ़ाये, विविध प्रकार के समान लिए बतलाया गया है तथा इनको गृहस्थ, कामभोगी, बालबच्चों में रहनेवाला, काशी के चन्दन, माला और उबटन का प्रयोग करने वाला एवं धन बटोरने वाला साधु कहा गया है। भगवान् बुद्ध ने इनको अर्हत् मार्ग पर आरूढ़ होने से भी मना किया था।[205] कुतुहलसाला सुत्त में बतलाया गया है कि बुद्ध सहित छः आचार्यो के शिष्य अपने अनुयायियों के मरने पर उनकी गति बतलाते थे।[206]

नानातित्थियसावकसुत्त में भगवान् से नानातैर्थिकों के श्रावकों की चर्चा का उल्लेख है। इसमें विभिन्न आचार्यो के अनुयायी देवपुत्रों द्वारा पूरण–काश्यप, मक्खलिगोशाल तथा निगण्ठनाटपुत्त इन तीन आचार्यो के मतों की जानकादी दी गई है। देवपुत्त द्वारा अन्यतैर्थिकों, आचार्यो के सम्बन्ध में कहा गया है कि ये श्रामण्य पाने वाले गण के नायक सत्पुरुषों से दूर कभी नहीं हो सकते।[207] दूसरा वेगब्भरि–देवपुत्त इन आचार्यो के सम्बन्ध में कहता है कि नंगे, झूठे, गण के गुरु और जिनकी चलन में सन्देह किया जा सकता है वे सज्जनों के समान उसी प्रकार नहीं हैं जिस प्रकार समान आचरण करने वाला सियार कभी सिंह नहीं होता।[208]

दृष्टिसंयुत्त में चार आचार्यो के मतों की समीक्षा दी गई है, इसमें निगण्ठनाटपुत्त एवं सज्जयवेलट्ठिपुत्त के मतों को नहीं गिनाया गया है। विभिन्न प्रसंगों में निगण्ठनाटपुत्त

एवं उनके शिष्यों के वृत्तान्त तो वर्णित हैं लेकिन सञ्जयवेलट्ठिपुत्त नामक आचार्य के मत का उल्लेख संयुत्तनिकाय में नहीं मिलता।

पूरणकाश्यप :–

छः तीर्थकरों में इनका सर्वप्रथम उल्लेख आता है। इनको इन्द्रियवादी कहा जाता है।[209] संयुत्तनिकाय के नानातित्थियसावक सुत्त में इनका उपासक देवपुत्त इनकी विश्वसनीय एवं सम्मानजनक गुरु बतलाता है। इनका सिद्धान्त वर्णित है कि वे किसी को मारते करवाते कोई पाप–पुण्य नहीं मानते।[210] महालिसुत्त में वर्णित है कि वे सत्वों संक्लेश और विशुद्धि के लिए किसी प्रकार के हेतु और प्रत्ययों को नहीं मानते, जिसको गलत बतलाते हुए भगवान् बुद्ध पांच स्कन्धों को सत्वों के संक्लेश और विशुद्धि का हेतु प्रत्यय बतलाते हैं।[211] अभयसुत्त में अभयराज कुमार इनके मत को प्रतिपादित करते हुए कहता है कि ये परमज्ञान के दर्शन और दर्शन के लिए भी कोई हेतु प्रत्यय नहीं मानते, जिसका खण्डन करते हुए भगवान् बुद्ध पांच नीवरणों को परमज्ञान के अदर्शन का एवं सात सम्बोध्यंगों को दर्शन का हेतु प्रत्यय बतलाते हैं।[212]

दीघनिकाय में पूरणकाश्यप का सिद्धान्त निम्न प्रकार से वर्णित है जो संयुत्तनिकाय के करोतो सुत्त में भी दृष्टियों के रूप में गिनाया गया है। इनकी मान्यता थी कि करते–कराते, छेदन करते–कराते, पकाते–पकवाते, शोक करते, परेशान करते, चलते–चलाते, प्राण मारते, बिना दिया लेते, सेंध लगाते, गांव लूटते, चोरी करते, परस्त्री गमन करते, झूठ बोलते पाप नहीं होता है। चक द्वारा इस पृथ्वी के प्राणियों का एक मांस का खलिहान या पुंज बना दे तब भी पाप नहीं, पाप का आगम नहीं। इसी प्रकार घात करते–कराते गंगा के एक तीर से दूसरे तीर में जाय तब भी उसे पाप नहीं, पाप का आगम नहीं। दान देते–दिलाते, यज्ञ करते–कराते यदि गंगा के उत्तर तीर में भी जायें तब भी पुण्य का आगम नहीं है।[213]

राहुल सांस्कृत्यायन का विचार है कि पूरणकाश्यप के पाप–पुण्य के फल का सम्बन्ध परलोक से था। इस लोक में चोरी, हत्या और व्यभिचार का फल राजदण्ड के रूप में अनिवार्य है, इसे पूरणकाश्यप अच्छी तरह जानते होंगे।[214]

अजितकेशकम्बली :–

अजितकेशकम्बली पूर्ण रूप से उच्छेदवादी एवं भौतिकवाद थे। इनकी मान्यता थी कि प्राणी चार महाभूतों से मिलकर बना है। मृत्यु के उपरान्त उन्हीं में मिल जाता है। इन्होंने दान, यज्ञ, होम, अच्छे बुरे कर्मो के फल एवं परलोक का खण्डन करते हुए इनको ढोंग बतलाया है। सम्यक् प्रतिपन्न श्रमण–ब्राह्मण का खण्डन करते हुए कहा है कि आस्तिक का प्रतिपादन करने वाले सभी श्रमण–ब्राह्मणों का उच्छेद होता है। माता–पिता का खण्डन करते हुए कहा है कि औपपातिक सत्त्व गर्भ से उत्पन्न न होकर स्वयं जात है।[215]

इनके सिद्धान्त के सम्बन्ध में महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन जी का विचार है कि इनका यह मत विरोधियों द्वारा प्रतिपादित है क्योंकि माता-पिता और लोक को न मानना झूठ लगता है यदि वे (अजितकेशकम्बली) ऐसा मानते होते तो शिक्षा ही क्यों देते तथा उनको सम्मानित आचार्य क्यों माना जाता। डाकुओं का सरदार क्यों नहीं माना जाता? राहुल जी का विचार है कि अजितकेशकम्बली ने उपनिषद् के तत्वज्ञान का खण्डन किया है, जिसमें सत्तारूढ़ ब्रह्मज्ञानी की कल्पना की गई है।[216]

मक्खलिगोशाल :-

मक्खलिगोशाल को नियतिवादी, अकर्मण्यतावादी एवं देववादी कहा जाता है। इन्होंने नियति को ही सब कुछ मानकर कर्म को व्यर्थ बतलाया है। इनकी आजीवकों का नेता भी कहा जाता है।

संयुत्तनिकाय में इनके सम्बन्ध में सहलि देवपुत्त कहता है कि ये कठिन तपस्या करने वाले, पाप जुगुप्सा में संयत, मौत, कलहत्यागी, शान्त, बुराइयों से विरत तथा पाप न करने वाले हैं।[217]

दीघनिकाय में वर्णित मक्खलिगोशाल का सिद्धान्त संयुत्तनिकाय के महादिट्ठि सुत्त में भी है। दीघनिकाय में इनका सिद्धान्त इस प्रकार है- इनकी मान्यता थी कि-प्राणियों के संक्लेश का कोई हेतु-प्रत्यय नहीं है, प्राणी बिना हेतु के संक्लेश और विशुद्धि को प्राप्त होते हैं। सभी सत्व, प्राणी, भूत, जीव बल और वीर्य के बिना ही नियति के वश में छः अभिजातियों में सुख दुःख का अनुभव करते हैं।[218]

योनि चौदह सौ, हजार साठ सौ, छिआसठ सो, पांच सौ, पांच सौ कर्म, पांच कर्म, तीन कर्म, कर्म और आधा कर्म, बासठ प्रतिपद, बासठ अन्तर्कल्प, छः अभिजातियां, आठ पुरुष भूमिया, उनचास सौ आजीवक, अनचास सौ परिव्राजक, उनचास नागों के आवास, बीस सौ इन्द्रिय, तीन सौ नरक, छत्तीस रजोधातु, सात संज्ञावान् गर्भ, सात असंज्ञी गर्भ, सात निर्ग्रन्थी गर्भ, सात देव, सात मनुष्य, सात पिशाच, सात सरोवर, सात गांठ, सात प्रपात, सात सौ प्रपात, सात स्वप्न, सात सौ स्वप्न हैं। अस्सी हजार से कम महाकल्पों तक दौड़कर अर्थात् आवागमन में पड़कर मूर्ख और पण्डित दुःख का अन्त करते हैं।[219]

प्रकुध कात्यायन :-

प्रकुध कात्यायन को अकृततावादी, अन्योन्यवादी, नित्यपदार्थवादी कहा जाता है। ये भाग्यवाद के प्रबल समर्थक थे, फलतः इन्होंने शुभकर्मो को निष्फल बतलाया है।

दीघनिकाय में इनकी मान्यता वर्णित है कि पृथ्वीकाय, अपकाय, तेजकाय, वायुकाय, सुख, दुःख और जीव ये सात काय अकृत, अनिर्मित, अबध्य, कुटस्थ स्तम्भ जैसे हैं। न विकार को प्राप्त होते हैं न दूसरे को हानि पहुंचाते हैं, न किसी को

सुख–दुःख पहुँचाते हैं यहां न कोई मारने वाला है, न हनन करने वाला, न सुनने वाला, न सुनाने वाला, न जानने वाला न जतलाने वाला। जो तीक्ष्ण शस्त्र से शीश भी काटे तब भी कोई प्राणी नहीं मारता। सात कायों से अलग, खाली जगह में हथियार गिरता है।[220]

संयुत्तनिकाय में इसी सिद्धान्त दृष्टि के अन्तर्गत इसी प्रकार वर्णित किया गया है। साथ ही मक्खलिगोसाल के सिद्धान्त में वर्णित योनियों को भी एक साथ चित्रित किया गया है।[221]

संजयवेलट्ठिपुत्त :–

संजयवेलट्ठिपुत्त को संशयवादी कहा जाता है। संयुत्तनिकाय में अन्य तैर्थिकों के साथ इनका नाम तो मिलता है लेकिन इनके मत का उल्लेख नहीं है। दीघनिकाय में इनका मत वर्णित है कि परलोक के सम्बन्ध में पूछे जाने पर ये कहते थे कि चूंकि वे जानते नहीं है इसलिए कह नहीं सकते कि 1. परलोक है, 2. परलोक नहीं है, 3. परलोक है ओर नहीं है, 4. परलोक है ऐसा नहीं, नहीं है ऐसा नहीं।[222]

निगण्ठनाटपुत्त :–

निगण्ठनाटपुत्त से सम्बन्धित विवरण संयुत्तनिकाय में अन्य पांच आचार्यो की तुलना में अधिक मिलते हैं, क्योंकि निगण्ठनाटपुत्त के अनुयायियों की संख्या अधिक थी और आज भी जैन सम्प्रदाय के रूप में मिलती है। संयुत्तनिकाय में वर्णित निगण्ठनाटपुत्त से सम्बन्धित वृत्तान्त भगवान् महावीर (एवं उनके अनुयायियों) के ही सूचक हैं।[223]

निगण्ठनाटपुत्त की शिक्षा के सन्दर्भ में उनके द्वारा उपदेशित शिक्षा चार पापों से नरक गति वर्णित है। ये चार पाप हैं– प्राणी हिंसा, चोरी काममिथ्याचार और झूठ।[224]

पालि साहित्य में निगण्ठनाटपुत्त को चार पापों से संवृत वर्णित किया गया है, जिसका उल्लेख संयुत्तनिकाय में भी देवपुत्र उपासक निगण्ठनाटपुत्त की प्रशंसा करते समय करता है।[225] दीघनिकाय में चार पाप इस प्रकार वर्णित हैं–

1. जल के व्यवहार का वारण करना।
2. सभी पापों का वारण करना।
3. सभी पापों के वारण से धुतपाप होना।
4. सभी पापों के वारण करने में लगे रहना।[226]

संयुत्तनिकाय में विभिन्न सुत्तों में वर्णित है कि भगवान् बुद्ध एवं निगण्ठनाटपुत्त (भगवान् महावीर) का शिष्यों के माध्यम से बाद–विवाद होता था, जिसमें तार्किक ढंग से एक दूसरे को पराजित करने एवं अपने मत की पुष्टि करने का ध्येय रहता था।

सक्कधम्मसुत्त में भगवान् बुद्ध ग्रामणी से निगण्ठ की शिक्षा के सम्बन्ध में

प्रश्न पूछते हैं। उत्तर स्वरूप ग्रामणी हिंसा करते, चोरी करने, कामभिथ्याचार करने एवं झूठ बोलने वाले को नरकगामी बतलाते हुए कहता है कि जो जो अधिक करता है, वैसे ही उसकी गति होती है। ग्रामणी द्वारा इस प्रकार निगण्ठ की शिक्षा प्रतिपादित करने पर भगवान् बुद्ध उसके आखिरी शब्द को पकड़ लेते हैं कि जो जो अधिक करता है वैसी ही उसकी गति होती है तो कोई भी व्यक्ति पाप कर्म से नरक में नहीं जायेगा, क्योंकि रात–दिन में व्यक्ति के पाप कर्म न करने का ही समय पाप करने के समय से अधिक है। चूंकि निगण्ठों के अनुसार अधिकता के आधार पर नीच गति होती है, इसलिए हिंसा न करने का समय अधिक हुआ और उसके आधार पर वह कम हिंसा के फल से मुक्त हो गया। इस प्रकार व्याख्या को समय की सापेक्षता के आधार पर मोड़कर निगण्ठों की शिक्षा को उल्टा सिद्ध किया गया है।[227]

कुलसुत्त में बतलाया गया है कि एक बार नालन्दा में दुर्भिक्ष पड़ा हुआ था तब निगण्ठनाटपुत्त ने अपने शिष्य असिबन्धकपुत्र ग्रामणी से कहा कि वह जाकर श्रमण गौतम के साथ वाद–विवाद करे। निगण्ठनाटपुत्त ने ग्रामणी को एक लाभ यह बतलाया कि उसका नाम प्रसिद्ध होगा कि उसने इतने बड़े महानुभाव श्रमण गौतम के साथ वाद किया है। दूसरा लाभ दोतरफा प्रश्न पूछने से होगा, जिसे श्रमण गौतम न तो निगल सकेगा न उगल सका। ग्रामणी का प्रश्न इस प्रकार था– क्या आप श्रमण गौतम अनेक प्रकार से कुलों के उदय, रक्षा अनुकम्पा का वर्णन करते हैं, भगवान् के हां कहने पर ग्रमणी कहती है कि यदि आप कुलों की अनुकम्पा का वर्णन करते हैं तो क्यों इस बड़ें सेध के साथ दुर्भिक्ष में चारिका कर रहे हैं, जब लोगों के प्राण निकल रहे हैं तब कुलों के नाश और अहित के लिए क्यों तुले हुए हैं, जिसके उत्तर में भगवान् कुलों के नाश के आठ कारण बतलाते हैं। वे इक्यानवे कल्प की बात स्पष्ट करते हैं कि उनको ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलता कि कोई भिक्षा देने से नष्ट हुआ हो।[228]

खेत्तूपम्म सुत्त में वही असिबन्धकपुत्त ग्रामणी भगवान् के पास आकर पूछता है– क्या आप सभी प्राणियों के प्रति शुभच्छा और दया से विहार करते हैं? भगवान् के हां कहने पर पुनः पूछता है कि– वे फिर किसी को बहुत अधिक अधिक प्रेम से किसी को कम प्रेम से उपदेश क्यों देते हैं? जिसके उत्तर में भगवान् अपनी बात खेत की उपमा से समझता हैं।[229]

असिबन्धक सुत्त में ग्रामणी कहता है कि पश्चिम वाले ब्राह्मण मरे लोगों को बुलाकर स्वर्ग भेज देते हैं। भगवान् गौतम सम्यक्सम्बुद्ध हैं ऐसा क्यों नहीं कहते कि समस्त प्राणी मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हों? उत्तर में भगवान् उपमा से समझाते हैं कि जिस प्रकार किसी पत्थर को जलाशय में छोड़ दें और फिर बुलायें कि ऊपर आजा, लेकिन वह पत्थर ऊपर नहीं आ सकता, उसी प्रकार बुरे कर्मो का बुरा फल

अवश्य मिलेगा। किसी की गति बदली नहीं जा सकती।[230]

निगण्ठनाटपुत्त सुत्त में वर्णित है कि भगवान् बुद्ध का उपासक चित्र गृहपति निगण्ठनाट पुत्त के पास जाता है। निगण्ठनाटपुत्त गृहपति से भगवान् बुद्ध की अवितर्क अविचार पूर्ण समाधि के सम्बन्ध में पूछता है? चित्र गृहपति कहता है कि वह श्रद्धा से ऐसा नहीं मानता कि गौतम बुद्ध को समाधि लगी है। चित्र गृहपति के इस कथन पर निगण्ठनाटपुत्त चित्र गृहपति की प्रशंसा करते हैं लेकिन तुरन्त ही चित्र गृहपति की श्रद्धा से ज्ञान को बड़ा प्रतिपादित करते हुए कहता है कि वह जब भी (ज्ञान के आधार पर) चाहता है तो स्वयं भी अवितर्क अविचार पूर्ण समाधि को प्राप्त होकर विहार करता है। निगण्ठनाटपुत्त चित्र गृहपति के इस कथन पर उसे झूठा, कपटी, शठ आदि कहते हैं। चित्र गृहपति भी निगण्ठ पर आरोप लगाता है कि पहले उन्होंने उनकी प्रशंसा और अब निन्दा कर दो प्रकार झूठ और सच की बात कर रहे हैं।[231]

भौगोलिक विवरण

पालि—त्रिपिटक बौद्धकालीन भारत की विभिन्न परिस्थितियों को जानने का एक विश्वसनीय साधन माना जाता है। भौगोलिक दृष्टि से भी इसका प्रभूत महत्व है।

भौगोलिक दृष्टि से सुत्तपिटक के चार निकाय एवं विनयपिटक के प्राचीनतम अंश महत्वपूर्ण एवं प्रामाणिक माने जाते हैं। आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं से भौगोलिक सामग्री का परिचय प्राप्त करने में सहायता मिलती है। आधुनिक समय में भी बौद्धकालीन भारतीय भूगोल से सम्बन्धित अनेक शोधपरक ग्रन्थ लिखे गये हैं।[232]

संयुत्तनिकाय में बौद्ध युग से भी प्राचीन कुशावती एवं अरुणवती नामक नगरों का उल्लेख मिलता है। बौद्धकालीन जनपदों में अंग, मगध, अवन्ती, वत्स, कुरु, काशी, कोलिय, लिच्छवि, मल्ल, शाक्य तथा सूनापरान्त जनपद का उल्लेख है। श्रावस्ती, राजगृह, वैशाली, कोशाम्बी, वाराणसी, साकेत और कपिलवस्तु आदि प्रमुख नगरों में भगवान् को विचरण करते हुए बतलाया गया है।

थपतिसुत्त में भगवान् की चारिका का विवरण है कि— भगवान् श्रावस्ती से कोशल, कोशल से मल्लों के प्रदेश, मल्लों के प्रदेश से वज्जियों के प्रदेश, वज्जियों के प्रदेश से काशी, काशी से मगध जाते थे। पुनः मगध से काशी, वज्जियों के प्रदेश, मल्लों के प्रदेश, कोशल, श्रावस्ती, अनाथपिण्डिक के जेतवन में वापिस आते थे।[233]

संयुत्तनिकाय में प्राप्त भौगोलिक नामों का परिचय इस प्रकार है—

मगध :—

मगध जनपद वर्तमान गया और पटना जिलों के अन्तर्गत फैला हुआ था। इसकी राजधानी राजगृह थी। सेनानी निगम मगध का रमणीय प्रदेश था। एकनाला, नालक ग्राम, खाणुमत और अन्धकविन्द इस जनपद के प्रसिद्ध नगर थे। राजगृह के

पास ही नालन्दा एक छोटा सा ग्राम था।[234] मगधराज अजातशत्रु के समय मगध की राजधानी पाटलिपुत्र भी थी।[235]

संयुत्तनिकाय में मगध के अन्तर्गत मगध पंचशालग्राम,[236] मगधअन्धक–विन्दनामक ग्राम, [237] मगध दक्षिण गिरि पर एकनाला ब्राह्मण ग्राम, [238] मगध मणिमालक चैत्य, [239] मगध नालक ग्राम[240] एवं सुमागधा पुष्करिणी[241] का उल्लेख है। पाटलिपुत्र में कुक्कुटाराम[242] का तथा नालन्दा पावारिक आम्रवन[243] का उल्लेख है। राजगृह का विस्तृत विवरण मिलता है।

संयुत्तनिकाय में श्रावस्ती के बाद सर्वाधिक उपदेश राजगृह में वर्णित मिलते हैं। राजगृह की प्राचीनता एवं महत्व का प्रतिपादन महाभारत एवं बाल्मीकीरामायण में भी मिलता है। राजगृह को पहले गिरिब्रज एवं वसुमति भी कहते थे।[244]

राजगृह के अन्तर्गत गृद्धकूट पर्वत[245], वेपुल्य पर्वत[246], वेलुवन–कलन्दक निवाप[247], तपोदाराम[248], मद्दकुच्छि–मृगदाप[249], पिप्पलि गुहा[250], काश्यपकाराम[251], जीवकआम्रवन[252], इन्द्रकूट पर्वत[253], गृद्धकूटपर्वत में प्रतिमानकूट[254], एवं सूकरखाता[255], शीतवन में सप्पसोण्डिक पब्मार[256], राजगृह में ऋषिगिरि के पास कालशिला[257], तथा बहुत पहले की सुभागधा पुष्करिणी[258] का उल्लेख है।

वैपुल्यपर्वतसुत्त में वैपुल्यपर्वत की प्राचीनता का इतिहास बतलाया गया है। भगवान् ककुसन्धु के समय वैपुल्य पर्वत का नाम प्राचीन वंश था, मनुष्यों को तिवरा कहा जाता था, मनुष्यों की आयु चालीस हजार वर्ष थी, पर्वत में चढ़ने–उतरने का समय चार–चार दिन था। भगवान् कोणागमन के समय पर्वत का नाम वङ्कक हो गया, मनुष्यों को रोहित कहा जाने लगा, उनकी आयु तीस हजार वर्ष हो गयी, पर्वत पर चढ़ने–उतरने का सतय तीन–तीन दिन हो गया। भगवान् काश्यप के समय पर्वत का नाम सुपस्स हो गया, मनुष्यों को सुप्पिय कहा जाने लगा, उनकी आयु बीस हजार वर्ष हो गई, पर्वत पर चढ़ने–उतरने का समय दो–दो दिन हो गया। भगवान् गौतम बुद्ध के समय पर्वत का नाम वैपुल्य पर्वत बतलाया है, मनुष्यों को मागध कहा जाता था, उनकी आयु अधिक से अधिक सौ वर्ष हो गई, पर्वत पर चढ़ने–उतरने का समय अल्पकाल हो गया।[259] राजगृह के पहाड़ों में वैपुल्य पर्वत को श्रेष्ठ कहा जाता था।[260]

गया :–

गया के पास बोध गया में भगवान् बुद्ध ने बोधि प्राप्ति की थी। गया के टंकितमंच में सुचिलोम यक्ष का भवन[261] बतलाया गया है। गया के समीप गयासीस पर्वत[262], मगध में पंचशाल नामक ब्राह्मणग्राम[263], सेनानी ग्राम[264], तथा गंगा नदी के किनारे किम्बिला[265] का उल्लेख है। नेरंजना नदी के तीर पर उरुवेला[266] का एवं उरुवेला में अजपाल निग्रोध[267] का विभिन्न सुत्तों में उल्लेख है। यहां पर भगवान् ने बुद्धत्व प्राप्ति के पश्चात् विभिन्न धर्मो का मनन किया था।

वैशाली :—

वज्जी जनपद की राजधानी वैशाली थी। वैशाली इस समय बिहार प्रान्त के मुजफ्फरपुर जिले के बसाढ़ गावं में मानी जाती है। वज्जी जनपद में लिच्छवियों का गणतंत्र शासन था। इस नगर की जनसंख्या की वृद्धि से नगर प्राकार को तीन बार विशाल करने के कारण वैशाली नाम पड़ा।[268]

वज्जी जनपद के अन्तर्गत गंगा नदी के किनारे उक्काचल नामक ग्राम, [269] कोटिग्राम[270], जातिका गिंजकावसथ[271], हस्तिग्राम[272], तथा पुब्बविज्झत नामक वज्जि ग्राम[273], का उल्लेख है। वैशाली के अन्तर्गत महावन कूटागार शाला, [274] वैशाली आम्रपालि वन[275] एवं वैशाली वेलूग्राम[276] का उल्लेख मिलता है। वैशाली के चापाल चैत्य में बैठे हुए भगवान् ने वैशाली के विभिन्न चैत्यों का उल्लेख किया है। यथा– चापाल चैत्य, गौतमक चैत्यों का उल्लेख, सप्ताम्रचैतय, बहुपुत्रक चैत्य एवं सारंदद चैत्य। भगवान् ने इन चैत्यों को रमणीक बतलाया तथा वहीं पर तीन माह पश्चात् अपने परिनिर्वाण की घोषणा की थी।[277]

कौशल :—

कौशल की दो राजधानियों का उल्लेख मिलता है– श्रावस्ती और साकेत नगर। अयोध्या एक कस्बा था। प्राचीन कौशल राज्य दो भागों में विभक्त था, उत्तरी भाग को उत्तर कौशल तथा दक्षिणी भाग को दक्षिणी कौशल कहा जाता था। दोनों भागों के मध्य सरयू नदी स्थित थी।[278]

संयुत्तनिकाय में कौशल के अन्तर्गत रंगशाल नामक कौशल ग्राम[279], शाला ब्राह्मण ग्राम[280], वेलुद्धार ब्राह्मण ग्राम[281], कौशल जनपद की कुटिया[282], कौशल की सुन्दरिका नदी[283], हिमवन के पास कौशल जनपद[284] तथा कामण्डा ब्राह्मण[285] ग्राम का उल्लेख है। साकेत के अन्तर्गत साकेत अंजनवन मृगदाय [286] एवं साकेत कंडकीवन[287] का उल्लेख है।

संयुत्तनिकाय में अयोध्या का उल्लेख गंगा नदी के किनारे किया गया है।[288] अयोध्या को गंगा नदी के किनारे बतलाया विद्वानों के सामने समस्या है।[289] क्योंकि वर्तमान अयोध्या सरयू नदी के किनारे है। चीनी यात्री यू आन चुआङ् ने भी गंगा नदी को पारकर अ–युते (अयोध्या) में प्रवेश करने की बात कही है।[290]

श्रावस्ती का उल्लेख संयुत्तनिकाय में सर्वाधिक मिलता है। भगवान् ने अपने सर्वाधिक (25) वर्षावास भी श्रावस्ती में किए थे।[291] अट्ठकथा के अनुसार 'सब कुछ होने के कारण श्रावस्ती ऐसा नाम पड़ा था।[292]

संयुत्तनिकाय में श्रावस्ती के अनाथपिण्डक जेतवन[293], मृगारमाता पूर्वाराम प्रसाद[294], राजिकाराम[295], अंधकवन[296], पुब्बकोट्ठक[297], एवं सलिलागार[298] का उल्लेख मिलता है। अनाथपिण्डिक के जेतवन महाविहार में संयुत्तनिकाय के सगाथवर्ग के

सर्वाधिक उपदेश दिए गए थे।

काशी :–

काशी जनपद की राजधानी वाराणसी थी। भगवान् बुद्ध से पूर्व काशी राजनीतिक क्षेत्र में शक्तिशाली जनपद था। किन्तु बौद्ध काल में उसकी शक्ति क्षीण हो गई थी। इसका कुछ भाग कौशल नरेश तथा कुछ भाग मगध नरेश के अधीन था।[299] संयुत्तनिकाय में काशी के कारण दो युद्धों का वर्णन है।[300]

काशी के अन्तर्गत मृगपत्थक[301] नामक गांव का उल्लेख मिलता है, जो मच्छिकासण्ड में अम्बाटक वन के पीछे था।[302] वाराणसी के समीय इसिपतन मृगदाय (सारनाथ) में भगवान् बुद्ध ने धर्मचक प्रवर्तन किया था तथा और भी कई सुत्तों का उपदेश दिया था।[303] वर्तमान में सारनाथ के नाम से प्रसिद्ध इसिपतन मृगदाय बौद्धों का महातीर्थ माना जाता है। काशी का चन्दन और वस्त्र प्रसिद्ध थे। संयुत्तनिकाय में काशी के चन्दन की चर्चा आई है।[304]

अंग :–

अंग जनपद की राजधानी चम्पा नगरी थी। आपण अंग का प्रसिद्ध व्यापारिक नगर था।[305] संयुत्तनिकाय में चम्पा के अन्तर्गत गग्गरा पुष्करणी के तट पर भगवान् बुद्ध को भिक्षुसंघ के साथ विहरते बतलाया गया है।[306] चम्पा की रानी गग्गरा ने गग्गरा–पुष्करिणी खुदवाई थी।[307] अंग देश के अन्तर्गत अर्पणनिगम का भी उल्लेख है।[308]

वत्स :–

वत्स जनपद भारत के सोलह बड़े जनपदों में से एक था। वत्स की राजधानी कौशाम्बी थी। इस समय इसके नष्टावशेष इलाहाबाद से 30 मील पश्चिम कोसम नामक ग्राम में स्थित हैं। सुंसमारगिरि का भर्ग (भग्ग) राज्य वत्स जनपद के अन्तर्गत आता था।[309] कोशाम्बी बौद्धकालीन बड़ी नगरी थी। बौद्धकाल में राजा उदयन यहां राज्य करता था। संयुत्तनिकाय में कौशाम्बी के अन्तर्गत घोषिताराम विहार[310] और शीशपावन[311] का वर्णन है तथा भर्ग देश के अन्तर्गत सुंसमार गिरि भेषकलावन[312] का भी उल्लेख है।

मल्ल :–

मल्ल गणतंत्र जनपद था। कुशीनारा और पावा इसकी दो राजधानियां थीं। कुशीनगर का प्राचीन नाम कुशावती था। अनूपिया, भूणग्राम, उखेलकप्प, बलिहरण वनखण्ड, भोगनगर और आम्रग्राम इसके प्रसिद्ध नगर थे।[313]

संयुत्तनिकाय में प्राचीन कुशावती के वैभव का वर्णन है।[314] कुशीनारा शालवन उपवत्तन में भगवान् ने परिनिर्वाण प्राप्त किया था।[315] इसमें उरुवेला मल्लनिगम का भी उल्लेख है।[316]

कपिलवस्तु :–

कपिलवस्तु शाक्य जनपद की राजधानी थी। सिद्धार्थ गौतम का जन्म कपिलवस्तु के शाक्य राजवंश में ही हुआ था। शाक्य जनपद ने चातुमा, सामगाम, उलुम्प, सक्कर शीलवती और खोमदुस्स प्रसिद्ध नगर थे। इसे कौशल नरेश ग्दिूडभ ने आक्रमण करके नष्ट कर दिया था। वर्तमान समय में इसके नष्टावशेष नेपाल की तराई में बस्ती जिले के शुहरतगढ़ स्टेशन से 12 मील उत्तर तौलिहवा बाजार के पास तिलौराकोट नाम से विद्यमान हैं।[317]

संयुत्तनिकाय में शावय देश के अन्तर्गत देवदह शाक्यनगर[318], शाक्य निगम[319], शीलावती प्रदेश[320], एवं खोमदुस्स नामक कस्बा[321] का उल्लेख है। साथ ही शाक्य जनपद, कपिलवस्तु उसके निग्रोधाराम[322] एवं महावन का भी उल्लेख है। कपिलवस्तु में शाक्यों के नए संस्थागार बनने पर शाक्यों ने भगवान् को सर्वप्रथम उपभोग करने के लिए आमंत्रित किया था।[324] आजकल भी नए भवनों का उद्‌घाटन किसी महान् पुरुष द्वारा करवाया जाता है।

विभिन्न नगर एवं नदियां :–

उपर्युक्त के अतिरिक्त कुरु जनपद के अन्तर्गत कम्मासदम्म नामक कुरु कस्बे का उल्लेख मिलता है।[325] सुम्मजनपद के अन्तर्गत सेदक नामक सुम्मों का कस्बा[326] अवन्ति के अन्तर्गत कुलघर का प्रपात पर्वत[327] एवं मककरकथ नामक अरण्य कुटी[328], कोलिय जनपद के हलिद्‌दवसन[329] एवं उत्तर नामक कस्बा [330], आलवी (पंचालदेश) के अग्गालय चैत्य [331] किमिला गंगा नदी के किनारे वेलुवन [332] और मज्झिकासण्ड के अम्बाटक वन[333] तथा पावा[334] का उल्लेख मिलता है।

सूनापरान्त जनपद के लोगों को चण्ड एवं कठोर बतलाया गया है। वहां जाने के पहले भगवान् बुद्ध ने एक भिक्षु को सतर्क किया था।[335]

संयुत्तनिकाय के विभिन्न प्रसंगों में पांच बड़ी नदियों का उल्लेख है– गंगा, यमुना, अचिरवती, सरयू एवं मही। इनको पूरब की ओर बहता बतलाया गया है।[336]

जम्बूद्वीप :–

त्रिपिटक और अट्ठकथाओं में भारतवर्ष को जम्बूद्वीप शब्द से उल्लिखित किया गया है।[337] संयुत्तनिकाय में भी जम्बूद्वीप का उल्लेख है।[338] वैदिक सूत्रग्रन्थों का आर्यावर्त और मनुस्मृति का मध्यदेश जम्बूद्वीप के अन्तर्गत है। पुराणों के अनुसार नौ वर्ष, खण्ड या द्वीप हैं– इन्द्र द्वीप, कशेर द्वीप, ताम्रपर्ण, गर्भस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य द्वीप, गन्धर्व, वरुण तथा सागर–संवृत्त।[339] अन्तिम सागर संवृत्त को कुमारी द्वीप व भारत वर्ष भी कहा जाता है। जम्बूद्वीप बृहत्तर भारत के लिए प्रयुक्त हुआ है।[340]

द्वितीय शताब्दी ई. पू. भारत वर्ष चीनियों को युआन–तु या यिनतु अर्थात् हिन्दु या शिन्तु (सिन्धु) के नाम से विदित था। बाद में इसका उच्चारण 'थियन तु' होने

लगा।[341] चीनी शब्द 'यिन–तु या युआन–तु' संस्कृत शब्द इन्दु देश का रुपान्तर माना जाता है।[342]

यूआन् चुआङ् का कहना है कि–बुद्ध रूपी सूर्य के अस्त हो जाने के बाद इस देश के महात्मा ही अन्य देशों के लिए इन्दु (चन्द्रमा) का काम करते हैं। इसलिए चीनी भारत वर्ष को इन्दु देश कहते हैं।[343] युआन् चूआङ् ने भारतवर्ष के लिए चम्पु (जम्बुद्वीप) और चिन–तु का प्रयोग क्रमशः भारतीय उपमहाद्वीप और सिन्धु नदी से परे देश के अर्थ में किया है।[344]

जैन ग्रन्थों में जम्बूद्वीप को एक महाद्वीप माना गया है। जम्बूद्वीप को सुमेरु पर्वत के दक्षिण में स्थित माना है।[345] यहां पर जम्बूद्वीप से तात्पर्य पूरे एशिया से है। बौद्ध संस्कृत–साहित्य में जम्बूद्वीप या भारतवर्ष का एक नाम इन्द्र वर्धन भी है। तिब्बती परम्परा में भी जम्बूद्वी का प्रयोग भारतवर्ष के लिए किया गया है।[346]

संयुत्तनिकाय में जम्बूद्वीप के नामकरण का कारण यहां पर जम्बू (जामुन) वृक्षों की अधिकता एवं श्रेष्ठता बतलाई गयी है।[347] वही बात अंगुत्तर निकाय एवं थेरगाथा में भी कही गई है।[348]

संदर्भ–विवरण

1. सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय तथागतो अरियो।
संयुत्त. 5, पृ. 373
2. वही, 1, पृ. 137
3. वही, पृ. 143
4. वही, पृ. 147
5. वही, पृ. 153
6. वही, पृ. 137
7. संयुत्त. 5, पृ. 139
8. वही, पृ. 151
9. वही, पृ. 150–153
10. वही, 1, पृ. 154
11. वही
12. वही, पृ. 157
13. वही, पृ. 141
14. संयुत्त. 1, पृ. 143
15. वही, पृ. 147–148
16. वही, पृ. 26
17. वही, पृ. 25
18. वही, पृ. 33
19. वही, पृ. 7

20. वही, पृ. 23

21. वही, पृ. 3–42

22. संयुत्त. 1, पृ. 7–8

23. वही, पृ. 20

24. वही, पृ. 43–66

25. ''अनघो वे अहं यक्ख, अथों नन्दी न विज्जति। संयुत्त. 1, पृ. 52

26. वही, पृ. 218

27. ''सत्तधा में फले मुद्धा, जीवन्तो न सुखं लभे।
बुद्धगाथाभिगीतोम्हि, नो चे मुञ्चेय्य सुरियं''ति। वही, 1, पृ. 49

28. ''यो अन्धकारे तमसि पभंकरो,
बेरीचनो मण्डली उग्गतेजो।
मा राहु गिली चरमन्तलिक्खे,
पजं ममं राहु पमुंच सुरियं''ति।।

29. वही, पृ. 47–40

30. संयुत्त. 1, पृ. 230–231

31. वही, पृ. 230

32. कुलावका मातलि सिम्बलिस्मिं,
ईसामुखेन परिवज्जयस्सु।
कामं चजाम असुरेसु पाणं,
मायिमे दिजा विकुलावका अहेसु'ति।। संयुत्त. 1, पृ. 226

33. जातकमाला, पृ. 87

34. संयुत्त. 1, पृ. 224

35. वही, पृ. 222, 224, 226

36. वही, पृ. 220–221

37. वही, पृ. 158

38. डि. आफ पा. प्रा. नेम्स, भाग 1, पृ. 213

39. संयुत्त 1, पृ. 209, 215

40. वही, पृ. 207 से 217

41. वही, पृ. 212–13

42. वही, पृ. 210

43. ''सब्बगन्थप्पहीनस्स, विप्पमुत्तस्स ते सतो।
समणस्स न तं साधु, यदञ्ञमनुसाससी''ति।। संयुत्त. 1, पृ. 207

44. ''उपोसथं उपवसन्ति, ब्रह्मचरियं चरन्ति ये।
न तेहि यक्खा कीलन्ति, इति मे अरहतं सुतं। वही, पृ. 210

45. वही, पृ. 210–211

46. ''पियो लोके सको पुत्तो, पियो लोके सको पति।
ततो पियतरा मय्हं, अस्स धम्मस्स मग्गना।। वही, पृ. 211

47. अभिक्कम गहपति, अभिक्कम गहपति।
अभिक्कमनं ते सेय्यो, नो पटिक्कमनं''ति। वही, पृ. 212

48. ''किं मे कता राजगहे मनुस्सा, मधुपीता व सेयरे।

ये सुक्कं न पयिरूपासन्ति देसेन्ति अमतं पदं।।
"तं च पन अप्पटिवानीयं, असेचनकमोजवं।
पिवन्ति मञ्ञेसप्पञ्ञा, वलाहकमिव पन्थगू"ति।। संयुत्त. 1, पृ. 214

49. वही, पृ. 215

50. वही, 3 पृ. 456–460

51. संयुत्त. 3, पृ. 461–463

52. वही, वृ. 468

53. वही

54. वही, पृ. 469–70

55. अन्तका वसवत्ती च पापिमा च पजापति।
पमत्तबन्धु कण्हो च मारो नमुचि तस्स तु।। अभिधानप्प दीपिका (द्वारकादास शास्त्रि), पृ. 8

56. मार एज डेपिक्टेड इन अर्ली इण्डियन लिटरेचर आ. इ. ओ. का 26 वां सत्र, रिपोर्ट, पृ.

57. अत्तनो विसयं अतिक्कमितुं पटिपत्रे सत्ते मारे ति मारो। सारत्थपकासिनी, भाग–1, पृ. 169

58. वही

59. संयुत्त. 1, पृ.

60. वही, पृ. 114

61. वही, पृ. 128

62. डि. आफ पा. प्रा. ने. भाग 1, पृ. 611

63. "तावतिंसा च यामा च, तुसिता चा पि देवता।
निम्मानरतिनो देवा, ये देवा वसवत्तिनो।
कामबन्धनबद्धा ते, एन्ति मारवसं पुन।। संयुत्त. 1, पृ. 133

64. सारत्थपकासिनी, भाग 1, पृ. 128

65. डि. आफ. पा. प्रा. ने. भाग 2 पृ. 611, सारत्थपकासिनी भाग 1 पृ. 128

66. सद्दनिदस्सिका, पृ. 8

67. बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ. 48

68. डि. आ् पा. प्रा. ने. भाग 2, पृ. 611

69. कामा ते पठमा सेना, दुतिया अरति वुच्चतिं।
ततिया खुप्पिपासा ते, चतुत्थी तण्हा पवुच्चति।।
पंचमं थीनमिद्धं ते, छट्ठा भीरू पवुच्चति।
सत्तमी विचकिच्छा ते, मक्खो धम्मो ते अट्ठमो।।
लाभो सिलोको सक्कारो, मिच्छालद्धो च यो यसो।
यो अत्तानं समुक्कसे, परे च अवजानति।। खुद्दक. 1, पृ. 331–332

70. संयुत्त. 1, पृ. 123

71. वही, पृ. 128–136

72. वही, पृ. 112

73. वही, पृ. 103

74. वही, पृ. 106

75. वही, पृ. 114

76. वही, पृ. 113

77. वही, पृ. 116
78. वही, पृ. 113
79. संयुत्त. 1, पृ. 115
80. वही, पृ. 108
81. वही, पृ. 108
82. वही, पृ. 129
83. वही, पृ. 128
84. वही, पृ. 129
85. वही, पृ. 103
86. वही, पृ. 128
87. संयुत्त. 1, पृ. 104
88. वही, पृ. 111
89. वही, पृ. 133–134
90. वही 4, पृ. 34
91. वही, पृ. 84
92. वही, पृ. 144
93. वही,
94. वही 3, पृ. 407
95. वही 1, पृ. 104
96. वही 5, पृ. 90
97. बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ. 48
98. वही, पृ. 49
99. मार विवेचन शोध–पत्र, आ. इ.ओ. का. 26 वां सत्र रिपोर्ट, पृ. 223
100. द्रष्टव्य– ओरिजन्स आफ बुद्धिज्म, पृ. 381
     मार परिचय के लिए द्रष्टव्य–
     डिक्शनरी आफ पालि प्रापर नेम्स, भाग 2 पृ. 611
     इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, 'बुद्ध' निबन्ध।
101. संयुत्त. 1, पृ. 152
102. द्रष्टव्य– हेवन एण्ड हेल इन बुद्धिस्ट पर्सपेक्टिव, पृ. 93–126
103. संयुत्त. 1, पृ. 67–112
104. वही, पृ. 78
105. वही, पृ. 73
106. वही, पृ. 67
107. वही, पृ. 75
108. वही, पृ. 82–83
109. संयुत्त. 1, पृ. 81
110. वही, पृ. 73
111. वही, पृ. 67–102
112. वही, पृ. 85
113. वही, पृ. 96

114. वही, पृ. 82

115. संयुत्त. 2, पृ. 222

116. वही, 1, पृ. 82–83

117. बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ. 2–3

118. संयुत्त. 1, पृ. 82

119. वही, पृ. 83–84

120. वही, 2, पृ. 201

121. वही, 2, पृ. 223

122. दीघ. 2, पृ. 58

123. संयुत्त. 2, पृ. 223

124. वही, 4, पृ. 102

125. वही, 5, पृ. 110

126. बुद्धकालीन समाज और धर्म, पृ. 11–12

127. "बहुं पि पलयं जप्पं, न जच्चा होति ब्राह्मणो।
अन्तोकसम्बु संकिलिट्ठो, कुहनं उपनिस्सितो।।
खत्तियो ब्राह्मणो वेस्सो, सुद्दो चण्डालपुक्कुसो।
आरद्धविरियो पहितत्तो, निच्चं दव्हपरक्कमो।
पप्पोति परमं सुद्धिं, एवं जानाहि ब्राह्मणा" ति।।

128. संयुत्त. 1, पृ. 92–96

129. खत्तियो द्विपदं सेट्ठो। संयुत्त. 1, पृ. 8

130. सम्बुद्धो द्विपदं सेट्ठो। वही

131. खत्तियो सेट्ठो जनेतस्मिं, ये गोत्तपटिसारिनो।
विज्जाचरणसम्पन्नो, सो सेट्ठो देवमानुसे" ति। वही, पृ. 153

132. ठानं हि सो मनुजिन्दो, रज्जं लद्धान खत्तियो।
सो कुद्धो राजदण्डेन, तस्मिं, उक्कमते भुसं।
तस्मा तं परिवज्जेय्य, रक्खं जीवितमत्तनो।। संयुत्त. 1, पृ. 68

133. वही, पृ. 8

134. समणीव जातिहीनं, अभिवादेन्ति खत्तिया" ति। वही, पृ. 42

135. "सीलुत्तमा पुब्बतरा अहेसुं, ते ब्राह्मणा ये पुराणं सरन्ति।
गुत्तनि द्वारानि मुरक्खितानि, अहेसुं तेसं अभिभुय्यं कोधं।।
धम्मे च झाने च रता अहेसुं, ते ब्राह्मणा ये पुराणं सरन्ति।
इमे च बोक्कम्म जपामसेति, गोत्तेन मत्ता विसमं चरन्ति।।
कोधाभिूता पुथुअत्तदण्डा, विरज्जमाना सतण्हातण्हेसु।
अगुत्तद्वारस्स भवतिन्त मोघा, सुपिनेव लद्धं पुरिसस्स वित्तं।
अनासका थण्डिलसायिका च, पातो सिमानं च तयो च वेदा।
खराजिनं जटापंको, मन्ता सीलब्बतं तपो।
कुहना वंकदण्डा च, उदकाचमनानि च।।
"वण्णं एते ब्राह्मणानं, कता किंचिक्खभावना। संयुत्त. 4, पृ. 108–9

136. वही, 1, पृ. 276

137. वही, पृ. 161

138. वही, पृ. 165
139. वही, पृ. 164
140. संयुत्त. 1, पृ. 14
141. वही, पृ. 177
142. वही, पृ. 178
143. वही, पृ. 179
144. वही, पृ. 181
145. वही, पृ. 182
146. वही, पृ. 166
147. ''मा जाति पुच्छ चरणं च पुच्छ, कट्ठा हवे जायति जातवेदो।
नीचाकुलीनो पि मुनि धितिमा, आजानीयो होति हिरीनिसेधो।।
सच्चेन दन्तो दमसा उपेतो, वेदन्तगू बुसितब्रह्मचरियो।
यञ्ञोपनीतो तमुपव्हयेथ, कालेन सो जुहति दक्खिणेय्ये''ति।। वही, 1, पृ. 167
148. ''नत्थि किच्चं ब्राह्मणस्स, कतकिच्चो हि ब्राह्मणो। संयुत्त. 1, पृ. 44
149. वही, पृ. 109
150. वही, पृ. 42
151. वही, 5, पृ. 22, 23,
152. वही, 2, पृ. 111 भाग 3, पृ. 404–405 भाग 4, पृ. 207 भाग 5, पृ. 168
153. संयुत्त. 5, पृ. 398
154. वही, पृ. 22, 23
155. वही, 1, पृ. 3
156. ''गाथाभिगीतं मे अभोजनेय्यं, सम्पस्सतं ब्राह्मण नेस धम्मो।
गाथाभिगीतं पनुदन्ति बुद्धा, धम्मे सति ब्राह्मण वुत्तिरेसा।।
अञ्ञेन च केवलिनं महेसिं, खीणासवं कुक्कुच्चवूपसन्तं।
अन्नेन पानेन अपट्ठहस्सु, खेत्तं हि तं पुञ्ञपेक्खस्स होती''ति।। वही, पृ. 166
157. बुद्धकालीन समाज और धर्म, पृ. 22
158. बुद्धचर्या, पृ. 66
159. संयुत्त. 1, पृ. 213
160. संयुत्त. 1, पृ. 88–92
161. वही,4, पृ. 252–270
162. वही, पृ. 257
163. वही, पृ. 270
164. वही, 1, पृ. 93
165. बुद्धकालीन समाज और धर्म, पृ. 24
166. संयुत्त. 1, पृ. 171, 175, 179
167. संयुत्त. 4, पृ. 271–276
168. वही, पृ. 277–311
169. वही, पृ. 288
170. वूमेन इन द वैदिक एज, पृ. 2
171. हिन्दू–परिवार–मीमांसा, पृ. 133

172. "ऋएा हि वे जायते यो स्ति। स जायमान एव देवेभ्यः
ऋषिभ्यः पितृभ्यो मनुष्येभ्यः। शत. ब्रा. (1/7/2/1)
173. बौधायन धर्मसूत्र, 4.1.13
पराशर स्मृति 7/5
174. बौधायन धर्मसूत्र 2–9, 6
वशिष्ठ धर्मसूत्र 17,5
विष्णुस्मृति 15/44, 46
175. महाभारत 13/24/9
रामायण 7/9/10
176. बौद्ध और जैन आगमों में नारी जीवन, पृ. 86
177. धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग पृ. 330, 331
178. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, पृ. 161
179. बौद्ध और जैन आगमों में नारी जीवन,
वूमेन अण्डर प्रिमिटिव बुद्धिज्म,
180. "इत्थीपि हि एकच्चिया, सेय्या पोस जनाधिप।
मेधाविनी सीलवती, सस्सुदेवा पतिब्बता।।
तस्सा यो जायति पोसो, सूरो होति दिसम्पति।
तादिसा सुभगिया पुत्तो, रज्जं पि अनुसासती"ति।। संयुत्त. 1, पृ. 85
181. भरिया च परमो सखा। वही, पृ. 35
182. भातरं कुटिकं ब्रूसि, भरियं ब्रूसि कुलावकं। वही, पृ. 9
183. भत्ता पञ्ञाणमित्थिया"ति।। वही, पृ. 39
184. वही, पृ 8
185. "धम्मं चरे यो पि समुञ्जकं चरे, दारं च पोसं ददमप्पकस्मिं।
सतं सहस्सानं सहस्सयागिनं, कलं पि नाग्घन्ति तथाविधस्स ते"ति।। संयुत्त. 1, पृ. 19
186. ये गहट्ठा पुञ्ञकरा, सीलवन्तो उपासका।
धम्मेन दारं पोसेन्ति, ते नमस्सामि मातली"ति।। वही, पृ. 236
187. संयुत्त. 4, पृ. 212
188. वही, पृ. 212
189. वही, पृ. 220
190. संयुत्त. 4, पृ. 212
191. वही, पृ. 221
192. वही, पृ. 212–222
193. वही, 4, पृ. 216–18
194. वही, 2, पृ. 19
195. वही, 3, पृ. 303–304
196. इत्थी मलं ब्रह्मचरियस्स, एत्थायं सज्जतेपजा। वही, 1, पृ. 36
197. संयुत्त. 1, पृ. 169–171
198. वही, 4, पृ. 287
199. द्रष्टव्य– बौद्ध–दर्शन–मीमांसा, पृ. 19–23
200. सूत्रकृतांग, सूत्र प्रथम श्रुतस्कन्ध, पृ. 400

201. दीघ. 1, पृ. 12–40, एवं संयुत्त. 4, पृ. 225

202. द्रष्टव्य–बुद्धिस्टिक स्टडीज, पृ. 73–88

203. "श्रमण संस्कृति के विकास में छः तीर्थकरों का योगदान"
शोधपत्र– डा0 कोमलचन्द्र जैन,
31 वां आल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेंस, 31 वां सत्र रिपोर्ट, पृ. 276–277
दर्शन दिग्दर्शन (राहुल सांस्कृत्यायन), पृ. 488

204. संयुत्त. 1, पृ. 67

205. वही, पृ. 76

206. वही, 4, पृ. 345

207. "पकुधको कातियानो निगण्ठो, ये चापिमे मक्खलिपूरणासे।
गणस्स सत्थारो सामञ्ञाप्पत्ता, न हि नून ते सप्पुरिसेहि दूरे"ति।।
वही, 1, पृ. 65

208. वही, पृ. 65

209. दर्श–दिग्दर्शन, पृ. 491

210. "इध छिन्दितमारिते, हतजानीसु कस्सपो।
न पापं समनुपस्सति, पुञ्ञं वा पन अत्तनो।
स वे विस्सासमाचिक्खि, सत्था अरहति माननं"ति। संयुत्त. 1, पृ. 64

211. वही, 3, पृ. 297

212. वही, 5, पृ. 111–113

213. 'करोतो कारयतो छिन्दतो छेदापयतो पचतो पाचापयतो सोचतो सोचापयतो किलमतो किलमापयतो फन्दतो फन्दापयतो पाणमतिपातापयतो अदिन्नं आदियतो सन्धि छिन्दतो निल्लोपं हरतो एकागारिकं करोतो परिपन्थे तिट्ठतो परदारं गच्छतो मुसा भणतो करोतो न करीयति पापं। खुरपरियन्तेन चे पि चक्केन यो इमिस्सा पठविया पाणे एकमंसखलं एकमंसपुज्जं करेय्य, नत्थि ततोनिदानं पापं, नत्थि पापस्स आगमो। दक्खिण वे पि गंगाय तीरं गच्छेय्य, हनन्तो घातेन्तो छिन्दन्तो छेदापेन्तो पचन्तो पाचेन्तो, नत्थि ततोनिदानं पापं, नत्थि पापस्स आगमों। उत्तरं चे पि गंगाय तीरं गच्छेय्य, ददन्तो दोपेन्तो यजन्तो यजापेन्तो, नत्थि ततोनिदानं पुञ्ञं, नत्थि पुञ्ञस्स आगमो। दानेन दमेन संयमेन सच्चवज्जेन नत्थि पुञ्ञं, नत्थि पुञ्ञस्स आगमो"ति? ।–संयुत्त. 3, पृ. 420–421 एवं दीघ. 1, पृ. 45–46

214. दर्शन–दिग्दर्शन, पृ. 492

215. नत्थि दिन्नं नत्थि यिट्ठं नत्थि हुतं नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको, नत्थि अयं लोको नत्थि परो लोको नत्थि माता नत्थि पिता नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि लोके समणब्राह्मणा सम्मग्गता सम्मापटिपन्ना ये इमें च लोकं परं च लोकं सयं अभिञ्ञासच्छिकत्वा पवेदेन्ति। चातुम्महाभूतिको अयं पुरिसो यदा कालं करोति पठवी पठवीकायं अनुपेति अनुपगच्छति, आपो आपोकायं अनुपेति अनुपगच्छति, तेजो तजोकायं अनुपेति अनुपगच्छति, वायो वायोकायं अनुपेति अनुपगच्छति। आकासं इन्द्रियानि संकमन्ति। आसन्दिपंचमा पुरिसा मतं आदाय गच्छन्ति। याव आलाहना पदानि पञ्ञायन्ति। कापोतकानि अट्ठीनि भवन्ति। भस्सन्ता आहुतियो। दत्तुपञ्ञायन्ति यदिदं दानं। तेसं तुच्दं मुसा विलापो ये केवि अत्थिकवादं बदन्ति। बाले च पण्डिते च कायस्स भेदा उच्छिज्जन्ति विनस्सन्ति न होन्ति परं मरणा'ति?– संयुत्त. 3, पृ. 418 19, दीघ. 1, पृ. 48 ।

216. दर्शन–दिग्दर्शन, पृ. 488 ।

217. अथ खो सहलि देवपुत्तो मक्खलिं गोसालं आरब्भ भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–
"तपोजिगुच्छाय सुसंवुतत्तो, वाचं पहाय कलहं जनेन।
समो सवज्जा विरतो सच्चवादी, न हि नून तादिसं करोति पाप"ति।। संयुत्त. 1, पृ. 64

218. दीघ. 1, पृ. 46–47

219. चुद्दस खो पनिमानि योनिपमुखसतसहस्सानि सट्ठि च सतानि छ च सतानि पंच च कम्मुनो सतानि पंच च कम्मानि, तीणि च कम्मानि, कम्मे च अड्ढकम्मे च द्वट्ठिपटिपदा, द्वट्ठन्तरकप्पा, छलाभिजातियो, अट्ठपुरिसभूमियो, एकूनपञ्ञासि आजीवकसते, एकूनपञ्ञास परिब्बाजकसते, एकूनपञ्ञास नागवाससते, वीसे इन्द्रियसतं, तिसे निरयसते, छत्तिसरजोधातुयो, सत्त सञीगब्भा, सत्त अस गब्भा, सत्त निगण्ठिगब्भा, सत्त देवा, सत्त मानुसा, सत्त पेसाचा, सत्त सरा, सत्त पवुटा, सत्त पापाता, सत्त च पपातसतानि, सत्त सुपिना, सत्त सुपिनसतानि, चुल्लासीति महाकप्पिनो सतसहस्सानि यानि बाले च पण्डिते च सन्धावित्वा संसरित्वा दुक्खस्सन्तं करिस्सन्ति। तत्थ नत्थि इमिनाहं सीलेन वा वतेन वा तपेन वा ब्रह्मचरियेन वा अपरिपक्कं वा कम्मं परिपाचेस्सामि, परिपक्कं वा कम्मं फुस्स फुस्स व्यन्तीकरिस्सामी ति हेवं नत्थि दोणमिते सुखदुक्खे परियन्तकते संसारे, नत्थि हायनवड्ढने, नत्थि उक्कंसावकंसे। सेय्याथापि नाम सुत्तगुले खित्ते निब्बेठियमानमेव पलेति, एवमेव बाले च पण्डिते च निब्बेठियमाना सुखदुक्खं पलेन्ती"ति? संयुत्त. 3, पृ. 423–424 तुलनीय–दीघ. 1, पृ. 47

220. सत्तिमे काया अकटा, अकटविधा, अनिम्मिता, अनिम्माता, वञ्झा, कूटट्ठा, एसिकट्ठायिट्ठिता, ते न इञ्जन्ति, न विपरिणमन्ति, न अञ्ञमञ्ञं ब्याबाधेन्ति, नालं अञ्ञ मञ्ञस्स सुखाय वा दुक्खाय वा सुखदुक्खाय वा। कतमे सत्त? पठवीकायो, आपोकायो, तेजोकायो, वायोकायो, सुखे, दुक्खे, जीवे सत्तमे। इमे सत्त काया अकटा, अकअविधा, अनम्मिता, वञ्झा, कूटट्ठा एसिकट्ठायिट्ठिता, ते न इञ्जन्ति, न विपरिणमन्ति, न अञ्ञ मञ्ञं ब्याबाधेन्ति, नालं अञ्ञमञ्ञस्स सुखाय वा दुक्खाय वा सुखदुक्खाय वा। यो पि तिण्हेन सत्थेन सीसं छिन्दति न सो पि कञ्चि जीविता वोरोपेति, सत्तन्नं त्वेव कायानमन्तरेन सत्थं विरमनुपविसति।
संयुत्त. 3, पृ. 423 एवं दीघ. 1, पृ. 49

221. संयुत्त. 3, पृ. 423

222. दीघ. 1, पृ. 51

223. द्रष्टव्य– क. आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन, भाग 1, पृ. 402
ख. जैनज्मि इन बुद्धिस्ट लिटरेचर, पृ. 25
ग. संयुत्तनिकाय में जैन सन्दर्भ – शांध लेख, विजय कुमार जैन, श्रमण, वर्ष 33, अंक 12, पृ. 16–23

224. संयुत्त. 4, पृ. 281

225. वही, 1, पृ. 64

226. दीघ. 1, पृ. 52

227. संयुत्त. 4, पृ. 281

228. वही, पृ. 284

229. संयुत्त. 4, पृ. 278

230. वही, 4, पृ. 276

231. वही, 4, पृ. 265

232. द्रष्टव्य–
क. ज्योग्राफी आव अर्ली बुद्धिज्म– डा0 विमलचरण लाल।

ख. एनिशयन्ट ज्योग्राफी आव इण्डिया– जनरल कनिंघम।

ग. डिक्शनरी आव पालि प्रापर नेम्स– डा0 जी.सी. मललसेकर।

घ. बुद्धकालीन भारतीय भूगोल–डा0 भरत सिंह उपाध्याय।

ङ. भगवान् बुद्ध और बिहार– श्री हवलधर त्रिपाठी 'सहृदय'।

च. ज्योग्राफीकल एसेज, लेख
हिस्ट्री आव पालि लिटरेचर, भाग 2, परिशिष्ट 'ए'
में उद्धत–डा0 विमलचरण लाहा

छ. बुद्धकालीन भारतीय भूगोल
संयुत्तनिकाय (हिन्दी) भाग–1, भूमिका में उद्धत भिक्षु धर्म रक्षित का लेख।

233. संयुत्त. 5, पृ. 296–300
234. संयुत्तनिकाय (हिन्दी) भाग 1, भूमिका पृ. 3
235. बुद्धिस्ट इण्डिया, 2
236. संयुत्त 1, पृ. 113
237. वही, पृ. 154
238. वही, पृ. 171
239. वही, पृ. 209
240. वही, 4, पृ. 223
241. वही, 5, पृ. 382
242. संयुत्त. 5, पृ. 146
243. वही, 4, पृ. 276
244. वाल्मीकीय रामायण (बा. का.), अध्याय 32, श्लोक– 7–15 महाभारत, समापर्व, अध्याय 21, श्लोक 1–10,
–बौद्ध धर्म और विहार, पृ. 25–30 से उद्धत।
245. संयुत्त. 1, पृ. 207
246. वही, 2, पृ. 160
247. वही, 1, पृ. 194
248. वही, पृ. 10
249. वही, पृ. 26
250. वही, 5, पृ. 74
251. वही, 3, पृ. 344
252. वही, 4, पृ. 131
253. वही, 1, पृ. 131
254. वही, 5, पृ. 383
255. वही, 5, पृ. 202
256. वही, 4, पृ. 36
257. वही, 1, पृ. 119, 194
258. वही, 5, पृ. 382
259. सयुत्त. 2, पृ. 160–162
260. वही, 1, पृ. 66
261. वही, पृ. 208

262. वही, 4, पृ. 18
263. वही, 1, पृ. 113
264. वही, पृ. 105
265. वही, 4, पृ. 164
266. वही, 1, पृ. 137
267. वही, 5, पृ. 201
268. संयुत्तनिकाय (हिन्दी) भूमिका, पृ. 3
269. वही, 4, पृ. 233
270. वही, 5, पृ. 140
271. वही, 5, पृ. 369
272. वही, 4, पृ. 101
273. वही, 4, पृ. 56
274. वही, 1, पृ. 28
275. वही, 5, पृ. 122
276. वही, 5, पृ. 130
277. वही, 5, पृ. 221–225
278. वही, (हिन्दी) भाग–1, भूमिका, पृ.2
279. संयुत्त. 1, पृ. 111
280. वही, 5, पृ. 124
281. वही, 5, पृ. 300
282. वही, 1, पृ. 115
283. वही, 1, पृ. 166
284. वही, 1, पृ. 59
285. वही, 4, पृ. 111
286. वही, 1, पृ. 51
287. वही, 5, पृ. 254
288. वही, 3, पृ. 358
289. थामस–दि लाइफ आफ बुद्ध, पृ. 15
290. वाटर्स– औन यूआन चुआङ् स ट्रेंविल्स इन इण्डिया, भाग–1, पृ. 354
291. थामस–दि लाइफ आफ बुद्ध, पृ. 753, पादटिप्पण
292. बौद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ. 20
293. संयुत्त. 1, पृ. 3
294. वही, 5, पृ. 188
295. वही, 5, पृ. 307
296. वही, पृ. 258
297. वही, पृ. 191
298. वही, पृ. 256
299. संयुत्तनिकाय (हिन्दी) भूमिका, पृ. 2
300. संयुत्त. 1, पृ. 82–83
301. वही, 4, पृ. 252

302. संयुत्तनिकाय (हिन्दी) भाग–2, पृ. 570, पादटिप्पणी।
303. संयुत्त. 1, पृ. 77, भाग 5, पृ. 360
304. वही, 1, पृ. 76
305. संयुत्तनिकाय (हिन्दी) भूमिका, भाग–1, पृ. 2–3
306. संयुत्त. 1, पृ. 195
307. संयुत्तनिकाय (हिन्दी) भाग–1, पृ. 2–3
308. संयुत्त. 5, पृ. 195
309. संयुत्तनिकाय (हिन्दी) भाग–1, पृ. 4, भूमिका।
310. संयुत्त. 2, पृ. 98
311. वही, 5, पृ. 374
312. वही, 3, पृ. 241
313. संयुत्तनिकाय (हिन्दी) भाग–1,
भूमिका, पृ. 4
314. संयुत्त. 3, पृ. 360
315. वही, 1, पृ. 157
316. वही, 4, पृ. 289
317. संयुत्तनिकाय (हिन्दी) भाग–1,
भूमिका, पृ. 8
318. संयुत्त. 3, पृ. 245
319. वही, 5, पृ. 4
320. वही, 1, पृ. 116
321. वही, पृ. 183
322. वही, 3, पृ. 316
323. वही, 1, पृ. 25
324. वही, 3, पृ. 164
325. वही, 2, पृ. 79
326. वही, 4, पृ. 144
327. वही, पृ. 106
328. वही, पृ. 107
329. वही, 5, पृ 103
330. वही, 4, पृ. 299
331. वही, 1, पृ. 85
332. वही, 4, पृ. 164, 274
333. वही, 4, पृ. 252,
334. वही, 2, पृ 158
335. वही, पृ. 57
336. संयुत्त. 5, पृ 393, 31–34
337. द्रष्टव्य– बौद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ. 53–165
338. संयुत्त 2, पृ 151
339. पुराणिक लाइन डिविजन्स आफ ग्रेटर इण्डिया –मजमूदार द्वारा लिखित प्रथम परिशिष्ट

कनिंघम कुत– इन्शियन्ट ज्योंग्रेफी आफ इण्डिया, पृ. 749–754

340. बौद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ. 53, पादटिप्पणी।

341. कनिंघम, एन्शियन्ट ज्योंग्रेफी आफ इण्डिया, पृ. 11

342. वाटर्स, औन युआन् चुआङ्स ट्रैविल्स इन इण्डिया, भाग–1, पृ. 132

343. वाटर्स, औन युआन चुआङ्स ट्रैविल्स इन इण्डिया, भाग–1, पृ. 132

344. वही, पृ. 138

345. जम्बुद्दीवपण्णत्ति, (1–10)

346. विण्टरनित्ज–हिष्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर,
भाग–2, पृ. 363, पादटिप्पणी–3।

347. संयुत्त. 5, पृ. 206

348. अंगुत्तर 4, पृ. 90 एवं थेरगाथा (914)

उपसंहार

गत पृष्ठों में संयुत्तनिकाय के आधार पर उसके विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया गया है, जो समग्र रूप से अभी तक उपेक्षित रहा है।

संयुत्तनिकाय में भगवान् बुद्ध के 45 वर्षीय बुद्ध जीवन काल में उपदेशित सुत्त विषय के अनुसार प्रमुख शीर्षकों में संगृहीत किए गए हैं, जिन्हें संयुत्त संज्ञा दी गई है। सुत्तों का संयुत्तों में विभाजन संयुत्तनिकाय की सार्थक विशेषता है। इसमें पूर्णतया विषयानुसार सुत्तों का संकलन किया गया है।

भगवान् बुद्ध के जीवन–परिचय से सम्बन्धित सुत्त भगवान् के 45 वर्षीय बुद्ध जीवन के ही हैं। इसमें बुद्ध के पूर्व जीवन की मात्र सूचना दी गई है। बुद्ध जीवन के पूर्व भगवान् को बोधिसत्व कहा जाता है, लेकिन ये बोधिसत्व से सम्बन्धित वृत्तान्त इसी जन्म के हैं। भगवान् ने पूर्वजन्मों के वृत्तान्तों में अपने लिये तत्–तत् नामों से ही उल्लिखित किया है। पूर्व के छः बुद्धों का संक्षिप्त परिचय मिलता है।

भगवान् बुद्ध ने अपने लिए पूर्व बुद्धों के समान धर्मो का ज्ञाता मात्र कहा है। जैसे कोई जंगल में पुराना मकान खोज ले उसी प्रकार उन्होंने मात्र एक मार्ग को ज्ञात किया है। प्राणियों को अपना कल्याण स्वयं करना है। अन्यमतावलम्बियों द्वारा कहे जाने पर कि जब भगवान् लोक की अनुकम्पार्थ विहार कर रहे हैं तथा समर्थ भी हैं तो सभी प्राणियों को अपाय गति से मुक्त क्यों नहीं कर देते हैं? उत्तर में भगवान् कहते हैं कि जिस प्रकार पत्थर फेंकने के बाद कोई उसे वापिस बुलाए तो वह ऊपर नहीं जा सकता, उसी प्रकार मनुष्यों की गतियां हैं। इनको उसे भुगतना ही पड़ेगा।

भगवान् ने अपने लिए अलौकिक चित्रिण नहीं किया है, जो भी शक्तियां बतलाई हैं वे धर्मो के साक्षात्कार के फलस्वरूप बतलाई हैं, जिसे कोई भी धर्मो के साक्षात्कार करने से प्राप्त कर सकता है। भगवान् ने अपने लिए 'मायावी' होने से स्पष्ट अस्वीकार कर दिया था। भगवान् ने कहा था कि वे माया को जानते हैं, उसके परिणाम अपाय गति को भी जानते हैं, लेकिन वे 'मायावी' नहीं हैं। जिस प्रकार कोई दुष्ट व्यक्ति को जानने से दुष्ट नहीं हो जाता।

भगवान् बुद्ध को 10 बलों एवं चार वैशारद्यों से युक्त कहा गया है। उन्हें जिन 32 महापुरुष लक्षणों में से युक्त कहा गया है उनमें से कुछ का अनुभव करते हुए भी बतलाया गया है, किन्तु उन सुख–दुःखों को वे अपनी समाधि के प्रभाव से सहन करते थे। उनकी चर्या एक भिक्षु के समान थी। वे भिक्षुसंघ के सामने प्रवारणा

करते हैं एवं पूछते हैं कि उनमें कोई दोष तो नहीं देखा गया है। संक्षेप में भगवान् का मानवीयरूप, भिक्षुरूप तथा बुद्धरूप मिलता है। भगवान् ने अपने लिए धर्म के प्रति गौरवभाव रखकर विचरते हुए बतलाया है तथा भिक्षुओं को भी धर्म की शरण में जाने को कहा है।

धर्म के रूप में भगवान् ने मध्यम मार्ग का प्रतिपादन किया है। दो अन्तों की विस्तृत व्याख्या की गई है। 10 प्रकार के कामगुण बतलाए गए हैं तथा तीन प्रकार की रूक्षाचारी तपस्या एवं इनके गुण–दोषों पर विचार किया गया है। मध्यम–मार्ग आर्य–अष्टांगिक मार्ग, जिसमें अन्य सभी बोधिपाक्षिक धर्म समाहित हो जाते हैं। संयुत्तनिकाय में इन सभी धर्मो का एक समान महत्त्व मिलता है। मध्यममार्ग के रूप में शील–समाधि–प्रज्ञा का भी परिचय मिलता है। भगवान् के द्वारा प्रतिपादित धर्म

अच्छी तरह कहा गया है, देखते ही देखते फल देने वाला है, बिना देरी के सफल होने वाला है, परीक्षण किया जा सकने वाला है, परम पद तक ले जाने वाला है एवं विज्ञों द्वारा अनुभव किए जा सकने वाला है।

दर्शन के क्षेत्र में भी भगवान् बुद्ध के मध्यममार्ग की व्याख्या प्रतीत्यसमुत्पाद के रूप में की जाती है। आचरण के क्षेत्र में जहां दो अन्तों–कामसुख एवं कठोर तपस्या का प्रतिपादन किया जाता है, वही विचार के क्षेत्र में दो अन्त–शाश्वतवाद एवं उच्छेदवाद है इनके मानने वालों को मिथ्यादृष्टि युक्त कहा है। इन मिथ्यादृष्टियों की विस्तृत व्याख्या की गई है। अव्याकृत के अन्तर्गत आने वाली 10 बातें भी दृष्टियों के समान बतलाई गई हैं। इनके विपरीत भगवान् ने सम्यक्दृष्टि का प्रतिपादन किया था, जो चार आर्यसत्यों एवं प्रतीत्य समुत्पाद का ज्ञान है। चार आर्यसत्यों में पूरी संसार की व्यवस्था एवं बौद्ध धर्म समाहित है तथा प्रतीत्यसमुत्पाद जन्म मरण की अबस्थाओं का सूचक है। परम लक्ष्य निर्वाण बतलाया गया है, जो रागक्षय, द्वेषक्षय एवं मोहक्षय रूप है। दुःख का समूल नष्ट करना प्रमुख उद्देश्य है। संसार को 'अनित्य–दुःख–अनात्म' प्रतिपादित किया गया है एवं इस सिद्धांत की सिद्धि पंचस्कंधों, षडायतनों, धातुओं तथा वेदनाओं से की गई है। जिसका विस्तृत परिचय संयुत्तनिकाय में मिलता है।

भगवान् बुद्ध ने संघ की स्थापना की थी, जो प्रारम्भ में भिक्षुसंघ के रूप में था, बाद में भिक्षुणी संघ भी बन गया। भगवान् ने संघ को बुद्ध एवं धर्म के समान त्रिरत्नों में स्थान दिया है। शरण स्वीकार करते समय संयुत्तनिकाय में भिक्षुसंघ की ही शरण स्वीकार करने का उल्लेख है। जबकि महावग्ग में प्रारम्भ में 'भिक्षुसंघ' एवं उसके बाद संघ की शरण का उल्लेख है। इससे स्पष्ट होता है कि संयुत्तनिकाय के अंश प्राचीन हैं तथा शरण स्वीकार करने में भिक्षुसंघ ही मान्य था भिक्षुणी संघ नहीं।

संघ को द्विविध–भिक्षुसंघ एवं भिक्षुणी संघ माना जाता है। जैन धर्म में चतुर्विध संघ की कल्पना है, उसमें उपासक एवं उपासिकाओं का भी समावेश है। इसी बौद्धों के संघ को भी द्विविध (कभी कभी कोई चतुर्विध) विभाजित करने की परम्परा है। जबकि भगवान् ने अपने संघ को चार गुणों के आधार पर विभाजित किया था। संघ के चार भेद एवं आठ उपभेद बतलाये हैं– स्रोतापत्ति, सकृदागामी, अनागामी एवं अर्हत्। इन चार को मार्ग एवं फल के आधार पर आठ प्रकार से विभाजित किया है। इसमें से प्रथम अवस्था गृहस्थों के लिए उपयुक्त बतलाई थी, लेकिन ऐसे भी सन्दर्भ मिलते हैं कि गृहस्थ को अनागामी कहा गया है तथा गृहस्थ एवं भिक्षु की विमुक्ति रागक्षय, द्वेषक्षय एवं मोह क्षय से एक समान बतलाई है।

संयुत्तनिकाय से भिक्षुसंघ के स्वरूप का स्पष्टीकरण होता है। प्रारंभ में

विषय कम थे एवं अर्हत पद पर आरूढ़ होने वाले भिक्षुओं की संख्या अधिक थी, लेकिन बाद में नियम अधिक हो गए एवं अर्हत पद पर आरूढ़ होने वाले भिक्षुओं की संख्या कम हो गई। भिक्षुओं की दक्षताओं के भी परिचय मिलते हैं। भिक्षु भिन्न–भिन्न कुशलताओं में दक्ष थे तथा उनके अनुयायी भिक्षु भी उनके अनुगामी थे। महाकाश्यप एवं आनन्द के अन्तरंग विवाद की भी सूचना मिलती है। आनन्द को महाकाश्यप 'कुमार' एवं 'बाहुलिक' कहते हैं तथा उनके अनुयायी भिक्षुओं को अनुशासनहीन। आनन्द की भक्त थुल्लतिस्सा भिक्षुणी महाकाश्यप को आनन्द के सामने 'सुई बेचने वाले' के समान बतलाती है।

भगवान् ने ब्रह्मचर्य पालन करने के लिए भिक्षु अवस्था को उपयुक्त कहा है। घर गृहस्थी में अनेक झंझट बतलाये हैं। भिक्षुओं, गृहस्थों तथा अन्य मतावलम्बियों सभी को उनकी देशना आदिकल्याणकारी, मध्यकल्याणकारी एवं अन्तकल्याणकारी कही गई है। संयुत्तनिकाय में प्रतिपादित धर्म में ऐसी कोई विभाजन–रेखा नहीं खींची जा सकती है कि अमुक धर्म भिक्षु को एवं अमुक भिक्षुणियों को। अनुशासन सम्बन्धी एवं आचरण विषयक दैनिक जीवनोपयोगी नियमों में वैशिष्ट्य है। भगवान् भिक्षु–भिक्षुणियों को अधिक समय देते थे। उनके उपदेशों में सम्बोधन भी अधिकतर इन्हीं को हैं, इसका तात्पर्य भगवान् की अन्य पात्रों के प्रति उपेक्षा नहीं बल्कि भिक्षुओं के प्रति प्राथमिकता है। भगवान् ने विविध सामाजिक परम्पराओं में सुधार करने के लिए भी गृहस्थों के प्रति उतना ही ध्यान दिया है। भगवा्न का धर्म भी सभी के लिए समान उपयोगी है।

देवता, देवपुत्त, ब्रह्मा, यक्ष, मार, इन्द्र आदि अनेक अलौकिक शक्तियों का भी परिचय मिलता है। ब्रह्मा को सद्धर्म में सहायक तथा मार को सद्धर्म का विरोधी बतलाया गया है। देवता, देवपुत्त, यक्ष एवं इन्द्र को सद्धर्म में श्रद्धालु चित्रित किया गया है। कुछ यक्षों को मार के समान आचरण करने वाला प्रतिपादित किया गया है एवं ब्रह्मा को अच्छे आदर्श के रूप में। ये सब शक्तियां हिन्दू परम्परा में अधिक मान्य रही हैं तथा इनकी सामाजिक प्रतिष्ठा अधिक थी। इसलिए प्रतीत होता है कि जनसाधारण में धर्म के महत्त्व को प्रतिपादित करने के लिए इनका समावेश किया गया है।

सामाजिक व्यवस्था का भी अच्छा चित्रण मिलता है। जन्मना वर्णव्यवस्था का खुला विरोध किया गया है। समाज में प्रतिष्ठित 'ब्राह्मण' संज्ञा कर्मो के आधार पर वर्णित की गई है। ब्राह्मण को बौद्ध धर्म के गुणों के आधार पर श्रमणों के समान महत्त्व दिया गया है। नारियों की स्थिति का चित्रण करते हुए पुरुष की अपेक्षा उनके

प्राकृतिक अक्षमताओं एवं कष्टों की ओर ध्यान दिलाया गया है तथा परमपद प्राप्ति में समान बतलाया है। राजनीतिक स्थिति के रूप में राजा प्रसेनजित् से सम्बन्धित अधिक वृत्तान्त हैं। इसके अजातशत्रु के साथ हुए युद्धों के भी प्रसंग मिलते हैं। भगवान् की सहानुभूति प्रसेनजित् के साथ बतलाई गई है। अजातशत्रु को पापेच्छु देवदत्त का समर्थक बतलाया गया है।

भौगोलिक स्थिति में अन्य निकायों की भांति स्थानों का चित्रण किया गया है। इसमें सबसे अधिक सुत्त श्रावस्ती के हैं। भगवान् ने श्रावस्ती में सबसे अधिक वर्षावास भी व्यतीत किए थे।

अन्य तैर्थिकों में छः आचार्यो का चित्रण मिलता है। एक दो प्रसंगों के अतिरिक्त अन्य निकायों की भांति इनके सिद्धान्तों की पुनरावृत्ति की गई है। निगण्ठनाटपुत्त के अधिक वृत्तान्त पाए जाते हैं।

इस प्रकार संयुत्तनिकाय में भगवान् बुद्ध के जीवन, धर्म–दर्शन एवं उस समय की स्थिति का चित्रण मिलता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ विवरण

(क) हिन्दी ग्रन्थ

अंगुत्तरनिकाय (चार भाग) : नालन्दा–देवनागरी–ग्रन्थमाला, बिहार, 1960

अट्ठसालिनी (धम्मसंगणिकी अट्ठकथा) : पी. बी. वापट एण्ड आर. डी. वाडेकर, वी. ओ. आर इन्स्टीट्यूट, पूना–4, 1942

अर्थविनिश्चय सूत्र निबन्धनम् : के. पी. जायसवाल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पटना, 1971

अभिधर्म कोश भाष्य : प्रह्लाद प्रधान, पटना, 1967

अभिधर्मकोशम् (भाष्य एवं व्याख्या सहित) : स्वामी द्वारिका दास शास्त्री, बौद्ध भारती, वाराणसी, 1971

अभिधर्म दीप : पी.एस. जैनी, पटना, 1959

अभिधर्म देशना बौद्ध सिद्धांतो का विवेचन: धर्म चन्द्र जेन, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, फरवरी,1982

अभिधापप्पदीपिका एवं एकक्खरकोस (सद्दनिदस्कि) : द्वारिका दास शास्त्री, बौद्ध भारती, वाराणसी, 1981

अभिसमयालंकारालोक (अष्टसहस्त्रिका प्रज्ञापारमिता) : पी. एल. वैद्य, दरभंगा, 1980

अशोक के धर्मलेख (प्रथम भाग) : जनार्दन भट्ट, ज्ञानमण्डल कार्यालय, काशी संस्करण, 1980

आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन : मुनि नगराज जी, जैन श्वेताम्बर तेरापंथ महासभा, (खण्ड–1) 3, पार्चगीच चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता, 1669

आचार्य बुद्धघोष और उनकी अट्ठकथाएं : शिवचरण लाल जैन, अल्पना प्रकाशन, सेण्ट मार्क्स चर्च बिल्डिंग, शिमला–3, सं. 2025

कथावत्थु पालि : नालन्दा–देवनागरी–पालि ग्रन्थमाला, बिहार, 1961

खुद्दकनिकाय पालि, भाग–1(खुद्दकपाठ –धम्मपद–उदान–इतिवुत्तक–सुत्तनिपात)	:	नालन्दा–देवनागरी–पालि–ग्रन्थमाला, बिहार 1959
खुद्दकनिकाय पालि, भाग–2(विमानवत्थु पेतवत्थु–थेर गाथा–थेरी गाथा)	:	नालन्दा–देवनागरी–पालि–ग्रन्थमाला, बिहार 1959
चुल्लवग्गः	:	नालन्दा–देवनागरी–पालि–ग्रन्थमाला बिहार 1956
छान्दोग्य–उपनिषद्	:	निर्णयसागर संस्करण, बम्बई, 1930
श्रीमज्जम्बुद्वीपप्रज्ञप्ति (पूर्वभाग)	:	श्रीमच्छान्तिचन्द्र विहितहरि, 426, जबेरी बाजार, बम्बई, 1920
जातक, भाग–1 (खुद्दकनिकाय निकायभाग–3, पार्ट 1)	:	नालन्दा–देवनागरी–पालि–ग्रन्थमाला बिहार 1959
जातक (हिन्दी) छः भाग	:	भदन्त आनन्द कौशल्यायन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग सं. 2013
जातकट्ठकथा (पठमो भागो)	:	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1951
जातकमाला	:	व्याख्याकार– श्री बटुकनाथ शास्त्री खेलाड़ी लाल एण्ड सं., कचौड़ी गली, बनारस, 1977
जैन एवं बौद्ध धर्म में भिक्षुणी संघ का उद्भव, विकास एवं स्थिति	:	अरुणप्रताप सिंह, अप्रकाशितशोध –प्रबन्ध पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1982
थेरपदान (खुद्दक निकाय भाग 6, पार्ट–1)	:	नालन्दा–देवनागरी–पालि–ग्रन्थमाला बिहार 1959
दर्शन दिग्दर्शन	:	राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, 1961
दिव्यावदान	:	पी. एल. वैद्या, मिथिला विद्यापीठ प्रकाशितम्, सं. 2015
दीघनिकाय पालि (तीन भाग)	:	नालन्दा–देवनागरी–पालि–ग्रन्थमाला, बिहार 1958
धम्मपदट्ठकथा (तीन भाग)	:	नवनालन्दा महाविहार, नालन्दा,1973

धर्मशास्त्र का इतिहास (5 भाग) : पी. बी. काणे, हिन्दी समिति, सूचना विभाग उत्तर प्रदेश, लखनऊ, 1965

निदानकथा : सम्पादक तथा अनुवादक– डा0 महेश तिवारी, चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस,वाराणसी 1,1970

पंचप्पकरण अट्ठकथा (दुतियो भागो) : नवनालन्दा महाविहार, नालन्दा, 1971

पराशर–स्मृति : स्मृति–सन्दर्भ, 5, क्लाइव रोड, कलकत्ता, 1952

पातिमोक्ख : सम्पादक–डा0 भागचन्द्र जैन, आलोक प्रकाशन, नागपुर, 1972

पालि साहित्य का इतिहास : भिक्षु धर्म रक्षित, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी 1971

पालि साहित्य का इतिहास : डा0 भरत सिंह उपाध्याय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, 1972

पालि साहित्य का इतिहास : राहुल सांकत्यायन, हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ, 1973

पालि हिन्दी कोश : भदन्त आनन्द कौशल्यायन, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., दिल्ली, 1975

पेटकोपदेश (रोमन) : सम्पादक– अरविन्द वरुआ, पालि अक्स्ट्स सोसायटी, 1949

प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति : डा0 अनन्त सदाशिव अकतेकर, नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, बनारस, 1955

बुद्धकालीन भारतीय भूगोल : डा0 भरतसिंह उपाध्याय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं. 2018

बुद्धकालीन समाज और धर्म : डा0 मदनमोहन सिंह, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, सम्मेलन भवन, पटना–3, 1972

बुद्धचर्या : राहुल सांकृत्यायन, महाबोधि सभा, सारनाथ, 1952

बृहदारण्यक–उपनिषद : निर्णयसागर संस्करण, बम्बई, 1930

बौद्ध और जैन आगमों में नारी जीवन : डा0 कोमलचन्द्र जैन, सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति, अमृतसर, 1967

बौद्ध दर्शन : राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद,1977

बौद्ध दर्शन मीमांसा : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1978

बौद्ध धर्म : एक बुद्धिवादी अध्ययन : भदन्त आनन्द कौसल्यायन, तिब्बती बौद्ध विहार, सारनाथ, 1967

बौद्ध धर्म और बिहार : श्री हवलदार त्रिपाठी सहृदय, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, 1960

बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास : डा0 गोविन्द चन्द्र पाण्डेय, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ– 1976

बौद्ध धर्म दर्शन : आचार्य नरेन्द्र देव, बिहार–राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 1971

बौधायन धर्मसूत्र : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, बनारस सिटी, 1934

भगवान् बुद्ध : जीवन और दर्शन : धर्मानन्द कौशाम्बी, लोकभारती प्रकाशन, 15–ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद, 1982

भारतीय दर्शन का इतिहास भाग–1 : सुरेन्द्रनाथ दासगुप्ता, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1978

भारतीय दर्शन में मोक्ष चिन्तन एक तुलनात्मक अध्ययन : डा0 अशोक कुमार लाड, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ, अकादमी, 97, मालवीय नगर, भोपाल, 1973

भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगादान : डा0 हीरालाल जैन, मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद, भोपाल, 1975

मज्झिमनिकाय (पालि) तीन भाग : नालन्दा–देवनागरी–पालि–ग्रन्थमाला, बिहार, 1958

मज्झिमनिकाय (हिन्दी)	:	अनुवादक–राहुल सांकृत्यायन, महाबोधि सभा, सारनाथ, 1964
मध्यमकशास्त्रम्	:	सम्पादक–पी.एल.वैद्य, मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा, 1960
महाभारत (छः भाग)	:	चित्रशाला प्रेस, पूना–1929–33
महामानव बुद्ध	:	राहुल सांकृत्यायन, बुद्ध विहार, लखनऊ, 1978
महायान सूत्र संग्रह (प्रथम खंड)	:	मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा, 1961
महावग्ग	:	नालन्दा–देवनागरी–पालि–ग्रन्थमाला, बिहार, 1956
मिलिन्दपञ्हो	:	बौद्ध भारती, वाराणसी, 1979
वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमितासूत्र तथा आचार्य असंग कृत त्रिशतिका कारिकासप्तति	:	लालमणि जोशी, भोट विद्या संस्थानम्, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षण संस्थान, सारनाथ,1978
वशिष्ठ–धर्मसूत्रम्	:	बम्बई संस्कृत एण्ड प्राकृत सीरीज, बम्बई, 1916
विनयपिटक (हिन्दी)	:	राहुल सांकृत्यायन, महाबोधि सभा, सारनाथ, 1935
विभावनी टीका	:	सम्पादक– खेतधम्म, वाराणसी, 1965
(अभिधम्मत्थसंगहो की टीका)	:	दि एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, 1881
विशुद्धिमार्ग (हिन्दी) दो भाग	:	अनुवादक– भिक्षु धर्म रक्षित महाबोधि सभा, सारनाथ, 1957
विसुद्धिमग्गो (तीन भाग)	:	डा0 रेवतधम्म सम्पादित, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1969
रामायण (वाल्मीकि कृत)	:	मद्रास ला जर्नल प्रेस, मद्रास, 1933
शतपथ ब्राह्मण (दो भाग)	:	अच्युत–ग्रन्थमाला–कार्यालय, काशी, वि.सं. 1994
सच्चसंगहो	:	भदन्त आनन्द कौशल्यायन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं. 2011
सद्धम्मसंगहो	:	नवनालन्दा–महा–विहार, नालन्दा, 1961

समन्तपासादिका नाम अट्ठकथा	:	नवनालन्दा महविहार नालन्दा, 1964
सारत्थपकासिनी (3 भाग)	:	पालि टैक्स्ट्स सोसायटी, लन्दन, 1977
सारनाथ का इतिहास	:	श्री वृन्दावन भट्टाचार्य, ज्ञानमण्डल कार्यालय, वि. सं. 1779
सुमंगलविलासिनी (3 भाग)	:	नवनालन्दा महाविहार, नालन्दा, 1974
सूत्रकृतांग सूत्र (2 भाग)	:	आगम प्रकाशन समिति, व्यावर, 1982
संयुत्तनिकाय पालि (4 जिल्द)	:	नालन्दा–देवनागरी पालि–ग्रन्थमाला, बिहार, 1956
संयुत्तनिकाय (हिन्दी) दो भाग	:	अनुवादक–भिक्षु जगदीश काश्यप एवं धर्म रक्षित, महाबोधि सभा, सारनाथ, 1954
संस्कृत–शब्दार्थ–कौस्तुभ	:	प्रकाशक–रामनारायण लाल, इलाहाबाद, 1957
हिन्दू परिवार मीमांसा	:	श्री हरिदत्त वेदालंकार, बंगाल हिन्दी मण्डल, कलकत्ता, सं. 2011

(ख) अंग्रेजी–ग्रन्थ

The Ancient Geography of India	:	Alexander Cunnigham, Indological book House, Varanasi, 1963
Buddhistic Studies	:	Bimal a Churu Law Indological Book House/ Delhi, 1983
Bhuddhist India	:	T.W. Rhya Davids/Susil Gupta (India) Private Ltd. Calcutta, 1950
The Conception of Buddhist Nirvana	:	T. Stcherbatsky, Leningrad, 1927
The Dialogues of the Buddha (Part I) (Secred Book of Buddhist Series)	:	T.W. Bhys Davida/London, 1956
Dictionary of Early Buddhist	:	Prof. C.S. Upasak/Bharti

Monastic Terms		Prakashan, Varanasi, 1975
Dictionary of Pali Proper Names: 2 Vols		G.P. Malal Sekara, John Murry Albemarle Stree, London, 1937
Encyclopaedea of Religion and Ethics Ii Vols	:	Newyark, 1908-1931
Geography of Early Buddhism	:	Bimal Churn Law, Bhartiya Publishing House, 1973
Heaven and Hell in Buddhist Perspective	:	Bimala Charan Law, Bhartiya Publishing House, 1973
A History of Indian Literature Vol. II	:	M. Winternitz, Oriental Books Reprint corporation, Delhi, 1977
A History of Pali Literature Two Vols	:	Bimala Charan Law, Bhartiya Publishing House, 1974
Jainism in Buddhist Literature	:	Bhag Chand Jain, Alok Prakashan, Nagpur, 1972
The Life of Budda as legand and History	:	Edward J. Thomas, London-1927
Literary History of Sanskrit	:	J.K. Nariman, Motilal Banarsidass,
Buddhism		Delhi, 1972
Mahavyutpatti	:	I.P. Mineaf, Biblio Verlag. OSnabruk, 1970
On Yuan Chwang's Travels in India, 2 Vols	:	Royal Asiatic Society, London, 1904 and 1956
Pali English Dictionary	:	Rhys Davids and Stede Oriental Books Reprint Corporation, Delhi, 1975
Pali Literature and Language	:	Wilhelm Geiger, Oriental Book Reprint Corporation, Delhi, 1978
Studies in the Origins of Buddhism	:	G.C. Panday, Motilal Banarasidass, Delhi, 1983
Kindred Saying 5 Vols	:	P.T.S. London, 1971
Women Under Primitive Buddhism	:	Horner, Landon, 1930

(ग) पत्र–पत्रिकाएं

आजकल : वार्षिक अंक, दिसम्बर, 1956

बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष : पब्लिकेशन्स डिवीजन, ओल्ड सेकेटिरयट, दिल्ली–8

आल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेंस : विक्रम यूनिवर्सिटी, उज्जैन, 1972

समरीज आव पेपर्स राजस्थान यूनिवर्सिटी, जयपुर, 1982

इसिपतन : महाबोधि–सभा (भारत), सारनाथ, 1983

जर्नरल आव द रायल एशियाटिक सोसायटी : लन्दन, 1901
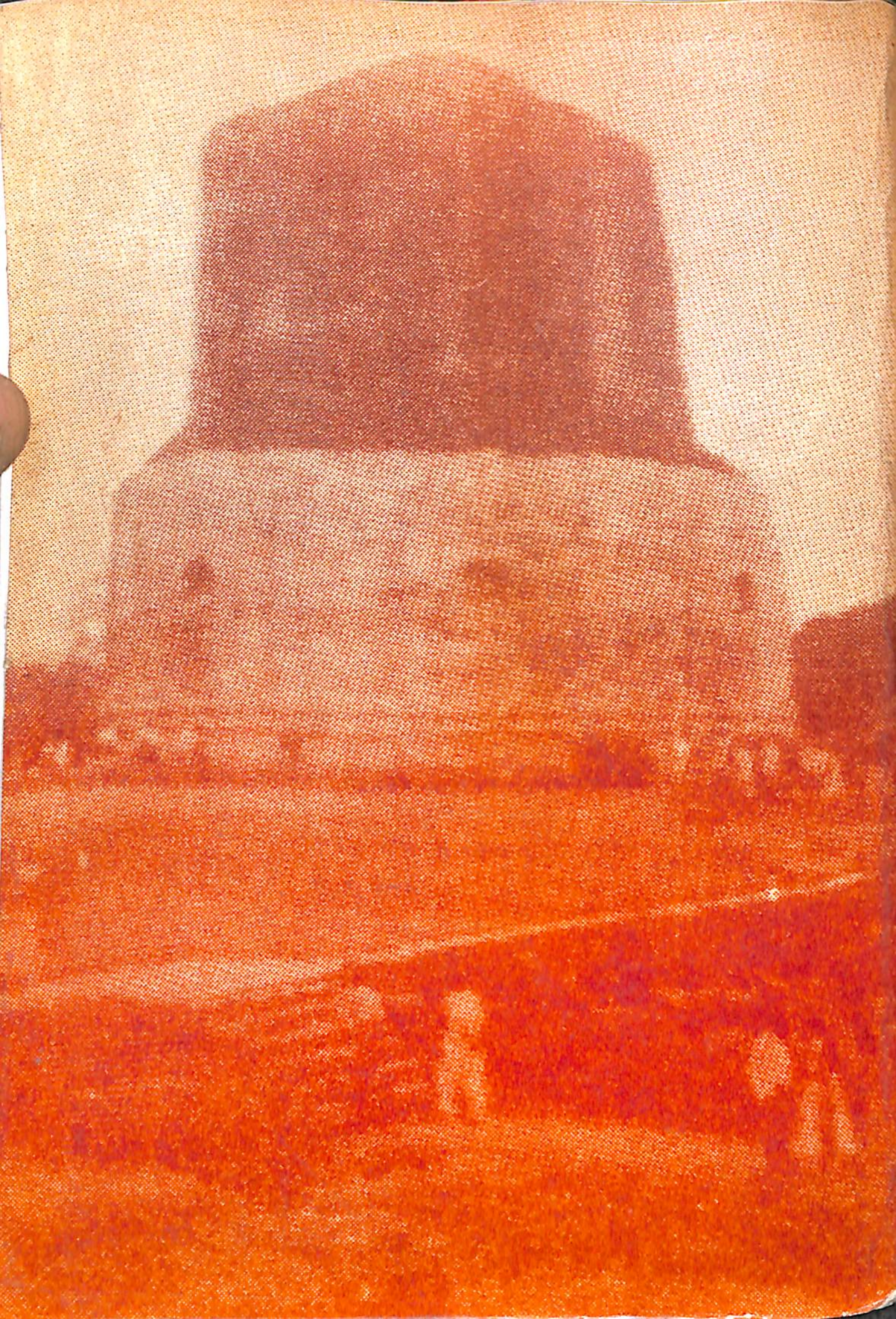
श्रमण : श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी, वाराणसी, अक्टूबर– 1982